संबंध

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

Version 1

15 अक्टूबर २०१९

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "संबंध" शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 15/10/2019

संबंध

परिभाषा:

- जिस परस्परता में, पूर्णता की अपेक्षा में प्रत्याशाएँ दायित्व एवं कर्तव्य पूर्व निर्धारित हों ऐसे मिलन की संबंध संज्ञा है।
- पूर्णता के अर्थ में सहअस्तित्व सहज अनुबंध।
- दायित्व सहज स्वीकृति, वहन, कर्तव्य निर्वाह।
- जन्म से ही मानव में संबंध का होना पाया जाता है।
- मनुष्य के सम्पूर्ण संबंध गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक हैं।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : तृतीय 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पृ: 207)

अनुक्रमणिका

स्वास्थ्य और इससे संबन्धित शब्द को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1.	मानव व्यवहार दर्शन	४
2.	मानव कर्म दर्शन	२०
3.	मानव अभ्यास दर्शन	२५
4.	मानव अनुभव दर्शन	४०
5.	समाधानात्मक भौतिकवाद	४१
6.	व्यवहारात्मक जनवाद	५४
7.	अनुभवात्मक अध्यात्मवाद	५८
8.	व्यवहारवादी समाजशास्त्र	६५
9.	आवर्तनशील अर्थशास्त्र	११४
10.	मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान	१२४
11.	मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या	१६४
12.	जीवन विद्या – एक परिचय	१७९
13.	विकल्प एवं अध्ययन बिन्दु	१८८
14.	मानवीय आचरण सूत्र	१९५
15.	संवाद – भाग १	१९६
16.	संवाद – भाग २	२०३

संदर्भ: मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- पदार्थ–अवस्था की सृष्टि में अन्नमय कोष और प्राणमय कोष का प्रकाशन है. इन दो कोषों की क्रियाएँ समस्त पदार्थावस्था के मूल रूप परमाणुओं में पायी जाती हैं. प्रत्येक परमाणु सचेष्ट है, इसलिए उसमे प्रेरणा पाने वाला अंग सिद्ध है, इसके साथ ही परमाणु ह्रास एवं विकास से मुक्त नहीं है, जो कि ग्रहण विसर्जन का ही प्रतिफल है. अतः पदार्थ में अन्नमय कोष भी सिद्ध हुआ. अन्नमय कोष की क्रियाशीलता भी चेष्टा का ही फल है अर्थात प्राणमय कोष के चेष्टित होने का फल ही है कि अन्नमय कोष की क्रिया भी संपादित होती है. अतः यह सिद्ध हुआ कि अन्नमय कोष और प्राणमय कोष का अविभाज्य **सम्बन्ध** है. **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 12)**
- सामाजिकता: – संपर्क एवं **सम्बन्ध** में निहित मूल्यों का निर्वाह ही सामाजिकता है. **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 16)**
- ऐहिक उद्देश्य (जीव चेतना वश) से **सम्बन्ध** नहीं हैं. **सम्बन्ध** आमुष्मिक उद्देश्य (विकसित चेतना, मानव, देव मानव, दिव्य–मानव सहज प्रमाण) पूर्वक ही हैं, जिनका निर्वाह ही जागृति है **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 20)**
- **सम्बन्ध: – जिस परस्परता में प्रत्याशायें पूर्णता के अर्थ में पूर्व निश्चित रहती हैं, ऐसे मिलन की सम्बन्ध संज्ञा है. (अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 20)**
- परमार्थ: – जिस विचार एवं व्यवहार में समाधान सहित सर्वशुभ की उपलब्धि हो और समस्या का निराकरण हो और स्नेह का ही **सम्बन्ध** हो, इसे सर्व सुलभ कराने के लिए जो अर्थ–नियोजन है, उसकी परमार्थ संज्ञा है. **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 21)**
- सह–अस्तित्व: – परस्परता में शोषण, संग्रह एवं द्वेष रहित तथा उदारता, स्नेह और सेवा सहित व्यवहार, **सम्बन्ध** व संपर्क का निर्वाह ही सह–अस्तित्व है. **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 27)**
- अनुभव मूलक बोध :– सह अस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभव और उसकी निरंतरता के फलस्वरुप अनुभव सहज प्रभाव ही अनुभव बोध है। ऐसे अनुभव बोध के अनंतर शहर संकल्प की निरंतरता है ऐसे बोध और संकल्प का साक्षात्कार ही अनुभव मुल्क चिंतन है। ऐसे चिंतन का चित्रण और तुलन क्रिया ही अनुभव मूलक विचार है। जागृति मुलक विचार के फल स्वरुप विवेक सम्मत विज्ञान एवं विज्ञान सम्मत विवेक प्रमाणित होता है। फलस्वरुप मूल्यों का आस्वादन सहित मानव परंपरा में **संबंधों** की पहचान स्वीकृति निर्वाह निरंतरता ही जागृति सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा एवं प्रमाण हैं
  - ❖ बोध:– बुद्धि में अनुभव बोध व चित्त में अनुभव प्रतीति है।
  - ❖ प्रतीति, आभास, भास:– सह अस्तित्व सहज अनुभव आत्मा में होता है। जिसका अनुभव विधि से बोध बुद्धि में होता है। बुद्धि और चित्त के युग में अनुभव की 'प्रतीति' होती है यही अनुभव का चिंतन है। चित्त और वृत्ति के योग में अनुभव का 'आभास' होता है जो स्वयं न्याय, धर्म, सत्य रूप में तुलन क्रिया है। वृत्ति और मन के

योग में अनुभव का 'भास' होता है जो मूल्यों का आस्वादन और **संबंधों** का चयन के रूप में प्रमाणित हो जाता है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 45)**

- मानवीयतापूर्ण समाज या व्यवस्था द्वारा, प्रत्येक **सम्बन्ध** एवं संपर्क का निर्वाह करते हुए, मानवीयता के संरक्षण के लिए किये गए समस्त अध्ययनात्मक प्रयास की संस्कार संज्ञा है तथा आचरण, प्रचार और प्रदर्शन पक्ष की संस्कृति संज्ञा है. **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 50)**
- आवश्यकता: – संपर्क और **सम्बन्ध** के निर्वाह हेतु एवं उपयोग के लिए जो प्रवृत्तियां हैं, उनकी आवश्यकता संज्ञा है. सभी योगों में उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन निहित हैं. **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 56)**
- मानव की परस्परता में जो संपर्क एवं **सम्बन्ध** है वह निर्वाह के लिए, विकास (जागृति) के लिए, तथा भोग के भेद से है। जागृति के लिए जो संपर्क एवं **सम्बन्ध** का प्रयास है, वह सामाजिकता के लिए है। निर्वाह के लिए जो संपर्क एवं **सम्बन्ध** का प्रयास है, वह कर्त्तव्य को पालन करते हुए वर्तमान को संतुलित रखने के लिए और भोगेच्छा से जो संपर्क एवं **सम्बन्ध** का प्रयास है, वह मात्र इन्द्रिय लिप्सा एवं शोषण के कारण है। जिससे असंतुलन और समस्या वश पीड़ा होता है। **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 61)**
- कर्तव्य व आवश्यकता का भाव मानव में है।
  - ❖ कर्तव्य:– **संबंधों** की पहचान सहित निर्वाह क्रिया जिससे निष्ठा का बोध होता है।
  - ❖ दायित्व:– **संबंधों** की पहचान सहित मूल्यों का निर्वाह सहित मूल्यांकन क्रिया जिससे तृप्ति का बोध होता है। **(अध्याय:7 , पृष्ठ नंबर: 61)**
- समस्त कर्त्तव्य **सम्बन्ध** एवं संपर्क की सीमा तक ही हैं. **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 62)**
- नैतिक एवं अनैतिक भेद से स्वार्थवादी व्यवहार है। इसका सम्बन्ध स्वजन, स्ववर्ग, स्वजाति, स्वमन, स्वसम्प्रदाय, स्वपक्ष, तथा स्वभाषा भेद से है, जबकि परार्थ व्यवहार सर्व–जन, सर्व–वर्ग, सर्व जाति, सर्व–मन, सर्व–सम्प्रदाय, सर्व–पक्ष, तथा सर्व–भाषा भेद से है. **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 71)**
- प्रमाद: – जिस कार्य में उपादेयता सिद्ध होती हो, उस सम्बन्ध में ज्ञान के अभाव में वांछित क्रिया न संपन्न होने वाली स्थिति प्रमाद है. **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 75)**
- समस्त संबंधों एवं संपर्कों, वस्तु एवं विषय, रूप एवं आशय के पोषक एवं शोषक भेद से ही मानव ने नियम का पालन किया है। इनमें से मानवीयता के लिए आवश्यकीय तथा अनावश्यकीय नियमों को जान व समझ लेना ही अध्ययन है तथा इनमें से आवश्यकीय वर्गों को सभी स्तरों पर प्रयोग में लाना ही प्रमाण और उपलब्धि है। **(अध्याय:11, पृष्ठ नंबर: 79)**
- जन्म–सिद्ध अधिकार **सम्बन्ध** के अर्थ में, प्रदत्त अधिकार व्यवस्थागत सीमा के अर्थ में तथा समयोचित अधिकार संपर्क के अर्थ में है.

  सम्बन्ध माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहिन, पति–पत्नी, साथी–सहयोगी, गुरु–शिष्य, तथा मित्र के रूप में है. **(अध्याय: 14, पृष्ठ नंबर: 92)**

- मानव संपर्क व **संबंध** में निहित मूल्यों का निर्वाह न होने से ही क्षोभ, विरोध व कठोरता का प्रसव; भौतिक क्रिया में क्षोभ से असमृद्धि व अभाव का प्रसव; शरीर क्षोभ से रोग व क्षीणता का प्रसव; प्राण क्षोभ से उद्विग्नता व निरुत्साह का प्रसव; मनः क्षोभ से असहअस्तित्व व दुख का प्रसव; वृत्ति क्षोभ से आलस्य प्रमाद व अशांति का प्रसव; चित्त क्षोभ से कृत्रिमता (दिखावा), रहस्यता व असंतोष का प्रसव; बोध रहित बुद्धि से भ्रांति, अज्ञान, अभिमान व कृतघ्नता का प्रसव होता है। अवसादवादी व्यवहार ही क्षोभ का कारण है जो गलती और अपराध से मुक्त नहीं है। अवसरवादिता के शीघ्र परिणामवादी होने के कारण इसके व्यवहार में एकसूत्रता का अभाव रहता है। एकसूत्रता के अभाव में आत्मोन्मुख बुद्धि न होने से बुद्धि क्षोभ, बुद्धि अनुयाई चित्त न होने से चित्त क्षोभ, चित्त अनुयाई वृत्ति न होने से वृत्ति क्षोभ, वृत्ति अनुयाई मन न होने से मनः क्षोभ; मनोनुकूल प्राण, हृदय, शरीर व क्रिया न होने से संपर्कात्मक व **संबंधात्मक** व्यवहार में मनः क्षोभ होता है। **(अध्याय:15, पृष्ठ नंबर: 105)**
- जन, धन एवं यश यह कौटुम्बिक और अखंड समाज की संपत्ति है। न्याय–सम्मत **सम्बन्ध** निर्वाह की नीति व रीति से, विधि–विहित किये गए व्यवसाय, प्रयोग व आविष्कार से तथा अनुसंधान और प्रयोजनार्थ से ही इन संपत्तियों का सदुपयोग सिद्ध हुआ है तथा सफलता मिली है, अर्थात जन, धन एवं यश का उपयोग कौटुम्बिक और अखंड समाज समृद्धि के लिए होना चाहिए, न कि वैयक्तिक। इस प्रकार न्यायपूर्ण व्यवहार से ही कुटुंब में परस्पर सहयोग, सहकार्य तथा सह–अस्तित्व की भावना का विकास संभव है, जिससे परस्परता में विश्वास के प्रति दृढ़ता बनेगी। इस प्रकार अवसरवादी मनोवृत्ति का नाश होगा। **(अध्याय: 15, पृष्ठ नंबर: 108–109)**
- भय से निवारण हेतु समुदाय रूपी सामाजिकता की कामना मानव ने किया। सामाजिकता का अर्थ ही है **सम्बन्ध** और संपर्क का निर्वाह। **सम्बन्ध** एवं संपर्क के निर्वाह के लिए आधारभूत प्रेरणास्त्रोत चार हैं: – (१) सभ्यता, (२) संस्कृति, (३) व्यवस्था, (४) विधि. . **(अध्याय: 16, पृष्ठ नंबर: 114)**
- सभ्यता, संस्कृति, व्यवस्था और विधि पूर्वक मानव ने प्राप्त अर्थ का नियोजन करते हुए सुख की अनुभूति की कामना की है। छोटी से लेकर बड़ी इकाई तक ने अर्थ का उपयोग और उपभोग करते हुए सुखी होने का प्रयास किया है, पर जब एकाकी प्रयोग से सुख की उपलब्धि नहीं हुई तो समाज का गठन हुआ तथा ऐसे गठित समाज में संपर्क और **संबंधों** के निर्वाह के लिए नियम स्वीकृत हुए। इन नियमों का सभ्यता एवं संस्कृति के परिपेक्ष्य में अध्ययन करने का प्रयास किया गया तथा इन्हें आवश्यकीय और अनावश्यकीय नियमों के रूप में माना गया। साथ ही इन्ही ऐसा ही मानने और प्रयोग करने हेतु प्रेरणा देने के लिए व्यवस्था और विधि का जन्म हुआ। **(अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 115)**

- **संबंध** एवं संपर्क के विषय में एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है इन दोनों में दायित्व का निर्वाह आदान–प्रदान के आधार पर होता है परंतु दोनों में भेद यह है कि **संबंध** की परस्परता में प्रत्याशाएं पूर्व निश्चित रहती हैं तथा इसके अनुरूप ही आदान–प्रदान होता है संपर्क में आदान–प्रदान परस्परता मे पूर्व निश्चित नहीं रहता। इसीलिए संपर्क में आदान–प्रदान क्रिया ऐच्छिक रूप में अवस्थित है। **संबंध** दायित्व प्रधान एवं संपर्क कर्तव्य प्रधान है। संपर्क में परस्परता में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष दया पूर्ण कार्य व्यवहार की अपेक्षा रहती ही है। मानव अथवा इससे विकसित तक ही **संबंध** है जबकि समस्त इकाईयाँ परस्पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क में है ही। **(अध्याय: 16, पृष्ठ नंबर: 116)**
- सम्पूर्ण संपर्क, **सम्बन्ध** के लिए प्रेरणा स्त्रोत हैं। संपर्क दो प्रकार के होते हैं: – (१) प्राकृतिक संपर्क, (२) मानव संपर्क।
  - ❖ प्राकृतिक संपर्क में जागृत मानव प्राकृतिक एश्वर्य का उपयोग व सदुपयोग करता है। समस्त भौतिक संपर्क तथा इसकी उपलब्धियाँ संबंध के निर्वाह के लिए ही होती है। मानव संपर्क से अपने विकास के लिए प्रेरणा पाता है अथवा उसके लिए प्रवृत्त होता है।
  - ❖ मानव संपर्क जो जागृति के लिए प्रेरणा देता है पोषण है। **(अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 116–117)**
- जो जिसका मूल्यांकन नहीं करेगा वह उसका सदुपयोग नहीं करेगा या नहीं कर सकेगा। अतः मानव के हर पक्ष का मूल्यांकन आवश्यक है।

❖ संपूर्ण संबंधों के मूल में मूल्यांकन आवश्यक है। मूल्यांकन मौलिकता का ही होता है। मौलिकता के आधार पर ही कर्तव्य का निर्धारण तथा निर्वाह होता है। दायित्वों का निर्वाह जिस इकाई के प्रति होना है उस इकाई के प्रति न होने से उसका पोषण अवरुद्ध होता है अथवा शोषण है साथ ही जिस इकाई द्वारा दायित्व का निर्वाह होना है उसे, न होने की स्थिति में प्रतिफल के रूप में अविश्वास ही मिलेगा। अविश्वास ही द्रोह, विद्रोह तथा आतंक का कारण बनता है जो शोषण की ओर प्रेरित करता है।

❖ प्रत्येक संबंध में संपर्क निहित है ही। संबंध में भाव (मौलिकता) पक्ष विशिष्ट है तथा भौतिक पक्ष गौण है। प्रत्येक संबंध में भाव का जितना तिरस्कार होता है भौतिक पक्ष उतना ही प्रबल होता है संबंधों में भाव का निर्धारण मानवीय परंपरा के अनुसार हैं। संबंधों के निर्वाह में भाव पक्ष का तिरस्कार कर भौतिक पक्ष को वरीयता प्रदान कर जब आचरण किया जाता है तो अपने से अविकसित को विकास का लक्ष्य मान लेने की भ्रमित मान्यता का जन्म होता है जबकि समस्त भौतिक पक्ष मनुष्य से अविकसित है ही इसीलिए विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है। परिणामत: यह मानव ने भौतिक उपलब्धियों के लिए ही युद्ध किया है।

(अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 117)

- किसी भी उपलब्धि के प्रति आवश्यकीय नियम सहित पूर्ण समझ की 'निश्चय' तथा अपूर्ण समझ से किये गए प्रयास की 'मान्यता' संज्ञा है।

  अतः **सम्बन्ध** में भाव पक्ष का तिरस्कार ही उस **सम्बन्ध** का शोषण है। (**अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 117**)

- मानव के लिए पोषण युक्त सम्पर्कात्मक एवं **संबंधात्मक** विचार एवं तदानुसार व्यवहार से ही मानवीयता की स्थापना संभव है, अन्यथा, शोषण और अमानवीयता की पीड़ा है।....(**अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 117**)

- दायित्व का विरोध करना पालन करना– मौलिक मान्यताएं जो **संबंध** एवं संपर्क में निहित है उसके विरोध में ह्रास के योग्य मान्यता को प्रचारित एवं प्रोत्साहित करना ही दायित्व का विरोध करना है। दायित्वों का विरोध अभिमानवश एवं अज्ञानवश किया जाता है। (**अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 118**)

•

इकाई	गठन की विशिष्टता	गठन का उद्देश्य	आशित आचरण
मानव	अनुभव संपन्न जीवन एवं शरीर	सुखानुभूति	न्यायसम्मत व्यवहार
परिवार	सीमित समझदार व्यक्तियों के समूह का **सम्बन्ध** प्रधान गठन	समाधान एवं समृद्धि	साधनों के लिए उत्पादन एवं प्रयोग समाधानपूर्वक
समाज	सीमित परिवारों का समूह, जिसमे **सम्बन्ध** एवं संपर्क दोनों सम्मिलित हों।	समृद्धि सहित सत्यता एवं अखण्ड सामाजिकता को आत्मसात करना अर्थ का सदुपयोग– सुरक्षा	जागृति पूर्वक प्रचार एवं प्रदर्शन तथा प्रोत्साहन। शिक्षा – संस्कार विधि से लोकव्यापीकरण
राष्ट्र	राष्ट्रव्यापी जनजाति के समूह का गठन एवं संपर्क के निर्वाह के लिए विधि की प्रधानता।	मानवीयता का संरक्षण प्रत्यक्ष रूप में अर्थ की सुरक्षा।	न्याय पूर्ण व्यवस्था।
विश्व	कई राज्यों का समूह जिसके मूल गठन में मानवीयता प्रधान संयोजक तत्व है सार्वभौम–व्यवस्था के अर्थ में	मानवीयता को प्रोत्साहन।	सह–अस्तित्व में, से, के लिए।

❖ उपरोक्त वर्णित उद्देश्य अर्थात तन, मन और धन के सदुपयोग और तन, मन और धन की सुरक्षा की पूर्ति के लिए तथा तदनुकूल आचरण को व्यवहार में लाने हेतु और तदनुसार विभिन्न स्तरों के गठन की संपर्कात्मक तथा **संबंधात्मक** परस्परता को विश्वास पूर्वक सुदृढ़ करने के लिए एक समन्वित धर्म नीति तथा राजनीति आवश्यक है जिससे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित तथा विकसित किया जा सके, जो मानव के जागृति की संपूर्ण संभावनाओं से युक्त हो। ऐसी व्यवस्था मात्र पोषण प्रदान गुणों व नीतियों से ही संपन्न होगी जो जागृति का मार्ग प्रशस्त करेगी जिससे मानव सुखी रहेगा।... **(अध्याय:16, पृष्ठ नंबर: 118)**

- मानव धर्म नीति

  परिभाषा –

  अर्थ की सदुपयोगिता नीति ही धर्मनीति है।

❖ मानव की सार्वभौमिक साम्य कामना सुख की अनुभूति हेतु मानव के समस्त संपर्क एवं **संबंध** के निर्वाह के लिए समाधान, समृद्धि, अभय व सह–अस्तित्व सहज प्रमाण प्रस्तुत करना निश्चित कार्यक्रम है, उसे 'मानव धर्म नीति' की संज्ञा है।

  आवश्यकता

  मानव धर्म नीति सहज समझ तथा परिपालन इसलिए आवश्यक है कि मानव प्रयोग एवं उत्पादन द्वारा प्राप्त अर्थ तथा प्राप्त प्राकृतिक संपदा के सदुपयोग की कामना करता है।

★ धर्म नीति का अध्ययन मानव के परस्परता में पाए जाने वाले संपर्क एवं **संबंध** का अध्ययन है क्योंकि मानव संपर्क एवं **संबंध** से सुखी अथवा दुखी हो रहा है ना कि वस्तु वाहन आदि से **(अध्याय: 16, पृष्ठ नंबर: 120)**

- अखंड समाज समझदारी सहित समझदार व्यक्तियों के उद्देश्यपूर्ण आचरण संहिता समेत व्यवस्था प्रणाली ही है। अखंड समाज में व्यक्ति संपर्क एवं सम्बन्ध द्वारा जुड़ा हुआ है। **(अध्याय: 16 (i), पृष्ठ नंबर: 121)**
- **मानव समाज में परस्पर निम्न सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है: –**

  1. पिता–माता एवं पुत्र–पुत्री सम्बन्ध
  2. पति–पत्नी सम्बन्ध
  3. गुरु और शिष्य सम्बन्ध
  4. भाई और बहन सम्बन्ध
  5. साथी–सहयोगी सम्बन्ध
  6. व्यवस्था और समग्र–व्यवस्था सम्बन्ध
  7. मित्र सम्बन्ध **(अध्याय:16 (i), पृष्ठ नंबर: 121)**

- **पिता–माता एवं पुत्र–पुत्री सम्बन्ध**: – माता–पिता के सम्बन्ध में पुत्र–पुत्री के साथ मातृ–भाव में शरीर–भाव प्रधान रहता है तथा पितृ सम्बन्ध में बौद्धिक विकास की भावना प्रधान रहता है। मूल रूप में माता पोषण प्रधान तथा पिता संरक्षण प्रधान स्पष्ट है।

  माता पिता की पहचान हर मानव संतान किया ही करता है। शिशुकाल की स्वस्थता का यह पहचान भी है। अतएव माता–पिता जिन मूल्यों के साथ प्रस्तुत होते हैं, वह ममता और वात्सल्य है। ममता मूल्य के रूप में पोषण प्रधान क्रिया होने के रूप में या कर्त्तव्य होने के रूप में स्पष्ट है। इसलिए माँ की भूमिका ममता प्रधान वात्सल्य के रूप में समझ आती है। ममता मूल्य के धारक–वाहक ही स्वयं में माँ है तथा पिता वात्सल्य प्रधान ममता के रूप में समझ आता है।

  अभिभावक संतान का अभ्युदय ही चाहते हैं। कुछ आयु के अनंतर इसका प्रमाण चाहते हैं।

  माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं। उदाहरणार्थ शैशव–अवस्था में केवल बालक का लालन–पालन ही माता–पिता का पुत्र–पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं। कौमार्यावस्था में किंचित शिक्षा एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं। इसी अवस्था में आज्ञापालन प्रवृत्ति, अनुशासन, शुचिता, संस्कृति का अनुकरण, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्पादन सहित उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं। सभ्यता के मूल में हर माता–पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिए तन, मन, एवं धन से संतान की सेवा किया करते हैं। संतान के लिए हर माता–पिता अपने मन में अभ्युदय, समृद्धि तथा सम्पन्नता की ही कामना रखते हैं, इन सबके मूल में कृतज्ञता की वाँछा रहती है। जो संतान माता–पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयं क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं। (**अध्याय:16 (i), पृष्ठ नंबर: 121–122**)

- पति–पत्नी सम्बन्धः –

दाम्पत्य जीवन की चरम उपलब्धि 'एक मन और दो शरीर हो कर' व्यवहार करना है। दाम्पत्य जीवन में व्यवहार निर्वाह संपर्क एवं सम्बन्ध ही है। तात्पर्य यह है कि दाम्पत्य जीवन व्यक्ति के रूप में दो हैं, और व्यवहार के रूप में एक हैं।

एक मन और दो शरीर अनुभव करने के लिए दोनों पक्षों द्वारा निर्विरोध पूर्वक अपने सम्बन्ध एवं संपर्क का निर्वाह करना ही अवसर, आवश्यकता तथा उपलब्धि है। जहाँ तक मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, आदर और यश का प्रश्न है, वह पति अथवा पत्नी दोनों में सम्मिलित रूप में रहता है तथा उनमे से किसी एक को भी मिलने पर दूसरे पक्ष में वह समान रूप में बंटता ही है और इसकी स्वीकृति भी है। पति–पत्नी के रूप में दो शरीर एक मन होने का यही प्रमाण है।

परस्परता रुपी सभी संबंधों में विश्वास मूल्य सदा–सदा होना परमावश्यक है। यही मूल मुद्दा है संबंधों को पहचानने का। सभी सम्बन्ध अथवा स्थापित सम्बन्ध पहचान में होने के उपरान्त शरीर काल तक निर्वाह होने की बात आती है। यही जागृत मानव परंपरा का प्रमाण है। संबंधों में से एक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध पति–पत्नी सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में परस्परता में मूल्यों का पहचान इस प्रकार से होता है कि विश्वास पूर्वक सम्मान, स्नेह, व प्रेम मूल्यों का निरंतर अनुभव होता है या समय–समय पर होता है। न्यूनतम विश्वास मूल्य बना ही रहता है। प्रेम मूल्य दया, कृपा, करुणा की अभिव्यक्ति है। इस विधा में पति में मूल्यांकन के आधार पर दया, कृपा, करुणा मूल्यों का स्पष्ट होना, उसी प्रकार से पत्नी द्वारा भी इन मूल्यों का स्पष्ट होना ही प्रेम मूल्य है। वास्तविक रूप में पात्रता के अनुसार वस्तु का मूल्यांकन, योग्यता के अनुसार पात्रता का मूल्यांकन परस्परता में होना स्वाभाविक क्रिया है। यह नित्य नैमित्यिक है। नित्य मूल्यांकन का तात्पर्य हम मूल्यांकन में अभ्यस्त हो गए हैं। नैमित्यिक का तात्पर्य – प्रयत्न पूर्वक ध्यान पूर्वक मूल्यांकन करने से है। ऐसी स्थिति बारम्बार होते–होते मूल्यांकन सहज रूप से होना पाया जाता है। इस प्रकार योग्यता के अनुसार पात्रता, पात्रता के अनुसार योग्यता का मूल्यांकन विशेषकर पति–पत्नी सम्बन्ध में होना अति आवश्यक है। ये दोनों मूल्यांकन के साथ ही पात्रता और योग्यता में संतुलन स्थिति को पाया जाता है। तीसरी विधि से पति या पत्नी अथवा दोनों में योग्यता, पात्रता हो ही नहीं, यह दाम्पत्य जीवन अथवा किसी भी प्रौढ़/युवा में संभव ही नहीं है। यही हो सकता है कि योग्यता और पात्रता का न्यूनातिरेक हो सकता है। इसी में सामंजस्य को पाने के लिए दाम्पत्य जीवन का महती उपयोग होना पाया जाता है। इन तथ्यों को, पूर्व आशयों को भुलावा देना ही दुःख और परेशानी का कारण है। यही भ्रम है। **(अध्यायः 16(i), पृष्ठ नंबरः 122–123)**

- **गुरु और शिष्य सम्बन्ध: –**

गुरु की शिष्य के प्रति आशा बंधी रहती है कि जो अध्ययन कराया जाता है, उसका बोध शिष्य को होगा। शिष्य कृतज्ञ व आज्ञाकारी होगा।

शिष्य की गुरु से प्रत्याशा रहती है कि उसकी वांछा तथा जिज्ञासा के आधार पर उन्ही दिशाओं में गुरु द्वारा अध्ययन कराया जाएगा। गुरु और शिष्य दोनों में उपलब्धि की कामना की साम्यता है। प्रक्रिया में पूरकता है। एक प्रदाता है और दूसरा प्राप्तकर्ता है। प्राप्तकर्ता और प्रदाता की एक ही अभिलाषा है कि 'बोध' पूर्ण हो जाए।

शिष्य का अर्थ बोध पूर्ण हो जाता है, उस समय गुरु पर्व मनाता है अर्थात गुरु को प्रसन्नता की अनुभूति होती है, यही वात्सल्य स्थिति है। तात्पर्य यह है कि हर एक बड़े अपने से छोटों में वांछित गुणों की प्रसारण क्रिया में तत्पर रहते हैं। इसके बदले में जो तोष (उत्सवित होना) वे पाते हैं, वही इसकी उपलब्धि है। प्रदाय के बदले में किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा नहीं रहती।

शिष्य का गुरु के साथ विश्वास सहित पहचान किया रहना सहज है। यह स्वाभाविक मिलन है। योग, मिलन के रूप में स्पष्ट होता है। गुरु–शिष्य का योग अपने में जागृति के आकांक्षा पूर्वक कार्य–व्यवहार और अध्ययन करना, क्योंकि गुरु ही अध्ययन कराने वाला सुस्पष्ट है। अध्ययन कराने के क्रम में सदा–सदा शिष्य द्वारा ग्रहण करने की अपेक्षा व विश्वास समाया रहता है। उसमे जितने भी शिष्य सार्थक होते हैं, गुरु में प्रसन्नता का स्त्रोत समाया रहता है, यह स्पष्ट हो चुका है। यही गुरु–शिष्य के परस्परता में सफलता का प्रमाण है। जैसे–जैसे शिष्य का आकांक्षा और जिज्ञासा शांत होता है, वैसे ही सभी संशय दूर होते जाता है। ऐसे संशय मुक्ति विधि से गौरव, श्रद्धा, कृतज्ञता मूल्य शिष्य में गुरु के लिए अर्पित होना पाया जाता है। इस प्रकार गुरु–शिष्य में मूल्यों का मूल्यांकन पूर्वक उत्सवित होना स्वाभाविक होता है। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 123–124)**

- **भाई और बहन सम्बन्ध: –**

भाई और बहन के सम्बन्ध को सौहार्द भाव के नाम से जाना जाता है। इसमें परस्पर जागृति की प्रत्याशा एवं उत्साह है। एक की जागृति, दूसरे पक्ष की जागृति को आप्लावित कर देता है। जैसे यदि कोई बहन किन्ही विशेष सदगुणों से संपन्न है तो इसके कारण बहन स्वयं में जितना आप्लावित है उतना ही अथवा उससे अधिक आप्लावन भाई में पाया जाता है। इसी प्रकार भाई का भाई के साथ और बहन का बहन के साथ पाया जाता है।

भाई–बहन की पहचान एक निश्चित आयु में हो पाती है। पहचान होते ही परस्परता में सच्चाई, समझदारी और परिवार सम्मत अथवा जागृत–मानव परिवार सम्मत अपेक्षा के अनुसार, कौमार्य अवस्था में आज्ञापालन सहयोग और अनुसरण जैसे कार्यों में परस्पर मूल्यांकन होना पाया जाता है। यही मित्रों के साथ भी होता है। जब भाई–बहन इन मुद्दों पर मूल्यांकन करने लगते हैं तब भी अभिभावक और गुरुजनों के साथ आज्ञापालन सम्बन्ध रहता ही है। अनुसरण भी इन्ही दो पक्षों से जुड़ा रहता है। मूल्यांकन में यह सब बात स्पष्ट होना स्वाभाविक रहता है। जहां तक सहयोग की अभिव्यक्ति है, इसमें एक दूसरे को अधिकाधिक सटीकता की और विचार अथवा प्रकाशित होने की सम्भावना बनी ही रहती है।

कौमार्य और युवावस्था के बीच भाई–बहन, भाई–भाई, बहन–बहन के परस्परता में अनुशासन की बात आती है। अनुशासन आज्ञा पालन के क्रम में एक पक्षीय हो पाते हैं। अनुशासन गुरुजनों व अभिभावकों से जीने में प्रमाणित रहने के आधार पर, अनुशासन बोध संतानों में होना स्वाभाविक है। इन्ही तथ्य के आधार पर, हर मानव संतान अनुशासन को अपने विचारों से जोड़ना शुरू करता है। उसी के साथ आवश्यक–अनावश्यक, उपयोगी–अनुपयोगी विधा में भी वैचारिक प्रयुक्तियाँ होना स्वाभाविक रहता है। इस प्रकार अनुशासन आवश्यकता, उपयोगिता के आधार पर स्वीकृत होना शुरू होता है। शनैः शनैः हर मानव संतान क्रम से अनुशासन में दक्ष होना पाया जाता है।

इन सभी विधाओं में मानव संतान गुजरता हुआ अर्थात आज्ञापालन, अनुशासन प्रक्रिया से सोच–विचार प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ अपने आप में निश्चय की प्रक्रियाएं आरम्भ होते ही यही निश्चयन सुस्थिर होना ही आज्ञापालन और अनुशासन के आशय रहता ही है।

जैसे ही युवावस्था में पहुँचते हैं, स्वाभाविक रूप में स्वानुशासन का प्रमाण आवश्यकता के रूप में होता ही है। यही अभ्युदय का प्रमाण होना पाया जाता है। स्वानुशासन सर्वतोमुखी समाधान के रूप में ही प्रमाणित होता है। यही मानव संचेतना की अपेक्षा और सार्थकता है। यह शिक्षा–संस्कार कार्यों से लोक–सुलभ होना पाया जाता है। जागृत मानव परंपरा में ही मानवीय शिक्षा संस्कार सार्थक होना पाया जाता है। इस विधि से कार्य–व्यवहार विचार संपन्न होते हुए भाई–बहन–मित्र संबंधों में विश्वास पूर्वक सम्मान व मूल्यांकन पूर्वक परस्परता में स्नेह मूल्य को

सदा–सदा प्रमाणित करना होता है। इस विधि से इन संबंधों में विश्वास, सम्मान, स्नेह मूल्य प्रधान रहता है, साथ ही प्रेम मूल्य स्पष्ट होना भावी रहता है। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 124–125)**

- **साथी–सहयोगी सम्बन्ध: –**

एक दूसरे के लिए पूरक विधि से सार्थक होना पाया जाता है। यह सम्बन्ध सहयोगी की कर्त्तव्य निष्ठा से व साथी के दायित्व निष्ठा से सार्थक होना पाया जाता है। यह परस्पर पूरक सम्बन्ध है। इनमे मूल मुद्दा दायित्व को निर्वाह करना, कर्तव्यों को पूरा करने में ही परस्परता में संगीत होना पाया जाता है। यह जागृत परंपरा की देन है। इसमें मुख्यतः विश्वास मूल्य रहता ही है। गौरव, सम्मान, स्नेह मूल्य अर्पित रहता है। इस विधि से मंगल मैत्री होना स्वाभाविक है।

उपलब्धि एवं विकास के आधार पर सहयोगी संबंध दो पक्षों में गण्य है साथी (स्वामी) से सहयोगी (सेवक) अकिंचनता को स्वीकारता है। उसे परिप्रेक्ष्य में सहयोगी, साथी को श्रेष्ठ मानता है, जो उसकी मौलिकता है। इस संबंध में साथी, सहयोगी का पूरा उत्तरदाई हो जाता है और सहयोगी साथी को ही उस परिप्रेक्ष्य पक्षों का कर्ता मानता है। इस संबंध में साथी के विशेष गुण, निपुणता कुशलता दिखाई पड़ता है। साथी– सहयोगी संबंध वह है जिसमें पद एवं भौतिक आदान–प्रदान परस्परता में निश्चित व प्रत्याशित रहता है। इस प्रकार इस संबंध में भी सुखद स्थिति की निरंतरता देने वाली वस्तु विश्वास ही है। अस्तु इसमें विश्वास की स्थिरता प्रदान किया रहना है इस संबंध की अंतिम अनुभूति है। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 126)**

- **समझदार मानव परंपरा में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सम्बन्ध:–**

★ मानवत्व सहित व्यवस्था में विधि समाई रहती है। विधान निर्वाह रूप में प्रमाणित होता है। व्यवस्था का धारक–वाहक जागृत मानव ही होता है। व्यवस्था में भागीदारी करने के लिए मानव को जागृत होना रहना आवश्यक है। जागृति पूर्वक ही हर नर–नारी जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

★ साधक द्वारा साथियों की उपलब्धि की संभावनाओं के अनुरूप फल मिलने पर निर्णय होता है कि साधना सही दिशा में गतिशील है। संभावनाएं सुदृढ़ होने पर मान्यताओं के रूप में अवतरित होती है। सभी मान्यताएं विकास अर्थात जागृति तथा व्यवहार के लिए है।

★ विकास के लिए जो मान्यताएं हैं वह अंतरंग में अभ्यास एवं जागृति के लिए प्रेरणा स्रोत तथा बहिरंग में सामाजिकता तथा व्यवसाय के लिए प्रेरणा स्रोत है। सामाजिक दायित्व का प्रमाण हर समझदार परिवार में समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने में प्रमाणित होता है। यह क्रमशः सम्पूर्ण मानव का एक इकाई के रूप में पहचान पाना बन जाता है। पहचानने के फलन में निर्वाह करना बनता ही है। ऐसी निर्वाह विधि स्वाभाविक रूप में मूल्यों से अनुबंधित रहता ही है।

यही व्यवस्था में भागीदारी की स्थिति में परिवार–व्यवस्था से अंतर्राष्ट्रीय या विश्व–परिवार व्यवस्था तक स्थितियों में भागीदारी की आवश्यकता रहता ही है। ऐसे भागीदारी के क्रम में मानव अपने में, से समझदारी विधि से प्रस्तुत होना बनता है। समझदारी विधि से ही हर नर–नारी व्यवस्था में भागीदारी करना सुलभ सहज और आवश्यक है। इसी क्रम से मानव लक्ष्य प्रमाणित होते हैं जो समाधान–समृद्धि–अभय–सह–अस्तित्व के रूप में पहचाना गया है, इसे प्रमाणित करना ही मानवीयता पूर्ण व्यवस्था है। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 126–127)**

- मित्र सम्बन्ध

समाधान, समृद्धि सहज समानता ही मित्र सम्बन्ध है एवं सर्वतोमुखी समाधान में सहभागिता हो उसकी 'मित्र' संज्ञा है।

इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि एक पक्ष यदि किसी विपरीत घटना या परिस्थिति से घिर जाए तो दूसरा पक्ष अपना पूरा तन, मन, और धन व्यय करने के लिए तथा उस मित्र को उस घटना–विशेष अथवा परिस्थिति–विशेष से उबारने के लिए प्रयत्नशील हो जाए। यही मित्रता की चरम उपलब्धि है। घटना ग्रस्त या परिस्थिति ग्रस्त मित्र की जो कठिनाइयाँ हैं, वह पूरी की पूरी दूसरे मित्र को प्रतिभासित होती हैं। मित्रता की कसौटी यही है कि परस्पर कठिनाइयों को दूसरा पक्ष सटीक स्वीकार लेता है और यदि उसका परिहार है, तो उसके लिए अपनी शक्तियों को नियोजित करता है।

मित्रता की निरंतरता न्याय पूर्ण व्यवहार से ही सफल होती है। निर्वाह के इन समस्त संबंधों से व्यष्टि से समष्टि तक पोषक अथवा शोषक सिद्ध है। मित्र–मित्र सम्बन्ध की परस्परता में विश्वास, सम्मान, व स्नेह मूल्य प्रधान हैं एवं प्रेम सम्बन्ध भावी रहता है। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 127)**

- उपरिवर्णित **सम्बन्ध** एवं संपर्क में तारतम्यात्मक व्यवहार पक्ष के आनुषंगिक मानव का, विभिन्न विभूतिपरक एवं स्थितिपरक अध्ययन आवश्यक तथा वांछनीय है। अस्तु, सभी मानव आबाल–वृद्ध निम्न बारह स्थिति में गण्य हैं। ये सभी सुखी होना चाहते हैं। सुख भी नियम से, दुःख भी नियम से होना सिद्ध हुआ है। अतः निम्न बारह स्तर में पाए जाने वाले मानव किन नियम सिद्ध प्रक्रिया द्वारा सुखी होना पाए जाते हैं, उसका स्पष्टीकरण निम्नानुसार है – यह सब व्यवहार सम्बन्ध सम्पर्कात्मक हैं।

1. बलवान दया पूर्वक सुखी होता है।
2. बुद्धिमान विवेक तथा विज्ञान पूर्वक सुखी होता है
3. रूपवान सत्चरित्रता पूर्वक सुखी होता है।
4. पदवान न्याय पूर्वक सुखी होता है।
5. धनवान उदारता पूर्वक सुखी होता है।

6. विद्यार्थी निष्ठा पूर्वक सुखी होता है।
7. सहयोगी कर्त्तव्य पूर्वक सुखी होता है।
8. साथी दायित्व पूर्वक सुखी होता है।
9. तपस्वी संतोष पूर्वक सुखी होता है।
10. लोक सेवक स्नेह पूर्वक सुखी होता है।
11. सह–अस्तित्व (ईश्वर) में प्रेम पूर्वक मानव सुखी होता है।
12. रोगी तथा बालक के साथ आज्ञापालन के रूप में सुखानुभूतियाँ सिद्ध हुई हैं। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 128–129)**

- धर्मनीति के परिपालन से समस्त सम्पर्कात्मक तथा **संबंधात्मक** व्यवहार में क्या अपेक्षा की जाती है, जिससे कि जीवन सफल होता है नीचे दर्शाया गया है। ऐसी धर्मनैतिक व्यवस्था तथा इसके लिए किया गया समस्त व्यवहार, प्रयोग, तथा प्रयास अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का पोषक है।

1. पुरुष का जीवन यतित्व से सफल है। पुरुष में जागृति को प्रमाणित करना यतित्व है।
2. स्त्री का जीवन सतीत्व से सफल है। स्त्रियों में जागृति का प्रमाणित होना सतीत्व है।
3. माता–पिता का जीवन व्यक्तित्व से सफल है।
4. पुत्र का जीवन नैतिकता के प्रति निष्ठा से सफल है।
5. व्यवस्था, न्यायपूर्ण नियम के समर्थन व पालन से सफल है।
6. प्रजा का जीवन समग्र व्यवस्था में भागीदारी से तथा अनुशासन एवं नियम को स्वीकारने से सफल है।
7. गुरु का जीवन अनुभव को प्रामाणिकता पूर्वक अध्ययन कराने से सफल है।
8. शिष्य का जीवन गुरु द्वारा कराये गए अध्ययन के श्रवण, मनन तथा अर्थ–बोध सम्पन्नता से सफल है।
9. सहयोगी का जीवन कर्त्तव्य को निर्वाह करने से सफल है।
10. साथी का जीवन दायित्वों को निर्वाह करने से सफल है।
11. भाई या बहन का जीवन एक दूसरे के अनन्य जागृति की आशा से तथा स्नेह सहित दायित्व वहन करने से है।
12. मित्र का जीवन परस्पर उदारता पूर्ण, समृद्धि सहित सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने से सफल है।

उपरोक्तानुसार व्यवहार करने में समस्त मानव पाँचों स्थितियों में सफल हो जाये, यही धर्मनैतिक व्यवस्था का उद्देश्य है तथा शोषण के लिए प्राप्त समस्त प्रवृत्तियों का समूल निराकरण, मात्र उपरोक्तानुसार प्रतिष्ठित आचरण से ही संभव है। इसी विधि से अखंड समाज का प्रतिष्ठित होना स्पष्ट है। **(अध्याय: 16(i), पृष्ठ नंबर: 129–130)**

- समस्त अर्थ नीति द्वारा मानवीयता पूर्ण दृष्टि, स्वभाव व विषय को लक्ष्य में रखते हुए समस्त संपर्क तथा संबंधों का निर्वाह करने में व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक को समृद्धि होने की पूर्ण सम्भावना होनी चाहिए, जिसका मूर्त रूप अधिक उत्पादन और कम उपभोग पूर्वक स्वधन, स्व–नारी/स्वपुरुष, एवं दया पूर्ण कार्य–व्यवहारों में निष्ठा एवं परधन, परनारी/परपुरुष एवं परपीड़ात्मक क्रियाओं का निराकरण ही है, क्योंकि अंततोगत्वा समस्त संपर्क एवं सम्बन्ध और संपत्ति का साकार व्यवहार्य रूप स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष और दया पूर्ण कार्य–व्यवहार ही है। **(अध्याय: 16(ii), पृष्ठ नंबर: 135)**
- व्यवसाय की सुरक्षा के लिए नीति निर्धारण करते समय न्याय के आश्रम से या न्यायोचित उत्पादन नीति का विकास करने से ही संपर्क एवं संबंधों के निर्वाह हेतु उपयुक्त उपयोग सदुपयोग वितरण प्रयोग व व्यवसाय के लिए समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेगा **(अध्याय: 16(ii), पृष्ठ नंबर: 135)**

- जीवन सदा सुख पिपासा से तृषित रहता है।
  - ★ सुख की उपलब्धि के लिए पंचेंद्रियों द्वारा अजस्त्र प्रयत्न के पश्चात भी उसकी (सुख की) अक्षुण्णता या निरंतरता न हो पाने के परिणाम स्वरूप ही ऐसे सुख की निरंतरता की सम्भावना की ओर मानव पुनः प्रयत्नशील होता है। ऐसी सम्भावना इस सिद्धांत पर है कि जिसका चैतन्य पक्ष जितना जागृत है उसके पूर्ण होने व प्रमाणित होने की उतनी ही सम्भावना है। जिससे सुख की निरंतरता होती है। यही कारण है कि मानव अपने से अधिक जागृत से संपर्क व सम्बन्ध के लिए प्रयत्नशील रहता है। **(अध्याय:17, पृष्ठ नंबर: 138)**
- सामाजिकता की 'अपेक्षा' उसके योग्य वैचारिक संवेदनशीलता से है। वैचारिक परिमार्जन आवश्यक है क्योंकि सामाजिकता का संरक्षण संपर्कों एवं **संबंधों** के निर्वाह से हैं। सामाजिकता का निर्वाह परिमार्जित विचार एवं संज्ञानपूर्ण व्यवहार से ही है। ऐसे परिमार्जित विचार एवं व्यवहार, मात्र मानवीयता एवं अतिमानवीयता से संपन्न होने पर ही संभव है। यही जागृति है। **(अध्याय:17, पृष्ठ नंबर: 146)**
- न्याय:– मानवीयता के पोषण के लिए संपादित क्रियाकलाप व व्यवहार। **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन उदय तृप्ति ही न्याय है। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 158)**
- कर्त्तव्य: – प्रत्येक स्तर पर प्राप्त **सम्बन्ध** एवं संपर्क के मध्य निहित मानवीयतापूर्ण आशा व प्रत्याशा का व्यवहार। मूल्यों का निर्वाह। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 158)**
- अकर्त्तव्य:– प्रत्येक स्तर पर प्राप्त **संबंध** एवं संपर्क के मध्य निहित मानवीयतापूर्ण आशा व प्रत्याशा का निर्वाह न करने के स्थान पर अमानवतावादी आचरण का अकर्त्तव्य है। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 158)**
- न्यायपूर्ण व्यवहार: – सत्य सहज **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 161)**

- न्याय (सौजन्यता), संवेदना

  न्याय :– मानवीयता के पोषण, संवर्धन एवं मूल्यांकन के लिए संपादित क्रियाकलाप।

  :– संबंधों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह मूल्यांकन व उभयतृप्ति क्रिया। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 172)**

- अनुरागः – निर्भ्रमता में प्राप्त आप्लावन (अनुपम रसास्वादन संभावना की स्वीकृति)

  :– आप्लावन अर्थात संबंधों में निहित मूल्यों का निर्वाह करने में सफलता। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 174)**

- दायित्व:– परस्पर व्यवहार, व्यवसाय एवं व्यवस्थापक संबंधों में निहित, मूल्यानुभूति सहित, शिष्टता पूर्ण व्यवहार। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 175)**

- सहयोगी, कर्तव्य

  सहयोगी :– प्रणेता अथवा अभ्युदय के अर्थ में मार्गदर्शक अथवा प्रेरक के साथ–साथ अनुगमन करना, स्वीकार पूर्वक अनुगमन करना, स्वीकार पूर्वक गतित होना। उत्पादन में सहयोगी होना।

  कर्तव्य:– प्रत्येक स्तर में प्राप्त संबंधों एवं संपर्कों और उसमें निहित मूल्यों का निर्वाह। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 175)**

- **शिष्य, जिज्ञासु**

  शिष्यः – जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए शिक्षा–संस्कार ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमें गुरु का **सम्बन्ध** स्वीकृत हो चुका रहता है।

  जिज्ञासुः – जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम शिक्षा ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन। **(अध्याय:18, पृष्ठ नंबर: 176)**

संदर्भ: मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- प्रत्येक कर्म में कर्ता, कारण, उद्देश्य, फल एवं प्रभाव ये पाँच अंग समाहित रहते हैं। आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही सम्पर्क एवं **संबंध** है। आवश्यकता ही इच्छा है, जिसके मूल में समाज, सामाजिकता, उसका पालन, परिपालन, आचरण, अनुसरण एवं अनुशीलन समाया रहता है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 2)**
- मानव के लिये अशेष परिस्थितियाँ उनसे सम्पादित कर्म, उपासना, ज्ञान–योग्य–क्षमता से ही निर्मित होती हैं। यही परिस्थितियाँ उचित अनुचित वातावरण का रूप धारण करती हैं। इसलिये–

  जागृत–मनुष्य का आचरण एवं व्यवहार ही व्यवस्था है जो शांति का कारण है।

  जहाँ तक मनुष्य का सम्पर्क है वहाँ तक दायित्व का अभाव नहीं है।

  संबंध में दायित्व का निर्वाह होता ही है।

  संबंध में दायित्व प्रधान कर्त्तव्य और संपर्क में कर्त्तव्य प्रधान दायित्व वर्तमान है। यही सामाजिकता है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 12)**

- सह– अस्तित्व में ज्ञान ही दृश्य, मानव दृष्टा, मानवत्व पूर्वक दृष्टि होना स्पष्ट है। इसलिए सह–अस्तित्व में ज्ञान, सह–अस्तित्व में व्यवहार व समाधान प्रमाणित होता है फलस्वरुप व्यवस्था प्रमाणित होती है।
  व्यवहारिक मूल्य ही स्थिर मूल्य है।
  मानव **संबंध** एवं संपर्क पर्यन्त्र व्यवहार के लिए अवसर सम्पन्न है।
  मूल्य विहीन संपर्क एवं **संबंध** नहीं है।
  प्रत्येक परस्परता में अपेक्षाएँ समाहित हैं। मूलतः सापेक्षता है। यही आवश्यकता है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 21)**
- मानव कुल के साथ स्नेह करने की क्षमता ही विश्वास एवं संतोष की निरंतरता है। यही अग्रिम विकास के लिए उत्साह एवं प्रवर्तन भी है।
  विश्वासविहीन **संबंध** सफल नहीं है। **संबंध** रहित स्थिति में कर्म सिद्धि नहीं है।
  प्रत्येक सामाजिक मूल्य का निर्वाह विश्वास पूर्वक ही सफल हुआ है। **(अध्याय:1, पृष्ठ नंबर: 31)**
- "विश्वासविहीन **सम्बन्ध** एवं सम्पर्क में सुख नहीं है।" **सम्बन्ध** एवं सम्पर्क विहीन मनुष्य नहीं है। यही बाध्यता स्वधर्म के लिये है। इसके पालन में जो अक्षमता, अयोग्यता एवं अपात्रता है – वही दुख, क्लेश, समस्या और अजागृति है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 41)**

- सहअस्तित्व वादी विधि से शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव परंपरा वैभवित है। जीवन जागृति ही मन: स्वस्थता का प्रमाण है। जीवन में ही संपादित होने वाली, वैभवित होने वाली, अनुभव मूलक विधि से, अनुभवों का बोध बुद्धि में, चिंतन चित्त में, न्याय धर्म सत्य पूर्वक समुचित तुलन क्रिया वृत्ति में (विचारण क्रिया) और मूल्यों का आस्वादन क्रिया मन में होना पाया जाता है। मूल्यों का आस्वादन क्रिया पूर्वक कार्य– व्यवहार तभी संभव है जब **संबंधों** का पहचान स्वीकार्य रहता है। **संबंधों** को पहचानने के उपरांत ही मूल्यों का निर्वाह कर पाता है।
  संबंधों के साथ मूल्य, मूल्यों के साथ वस्तुओं का अर्पण– समर्पण, वस्तुओं के अर्पण– समर्पण के साथ उपयोगिता, सदपयोगिता, प्रयोजनशीलता प्रमाणित होता हुआ अर्थात वैभवीत होता हुआ पाया जाता है। यही परमाणु में विकास और जागृति का तात्पर्य है। केवल मानव ही जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करने योग्य इकाई है।
  (अध्याय: 3–3, पृष्ठ नंबर: 65)
- मानव का आचरण मूल्य, चरित्र, नैतिकता के संयुक्त रूप में स्पष्ट होना पाया जाता है। मौलिकता पूर्वक ही मूल्यों का मूल्यांकन होना पाया जाता है, मानव में **संबंधों** का निर्वाह, उसकी निरंतरता, उसकी स्वीकृति एक मौलिकता है। इसी अर्थ में **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, परस्पर उभय तृप्ति अथवा परस्पर तृप्ति का होना पाया जाता है। यही मूल्य और मौलिकता का तात्पर्य है। आचरण का दूसरा भाग चरित्र जो स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में सुस्पष्ट होना पाया जाता है, जिससे मानव का मौलिक चरित्र अथवा सार्वभौम चरित्र सुस्पष्ट हो जाता है। तीसरी विधा में नैतिकता मानव में धर्म नीति और राज्य नीति की अपेक्षा और प्रमाण होना पाया जाता है। प्रमाण रूप में हर जागृत नर–नारी अपने तन, मन, धन रूपी अर्थ के सुरक्षा, सदुपयोग के रूप में प्रस्तुत होते हैं। इसमें से सुरक्षात्मक विधियाँ राज्यनीति और सदुपयोगात्मक विधियाँ धर्म नीति के नाम से जानी जाती है। **(अध्याय: 3–4, पृष्ठ नंबर: 69)**
- जागृत जीवन द्वारा **संबंध** उनके निर्वाह एवं प्रयोजनों के अर्थ में किया गया चयन का नाम – आशा, सुख से जीने की आशा, यह पहली जीवन शक्ति है। दूसरा, आशा के अनुरूप, अर्थात् जागृत जीवन सहज आशाओं के आधार पर विश्लेषण सम्पन्न होना ही विचार है। तीसरा, जागृत जीवन के विश्लेषण के अनुरूप चित्रण होते रहना ही इच्छा है। चौथा, जागृत जीवन के न्याय, धर्म, सत्यता को प्रयोजित, और व्यवहारित करने का नाम है ऋतम्भरा। पाँचवां, अनुभव सहज प्रमाणों का प्रमाणिकता संज्ञा है। इस प्रकार पाँच शक्तियों का होना मानव को समझ में आता है। इसी प्रकार पाँच बलों की भी प्रमाणिकता है.... **(अध्याय:3–6, पृष्ठ नंबर: 73)**
- हर मात्रा में स्थिति–गति एक स्वभाविक क्रिया है। स्थिति, गति के संयुक्त रूप में ही हर क्रिया को पहचाना जाता है। वस्तु के आचरण को पहचाना जाता है, गति में आचरण स्थिति में फलन बना रहता है। यही यथास्थिति का स्वरूप है। इसी में यथास्थिति का सूत्र, व्याख्या समाया रहता है। जैसे लोहे में कठोरता भौतिक आवश्यकता है। उसके स्थिति गति में ही इसका प्रमाण हो पाता है। लोहा का उपयोग करना उसका गतिशीलता का तात्पर्य हुआ। जैसा मानव अपने शक्ति को, बल को प्रभावित कर लोहे का परीक्षण करता है, तभी लोहे के प्रति विश्वास हो पाता

है। इसमें मानव काफी सफल हो चुका है। बहुत सारी वस्तुओं के साथ परीक्षण–निरीक्षण किया जा चुका है। निश्चय को पाया गया है, इस निश्चयता के आधार पर अनेक प्रौद्योगिकी कार्यशील रहना देखा जा रहा है। इन्हीं में किसी प्रौद्योगिकी में भागीदारी करने की इच्छा से ही तकनीकी शिक्षा को हम आचरण करते हैं। इसमें सार्थकता भी दिखायी पड़ती है। इसका प्रमाण अनेक लोग प्रौद्योगिकी में भागीदारी करते हैं। प्रौद्योगिकी विधा में अनेक लोग सफल होते हुए भी मन: स्वस्थता में प्रमाणित होना अभी तक बना नहीं। मन:स्वस्थता के विधा में प्रमाणित होने के लिए मानव को पहचानना प्रधान हो जाता है। मानव को पहचाने बिना मन: स्वस्थता का प्रमाण होता नहीं है। मानव का पहचानना समाधान, समृद्धि पूर्वक जीता हुआ, न्याय को प्रमाणित करने से ही होता है। न्याय अपने में **संबंध** मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति के रूप में स्पष्ट होना पाया जाता है। **(अध्याय:3–9, पृष्ठ नंबर: 100–101)**

- जागृत मानव सहज परावर्तन प्रत्यावर्तन क्रियाकलाप विधा में कुछ मुद्दों पर अध्ययन करने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए प्रस्तुत किया गया। परावर्तन प्रत्यावर्तन क्रियाओं का मूल आशय हर मानव अर्थात् हर नर–नारी में स्वस्थ, सुन्दर, सुखद, सौभाग्य सम्पन्नता पूर्वक जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करने के अर्थ में पहचाना गया है। परम सौभाग्य को हर मानव में जागृति, समझ, ज्ञान, विज्ञान, विवेक के रुप में पहचान होना एक सहज क्रिया है। सुखद स्थिति गति का प्रमाण समाधान, समृद्धिपूर्वक परस्पर पहचान होना, विश्वास होना पाया जाता है। सुखी होने का विश्वास भी समाधान समृद्धि के आधार पर हो पाता है। सुन्दरता को हम जागृत मानव परम्परा में व्यक्तित्व के रुप में पहचानते हैं, व्यक्तित्व अपने में समझदारी के अनुरुप किया जाने वाला आहार, विहार, व्यवहार ही है। व्यवहार सेवन से **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति सहित **संबंधों** का सेवन होता है। ऐसे सेवन में सेव्यता और सेवकीयता दोनों समाया रहता है। सेव्य, सेवा विद्या में संपूर्ण **संबंध**, प्रयोजनों के अर्थ में निर्वाह किया जाना बनता है। फलस्वरुप प्रयोजन का सेवन होता ही है। प्रयोजनों का मुख्य रुप जागृति, व्यवस्था में मानव और आकाँक्षा का प्रमाण ही है। इन प्रयोजनों के अर्थ में हर **संबंध** को पहचानना, समझदारी की महिमा है। मानव में कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता से समझदारी, ईमानदारी और भागीदारी पर्यन्त जो अध्ययन, प्रयोग और प्रमाण वैभव है, केवल मानव में ही प्रमाणित है। यह सर्व मानव में, से, के लिये समान है; चाहे छोटा हो, बड़ा हो, दुर्बल हो, पतला हो, गोरा हो, काला हो, धरती के किसी भी अंगभूत देशों में हो, काल में हो; सभी मानव में समझदारी की सम्भावना, उपलब्धि की समीचीनता समान है। उपलब्धि का प्रमाण, यह मानव परम्परा में व्यवस्था पूर्वक स्पष्ट होने का सम्पूर्ण गौरवमयी ढांचा खांचा होना पाया जाता है। ऐसा ढांचा खांचा अथवा यह वैभव मानव का परावर्तन–प्रत्यावर्तन विधि से प्रमाणित हो पाता है। इसका दूसरा कोई मापदण्ड व प्रक्रिया होता नहीं। समझदारी का परावर्तन–प्रत्यावर्तन प्रयोजन के चलते मानव अपने में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रुप में सूत्र और व्याख्या परावर्तित–प्रत्यावर्तित होना ही प्रमाण है। यही अध्ययन, अध्यापन, मूल्य, मूल्यांकन, समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व के रुप में प्रमाणित होना, सर्वथा सुलभ व स्वीकृत है। यह प्रमाणित होना ही परावर्तन–

प्रत्यावर्तन का प्रयोजन है। यही मानव परम्परा का भी प्रयोजन है। यही नियति विधि से गम्य स्थलीय है। यही सर्व मानव की आवश्यकता है। **(अध्याय:3–12, पृष्ठ नंबर: 123)**

- विद्युत चुम्बकीय तरंग को मानव, प्राकृतिक विधि से बिजली चमकता हुआ रुप में या प्रकाश के रुप में देखता है। इसके मूल में निश्चित दूरी में बादल के रूप में, निश्चित अच्छे घने बादल का, अपने निश्चित अच्छी दूरी में से, पास में आने से हुई ध्वनि को ही बादल गरजना कहा जाता है। इन दोनों के पास में आने से धरती के संयोजन के साथ, धरती का **संबंध** जुड़ने के साथ, विद्युत प्रवाह अपने आप दौड़ता है, जिसका प्रवाह जीव, जानवर, मनुष्य, पेड़, पौधे के ऊपर देखा गया। यही प्राकृतिक रूप में देखा हुआ, बिजली प्रकाश और प्रभाव है। बिजली प्रकाश राहगीर को राह देखने के रूप में तो दिखी लेकिन प्रवाह का और कोई सकारात्मक पक्ष में प्रयोग नहीं हुआ। इन दोनों स्थिति को देखा हुआ मनुष्य यह क्या है? कैसा है? बहुत कुछ सोचा, समझा। अन्ततोगत्वा चुम्बकीय धारा का विखंडन विधि से, जिसको डायनामो कहा जाता है, साइकिल के चक्के के साथ घुमा कर प्रकाश को प्राप्त किया। इसके बाद क्रम से धरती पर सभी जगह तक बिजली प्रवाह को दौड़ता हुआ, कार्य करता हुआ, सब प्रदर्शित है। **(अध्याय:3–13, पृष्ठ नंबर: 125–126)**
- प्राणावस्था के मूल में यौगिक विधि, प्रवृत्ति स्वंय स्फूर्त विधि से होना पाया जाता है। इसके लिए अनुकूल परिस्थिति के संबंध में अध्ययन किया जाय तो केवल ब्रह्माण्डीय किरण और धरती पर अनेक प्रजाति के परमाणुओं से अपने आप में समृद्ध रहना ही, पृष्ठभूमि में दिखाई पड़ता है। इस धरती पर यौगिक पृष्ठभूमि के बारे में सोचा जाय, तो इससे अधिक कोई कारण नहीं है। ब्रह्माण्डीय अनुकूलता में ब्रह्माण्डीय किरण विकिरण ही एक मात्र स्रोत है। आज भी यह चीज इस धरती के वातावरण तक प्रस्तुत ही है। किरण जो कुछ भी पहुँच पाता है, वह सब धरती की स्वयं के प्रकाश में अधिक प्रमाणित होते हैं। उसी के साथ–साथ, उष्मा का भी **संबंध** धरती से बना ही है। ऐसे स्थिति में और जो स्रोत हैं, वे विकिरणीय स्रोत ब्रह्माण्डीय क्रिया–कलापों के प्रभाव स्वरूप अनेक धरतीयों से निष्पन्न या प्रसारित विकिरणीयता का संचार ही रहता है। यह अभी भी बना है। इसी के साथ, यह धरती अनेक प्रजाति के परमाणुओं से समृद्ध होने के आधार पर, इस धरती में भी बहुत सारे विकिरणीय द्रव्य काम कर रहे हैं। इस ढंग से किरण, विकिरण, उष्मा के संयोग से ही सम्पूर्ण यौगिक क्रिया होने की पृष्ठभूमि रही है। यौगिक घटनायें, पानी की घटना से चलकर अम्ल और क्षार रूप में यौगिक घटनायें घटित होने की संभावना की पृष्ठ भूमि को स्वीकारा जा सकता है। क्योंकि अभी भी प्रकारान्तर से अम्ल, क्षार, पानी के संयोग से, विभिन्न अनुपात क्रम में, विभिन्न प्रकार के रसायन द्रव्य तैयार हुआ रहना अपने सम्मुख है। इनके अनुपातों में जो कुछ भी परिवर्तन के लिए सहायक होना है, वह कार्बनिक और अन्य प्रजाति के अणु परमाणुओं की सहायता सदा–सदा से रही। इस प्रकार अम्ल, क्षार और पानी के साथ–साथ उक्त अणु–परमाणु, रासायनिक वस्तु की प्रजातियों की संख्या को बढ़ाने में सहायक होता हुआ पाया जाता है। **(अध्याय:3–16, पृष्ठ नंबर: 143–144)**

- साथ में जीने के क्रम में, सर्वप्रथम मानव ही सामने दिखाई पड़ता है। ऐसे मानव किसी न किसी सम्बन्ध में ही स्वीकृत रहता है। सर्वप्रथम मानव, माँ के रूप में और तुरंत बाद पिता के रूप में, इसके अनन्तर भाई–बहन, मित्र, गुरु, आचार्य, बुजुर्ग उन्हीं के सदृश्य और अड़ोस–पड़ोस में और भी समान संबंध परंपरा में है हीं। जीने के क्रम में, **संबंध** के अलावा दूसरा कोई चीज स्पष्ट नहीं हो पाता है। **संबंधों** के आधार पर ही परस्परता, प्रयोजनों के अर्थ में पहचान, निर्वाह होना पाया जाता है। इस विधि से पहचानने के बिना निर्वाह, निर्वाह के बिना पहचानना संभव ही नहीं है। इसमें यह पता लगता है कि प्रयोजन हमारी वांछित उपलब्धि है। प्रयोजनों के लिए **संबंध** और निर्वाह करना एक अवश्यंभावी स्थिति है, इसी को हम दायित्व, कर्त्तव्य नाम दिया। **सम्बन्धों** के साथ दायित्व और कर्त्तव्य अपने आप से स्वयं स्फूर्त होना सहज है। कर्त्तव्य का तात्पर्य क्या, कैसा करना, इसका सुनिश्चियन होना कर्त्तव्य है। क्या पाना है, कैसे पाना है, इसका सुनिश्चियन और उसमें प्रवृत्ति होना दायित्व कहलाता है। हर **संबंधों** में पाने का तथ्य सुनिश्चित होना और पाने के लिए कैसा, क्या करना है, यह सुनिश्चित करना, ये एक दूसरे से जुड़ी हुई कड़ी है। ये स्वयं स्फूर्त विधि से, सर्वाधिक **संबंधों** में निर्वाह करना बनता है। जागृति के अनन्तर ही ऐसा चरितार्थ होना स्पष्ट होता है। भ्रमित अवस्था में **संबंधों** का प्रयोजन, लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता है। भ्रमित परम्परा में सर्वाधिक रूप में संवेदनशील प्रवृत्तियों के आधार पर, सुविधा संग्रह के आधार पर और संघर्ष के आधार पर **संबंधों** को पहचानना होता है। सुदूर विगत से इन्हीं नजरियों को झेला हुआ मानव परम्परा मन: स्वस्थता के पक्ष में वीरान निकल गया। जबकि सहअस्तित्ववादी विधि से मन:स्वस्थता की संभावना, सर्वमानव के लिए समीचीन, सुलभ होना पाया जाता है। इसी तारतम्य में हम सभी **संबंधों** को सार्थकता के अर्थ में, प्रयोजनों के अर्थ में और संज्ञानीयता पूर्ण प्रयोजन के अर्थ में पहचान पाते हैं। इसका स्पष्ट रूप सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के रूप में, इसका स्पष्ट रूप मानवाकाँक्षा; जीवनाकाँक्षा प्रमाणों के अर्थ में स्वीकार सहित और मूल्यांकन सहित कार्य व्यवहार और व्यवस्था और आचरणों को परिवर्तन कर लेना ही सहअस्तित्व वादी ज्ञान, विज्ञान और विवेक का फलन होना पाया जाता है।

मानवाकांक्षा – समाधान, समृद्धि, अभय सह–अस्तित्व सहज प्रमाण।

जीवनाकांक्षा – सुख, शांति, संतोष आनंद के रूप में गण्य है। (अध्याय:3–17, पृष्ठ नंबर: 158–159)

संदर्भ: मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण:, मुद्रण: जनवरी, 2018)

- समाज का आधार
    1. मानव एवं मानवीयता (मानव सहज मानवीयता पूर्ण आचरण)
    2. प्रमाणत्रय
    3. स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्य
    4. नीतित्रय

मानवीयता पूर्वक ही सामाजिकता प्रमाणित होती है। अमानवीयता की सीमा में सामाजिकता की संभावना नहीं है। अतिमानवीयता में मानवीयता समर्पित रहती ही है। अत: सामाजिकता की संपूर्ण अभिव्यक्ति मानवीयता और अतिमानवीयता ही है क्योंकि सामाजिकता और किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती है। अत: इसी नियतिक्रम सहज विकासक्रम, विकास एवं जागृतिक्रम, जागृति तथ्यवश ही मानव मानवीयता का अनुसरण व आचरण करने के लिए बाध्य है।

अमानवीयता में कितने भी प्रयोग करें अथवा वर्गवादी प्रयोग करें, अंततोगत्वा मानवीय स्वभाव, धर्म, दृष्टियों के प्रति समर्पित होना अवश्यंभावी है क्योंकि विश्राम के लिए इसके अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है।

समाज का मूल रूप प्रत्येक मानव में समाया है, जो विचार, आशा, आकाँक्षा एवं मंगल कामना के रूप में है।

स्थितिवत्ता की मूल्य–दर्शन–क्रिया ही अध्ययन है। यथार्थ मूल्य–दर्शन–क्षमता ज्ञानानुभव ही है।

मूल्य दर्शन क्षमता ही प्रमाणवत्ता को प्रगट करती है प्रमाण केवल प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव ही है।

संबंध विहीन जन्म एवं मूल्य विहीन **संबंध** नहीं है। सम्पूर्ण मानव के साथ स्थापित **संबंध** समान हैं। उनमें स्थापित मूल्य भी समान है। यही **संबंध** व मूल्य ध्रुव है। इसका निर्वाह ही न्याय है। यही न्याय–ध्रुव है। मानव में न्याय की याचना, कामना एवं सम्मति जन्म से ही है। यही शाश्वत मूल्य समाज का मूल आधार है। इसी आधार पर "नीतित्रय" सुद्दढ़ है।

संबंधों में स्थापित मूल्य का निर्वाह ही धर्म है, जिसमें अर्थ के सदुपयोग का स्वभावत: **संबंध** रहता ही है।

धर्म ही सुख है। अर्थ के सदुपयोग व सुरक्षा के बिना सुखानुभाव सिद्ध नहीं होता, जो प्रत्यक्ष है।

धर्म (सुखानुभव) सफलता ही जीवन की सफलता है। धर्माकाँक्षा विहीन मानव नहीं है। इसीलिए धर्म नीति (व्यवहारान्वयन क्रिया) सदुपयोग प्रधान एवं राज्यनीति सुरक्षा प्रधान, व्यवहार एवं आचरण प्रक्रिया है। इसी सत्यतावश "नीतित्रय" भी समाज के मूल में समाहित है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 17–18)**

- प्रत्येक व्यक्ति (मानव) के लिए स्थापित **संबंध** समान हैं। **संबंधों** में निहित मूल्य नित्य हैं। किसी का सान्निध्य दूर होने मात्र से, उस **संबंध** में निहित मूल्य का परिवर्तन नहीं है, इसी प्रकार वियोग में भी। वियोग शरीर का है न कि मूल्यों का, जो प्रत्यक्ष है। जैसे माता–पिता से वियोग। जीवन कालीन वियोग में भी पिता के प्रति जो मूल्य है, उसका परिवर्तन नहीं है।

  प्रत्येक परस्परता में दायित्व समाया हुआ है। यही स्थापित मूल्यों में वस्तु व सेवा को अर्पित करता है। सभी अर्पण, मूल्यों के प्रति समर्पण है। यही अपर्ण प्रक्रिया ही कर्तव्य है। व्यवहारपूर्वक यह प्रमाणित होता है कि ऐसा कोई **संबंध** नहीं है, जिसमें मूल्य न हो और जिसके प्रति दायित्व व कर्तव्य न हो।

  संबंध सीमा ही परिवार एवं समाज है। **(संबंध** का पहचान मूल्यों का निर्वाह ही परिवार समाज एवं व्यवस्था है।– **संदर्भ: 2010)** जन्म, जीवन, व्यवहार विशिष्ट, शिष्ट, नीति एवं उत्पादन विनिमय वैभव से संबंध प्रसिद्ध हैं।

  1. **जन्म संबंध** (शरीर संबंध– **संदर्भ: 2010**) = माता–पिता एवं भाई–बहन, पति–पत्नि, पुत्र–पुत्री
  2. **जीवन–जीवन संबंध** = गुरु–शिष्य, जागृत सभी संबंध
  3. **शिष्ट–शिष्ट संबंध** = मित्र, साथी–सहयोगी
  4. **नीति–नीति संबंध** = विधि, व्यवस्था, संस्कृति एवं सभ्यता
  5. **उत्पादन–उत्पादन संबंध** = क्षमता, अवसर, साधन एवं वितरण

  संबंधों में निहित मूल्यवत्ता–वश ही उसकी अक्षुण्णता पाई जाती है। यही अखंड समाज की अक्षुण्णता भी है।

  मूल्यों की स्थिरता ही अखंडता एवं अक्षुण्णता है, जो नियति क्रम में पाये जाने वाले तथ्य हैं। समाज की पाँचों स्थितियाँ परस्पर पूरक हैं, जिसकी एकसूत्रता ही अखंडता है। अन्तर्राष्ट्र में "नीतित्रय" का संतुलन, राष्ट्र में मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि–व्यवस्था एवं शिक्षा–प्रणाली–पद्धति, सामाजिकता में मानवीयता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं प्रोत्साहन; परिवार में मानवीयता के प्रति समर्पण, विश्वास एवं निष्ठा, व्यक्ति के जीवन में मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवहार, अभ्यास अनुभव, विचार, व्यवहार, उत्पादन तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही लोक मंगल–कार्यक्रम है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता का सूत्र है।

  (अन्तर्राष्ट्र जीवन में "नीतित्रय" का संतुलन, राष्ट्र जीवन में मानवीयता के संरक्षण एवं संवर्धन योग्य विधि–व्यवस्था एवं शिक्षा–प्रणाली–पद्धति, सामाजिक जीवन में मानवीयता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन एवं प्रोत्साहन;

परिवार–जीवन में मानवीयता के प्रति समर्पण, विश्वास एवं निष्ठा, व्यक्ति के जीवन में मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवहार, अभ्यास अनुभव, विचार, व्यवहार, उत्पादन तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही लोक मंगल–कार्यक्रम है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों की एकसूत्रता का सूत्र है।– **संदर्भ– सं.–2010)**

प्रत्येक मानव में सीमित शक्ति, निश्चित दायित्व, कर्तव्य एवं स्थापित **संबंध** पाये जाते हैं, जिनकी एकसूत्रता "नियम त्रय" एवं मानवीयता पूर्ण पद्धति से प्रमाणित होती है। यही गुणात्मक परिवर्तन का औचित्य और मानव की आचार संहिता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 22–23)**

- **अधिक विकसित इकाई कम विकसित के विकास** में सहायक, सहयोगी दिशा–निर्देशक एवं शिक्षक के रूप में प्राप्त है, जो माता–पिता, शिक्षक एवं उपदेशक के **संबंधों** में प्रत्यक्ष है जो अनिवार्य है।
  स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही प्रत्यक्ष व्यवहार है जो समाजिकता के लिए अनिवार्यतम तथ्य है। इसके निर्वाहनार्थ उत्पादन आवश्यक है इसका क्षेत्र प्रसिद्ध है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 26)**

जागृत मानव अजागृत की जागृति में सहायक, सहयोगी दिशा–निर्देशक एवं शिक्षक के रूप में प्राप्त है, जो माता–पिता, शिक्षक एवं उपदेशक के **संबंधों** में प्रत्यक्ष है जो अनिवार्य है।

स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही प्रत्यक्ष व्यवहार है जो समाजिकता के लिए अनिवार्यतम तथ्य है। इसके निर्वाहनार्थ उत्पादन आवश्यक है इसका क्षेत्र प्रसिद्ध है। **(संदर्भ: सं.– 2010)**

- संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था का आधार मानवीयता है, क्योंकि मानवीयता से ही सामाजिकता स्थापित सिद्ध है। अमानवीयता की सीमा में सामाजिकता की संभावना नहीं है, जबकि अतिमानवीयता में सामाजिकता समायी हुई है, इसलिए मानवीयता का आधार स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित स्थायी मूल्य ही है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 26)**
- आवश्यकताएं सामयिक हैं। प्रत्येक समय में प्रत्येक मानव को प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता समान रूप से सिद्ध नहीं होती, जबकि स्थापित **संबंधों** की अनिवार्यता निरंतर है, जो प्रसिद्ध है। इसलिए आवश्यकताएं सामान्य एवं महत्वाकाँक्षा की सीमा में ही हैं। इन सब का उपयोग सामयिक समाज गति के अर्थ में है। इसलिए **संबंधों** के निर्वाह में ही वस्तुओं के उपयोग, सदुपयोग व वितरण प्रयोजन की सीमाएं समाहित हैं। **(अध्याय:26–27, पृष्ठ नंबर: 31)**
- **स्थापित मूल्यों की अनिवार्यता सर्वदा सबके लिए समान है।**

स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्यों का परिवर्तन किसी भी देश, काल व स्थिति में नहीं है। यही स्थायित्व का लक्षण और अनिवार्यता का मूल कारण है। इस प्रकार के स्थापित मूल्य प्रधानत: नौ हैं, जो निम्न प्रकार हैं :–
1 कृतज्ञता, 2. गौरव, 3.श्रद्धा, 4. प्रेम, 5.विश्वास, 6. वात्सल्य, 7. ममता, 8.सम्मान, 9. स्नेह।

ये ही सामाजिक मूल्य मानवीयता सहज प्रयोजन में प्रत्येक व्यक्ति के आचरण के आधार है। इनमें से विश्वास "साम्य" मूल्य है और "प्रेम" पूर्ण मूल्य है। व्यवहार निर्वाह काल में उक्त स्थापित मूल्यों के साथ आचरण–प्रक्रिया (शिष्टता) रहती है, जो क्रमशः सौम्यता, सरलता, पूज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, उदारता, सौहार्द्रता तथा निष्ठा है। यही शिष्टता है, जो स्थापित मूल्य में समर्पित रहती है, जो प्रसिद्ध है।

भौतिक समृद्धि के लिए ही मानव उत्पादन करता है, जिसकी उपयोगिता महत्वाकाँक्षा व सामान्य आकाँक्षा की सीमा में निहित है। यह भी जीवन का अविभाज्य आयाम है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन ही मानव जीवन का सर्वस्व नहीं है। यही कारण है कि मानव सामाजिक, आर्थिक, राज्यनीति को पालन करने के लिए बाध्य है।

व्यवहारात्मक जनवाद का आधार केवल "न्याय" ही है, क्योंकि प्रत्येक मानव जन्म से ही न्याय का याचक है। यही "नीतित्रय" की समन्वयता की एकसूत्रता का भी कारण है साथ ही जनवादी चिंतन, निरीक्षण व स्पष्टीकरण का आधार भी है। व्यवहार का आधार न्याय ही है।

मानव की परस्परता में आश्वस्त एवं विश्वस्त होने का आधार न्याय ही है।

अखण्ड समाज परम्परा में स्थापित मूल्य का निर्वाह ही शिष्टता की अभिव्यक्ति तथा "अर्थ" का सदुपयोग है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन में एकसूत्रता ही "न्याय"है। यही सार्वभौम कामना है, जो व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में, परिवार के सहयोग एवं सहकार्य में, समाज के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा में, राष्ट्र के संरक्षण तथा संवर्धन में एवं अंतर्राष्ट्रीयता के अनुकूल परिस्थिति एवं एकसूत्रता में चरितार्थ होती है। यही सर्व–मानव की कामना, मांगल्य शुभ, संगीत, वांछनीय अनिवार्यता, ऐतिहासिक उपलब्धि, नियतिक्रम स्थिति, अखंडता, अभयता, सतर्कता एवं स्वर्ग है।

अखण्ड समाज परम्परा में स्थापित मूल्यों के निर्वाह में ही शिष्टताएं समर्पित हैं। "अर्थ" का सदुपयोग मानवीयता में चरितार्थ होता है, जो जागृति में पायी जाने वाली सुखद स्थिति है, क्योंकि देव पदचक्र में समाजिकता है, जबकि भ्रांति पद चक्र में यह नहीं है।

शिष्टता में वैविध्यता की संभावना देश–कालवश है। "अर्थ" के सदुपयोग में तथा स्थापित मूल्यों में विकल्प नहीं है। यही अखंडता एवं अक्षुण्णता का मूल तथ्य है। इससे ही अनुप्राणित जीवन नित्य–कार्यक्रम, उत्सव, समृद्धि, समाधान, उत्साह, सफलता, स्थिरता, शान्त, संतोष एवं सुख का अनुभव करता है। यही कामना मानव में अनन्त काल से है। **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 27–28)**

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। दर्शन में प्रकृति का विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति रूप में अध्ययन मानव के लिए प्रस्तावित है जो स्वयं समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को स्पष्ट करता है, जिससे "प्रमाणत्रय" (प्रयोग, व्यवहार एवं अनुभव) सिद्ध होता है। मानव जीवन में "चतुरायाम" उत्पादन, व्यवहार, विचार एवं अनुभूति अविभाज्य हैं जो प्रसिद्ध है, इसलिए व्यवहारात्मक जनवाद का प्रत्यक्ष रूप न्याय–सुलभ, समृद्ध जीवन में प्रतिष्ठित एवं अक्षुण्ण होना है। यही मानव में अखंडता को स्थापित करता है, जिसकी पूर्ण सभांवना व आवश्यकता है ही। जैसे :–
  1. मानव **संबंधों** सहित ही जन्म लेता है।
  2. स्थापित **संबंध** में स्थापित मूल्य है।
  3. सामाजिक मूल्य अपरिवर्तनीय है।
  4. मानवीयता में ही अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सिद्ध होती है।
  5. मानवीयता जागृत मानव परंपरा में ही प्रमाणित होता है।
  6. जागृत मानव सामाजिक न्यायिक इकाई है।
  7. सामाजिक मूल्य में, से, के लिए शिष्टता एवं वस्तु व सेवा की प्रयुक्ति सफल है।
  8. मानव में स्वभाव सहज अभिव्यक्ति, धर्म सम्पन्नता अनुभूति प्रसिद्ध है। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 29–30)**
- **संबंध** व स्थापित मूल्य केवल अखण्ड समाज के अर्थ में है, अखण्ड समाज सह–अस्तित्व में अनुभव का फलन है जो केवल अनुभव प्रमाण से तथा उत्पादन– मूल्य प्रयोग प्रमाण से प्रमाणित है, जिसका उपयोगिता–मूल्य दृष्टव्य है। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 32)**
- न्यायपूर्ण जीवन ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है। **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही न्यायपूर्ण व्यवहार है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 36)**
- **संबंध और मूल्य**

  प्रत्येक **संबंध** में स्थापित एवं शिष्ट मूल्य स्पष्ट व प्रमाणित हैं। जैसे:–

  1. माता–पिता के प्रति विश्वास निर्वाह–निरंतरता = गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौम्यता, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।
  2. पुत्र–पुत्री के प्रति विश्वास निर्वाह–निरंतरता = ममता, वात्सल्य, प्रेम, सहजता, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व सेवा के समर्पण रूप में है।
  3. भाई–बहन की परस्परता में विश्वास–निर्वाह–निरंतरता = सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहार्द्रता, सरलता, सौजन्यता, स्नेह, अनन्यता–भावपूर्वक वस्तु व सेवा अर्पण के रूप में है।

4. गुरु–शिष्य के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता = प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, भावपूर्वक प्रबोधन जिज्ञासा पूर्ति सहित वस्तु व सेवा–समर्पण के रूप में है।
5. शिष्य–गुरु के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता=गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता–भावपूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु व सेवा–समर्पण के रूप में है।
6. पति–पत्नी की परस्परता में विश्वास निर्वाह–निरंतरता = स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सौहार्द्रता, अनन्यतापूर्वक सद्‌चरित्रता सहित वस्तु एवं सेवा अर्पण के रूप में है।
7. साथी–सहयोगी के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = स्नेह, सौजन्यता, निष्ठापूर्वक वस्तु व सेवा प्रदान के रूप में है।
8. सहयोगी–साथी के प्रति विश्वास–निर्वाह–निरंतरता (व्यवस्था तंत्र में) = गौरव, सम्मान, कृतज्ञता, सौहाद्र्ता, सौम्यता, सरलता, भावपूर्वक सेवा समर्पण के रूप में है।
9. मित्र की परस्परता में विश्वास निर्वाह, निरंतरता = स्नेह, प्रेम, सम्मान, निष्ठा, अनन्यता, सौहार्द्रता भावपूर्वक वस्तु व सेवा समर्पण के रूप में है।
10. व्यवस्था के प्रति भागीदारी का विश्वास निर्वाह, निरंतरता = मानवीयतापूर्ण आचरण, व्यवहार, उत्पादनपूर्वक आवश्यकता से अधिक उत्पादन।
11. भागीदारी के प्रति व्यवस्था विश्वास निर्वाह, निरंतरता = न्याय सम्मत अभयतापूर्ण जीवन के कार्यक्रम के लिए शिक्षा को सर्वसुलभता न्याय सम्मत आचरण तथा व्यक्तित्व के संरक्षण, संवर्धन, प्रोत्साहन सहित असंदिग्ध न्यायिक व्यवस्था के रूप में है।
12. व्यवस्था व्यवस्थिति की सहज परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता= स्थायी मूल्यों में आधारित विधि, शिष्ट मूल्यों में आधारित नीति, उत्पादन मूल्यों में आधारित व्यवस्था पूर्वक सिद्ध न्याय व समाधान सर्व सुलभता के रूप में है। (नोट– "व्यवस्थिति" शब्द सं. 2010 में नहीं है।)
13. व्यवस्था एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह = न्याय संगत प्रक्रिया में आश्वासन विश्वसन पूर्वक न्यायानुगमन कार्यक्रम सहित व्यक्तित्व के प्रस्थापन के रूप में है।
14. सभ्यता एवं संस्कृति की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता= नौ स्थापित मूल्य में नौ शिष्ट मूल्य, नौ शिष्ट मूल्य में दो उत्पादन मूल्य का अर्पण, समर्पण, समावेश के रूप में है।
15. सभ्यता –विधि की परस्परता में विश्वास निर्वाह निरंतरता = प्रबुद्धता, संप्रभुता के रूप में है।
16. सहयोगी–साथी के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता (अभ्यास विधि में)– श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता, अनन्यता, पूज्यता, सरलता, सौजन्यता एवं सेवा सहित स्व–समर्पण के रूप में है।

17. साथी–सहयोगी के प्रति विश्वास निर्वाह निरंतरता (अभ्यास विधि में)– दायित्व सहित अर्थात समझदारी, ईमानदारी, ज़िम्मेदारी सहित स्नेह, वात्सल्य, ममता, सहजता, सौजन्यता सहित वस्तु समर्पण और संवेदनशील और संज्ञानशील विधि से अर्पण समर्पण सहयोग भाव का निर्वाह करेगा।

स्थापित नौ मूल्यों "में, से, के लिये" विश्वास–साम्य मूल्य है, जिसके बिना कोई ऐसा संबंध नहीं है जो स्वस्थ हो। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 36–38)**

- स्थापित मूल्य, मानव मूल्य, जीवन मूल्य देशकाल से बाधित (सीमित) नहीं है। प्रत्येक **संबंध** में निहित स्थापित मूल्य निकट व दूर, भूत भविष्य एवं वर्तमान से प्रभावित नहीं है। प्रत्येक स्थापित मूल्य तीनों कालों में एवं सभी देशों में एक सा है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 46)**
- समाधानात्मक भौतिकवादी कार्यक्रम की चरितार्थता आवश्यकता से अधिक उत्पादन के रूप में भी प्रस्तावित है, जिसके लिये मानव में शिक्षा एवं शैक्षणिक क्षमता, निपुणता एवं कुशलता के रूप में है। यही उत्पादन क्षमता है। यही क्षमता उपयोगिता एवं कला मूल्य को प्राकृतिक ऐश्वर्य पर प्रतिस्थापित करती है। व्यवहारात्मक जनवादीय जीवन का मूल तत्व जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य है। यह शिष्टता मानवीयता पूर्वक संयत सिद्ध हुई है। इसी शिष्ट मूल्य में उत्पादन मूल्य समर्पित होने के लिए बाध्य है है क्योंकि शिष्ट मूल्य के अभाव में उत्पादित वस्त मूल्य का संयमन एवं सदुपयोग सिद्ध नहीं होता। अस्तु, उत्पादित वस्तु मूल्य शिष्ट मूल्य में; शिष्ट मूल्य स्थापित मूल्य में; स्थापित मूल्य मानव मूल्य में; मानव मूल्य जीवन मूल्य में संयोजित विधि से प्रमाणित होता है। शिष्ट मूल्य के संयोग में ही उत्पादित वस्तु मूल्य का सदुपयोग सिद्ध हुआ है। सामाजिक मूल्य के संयोग में ही उत्पादित वस्तु मूल्य का सदुपयोग सिद्ध हुआ है। **सामाजिक मूल्य अर्थात् प्रत्येक संबंध में स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य वर्तमान होना पाया जाता है।** सामाजिक मूल्य "में, से, के लिये" ही शिष्ट मूल्य की गरिमा–महिमा गण्य है। सामाजिक मूल्य के अभाव में शिष्ट मूल्य की व्यवहारिक मीमांसा सिद्ध नहीं हुई है। अपितु स्थापित मूल्यों के अनुगमनशीलता में ही शिष्ट मूल्यों की मूल्यवत्ता एवं महत्ता स्पष्ट हुई है। अस्तु, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्य का समर्पित होना अवश्यंभावी है। स्थापित मूल्य का निर्वाह मानव मानवीयता पूर्वक करता है। यही मानव का व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संतुलन है। यही उसका आचरण है। इसके सहकारी परिवार, प्रोत्साहन योग्य समाज, संरक्षण–सवंर्धन योग्य व्यवस्था अर्थात् विधि व्यवस्था शिक्षा, संतुलन एवं अनुकूल परिस्थति निर्माण करने योग्य अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था ही "वादत्रय" का चरितार्थ रूप है। **(अध्याय:11, पृष्ठ नंबर: 53–54)**

- उत्पादन का सीधा संबंध विनिमय कार्य व स्वास्थ्य संयम कार्य, शिक्षा–संस्कार, न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य एवं स्वास्थ्य–संरक्षण से हैं। इन पाँचों की एकसूत्रता उत्पादन के लिये अनिवार्य है। यही व्यवस्था का आद्यान्त कार्यक्रम है। मूल्य–विहीन **संबंध** नहीं है। **संबंध** विहीन व्यवस्था एवं व्यवहार नहीं है। उत्पादन के संबंध–निर्वाह में जो न्यूनताएं हैं वही लाभोत्पादक वाणिज्य के जन्म का कारण है। यह उस समय तक रहेगा जब तक उत्पादन संबंध का निर्वाह एकसूत्रतापूर्वक पूर्ण न हो जाय। **(अध्याय:15, पृष्ठ नंबर: 64)**
- प्रत्येक मानव संपूर्ण मूल्यों सहित शिष्ट मूल्य सहित निर्वाह करने के पक्ष में है। **सम्बन्धों** का निर्वाह न होना ही अव्यवहारिकता अर्थात् अमानवीय व्यवहार, उद्दण्डता, अराजकता एवं अस्थिरता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव **संबंध** विहीनता में, से, के लिए स्वीकार नहीं है। यही सत्यता व्यवहारात्मक जनवाद को उद्घाटित करने का प्रधान कारण है। स्वयं के समर्पण का तात्पर्य ही है निर्र्वाह करना। जितने भी परिप्रेक्ष्यों में निर्वाह–क्षमता प्रकट हुई है, ये सब समर्पण से प्राप्त गुणात्मक परिवर्तन के रूप में ही स्पष्ट हैं। समर्पण में पूर्ण स्वीकृति होती है। जो जिसे स्वीकार नहीं करता है, उनमें परस्पर समर्पित होना संभव नहीं है। जो जिसको स्वीकारता है, उसको वह आत्मसात कर लेता है या आत्मसात होता है, जो स्पष्ट है।

  जन्म से ही मानव में **संबंध** का होना पाया जाता है। **संबंध विहीन जन्म, जीवन परंपरा नहीं है।** शरीर सहित जीवन **संबंध** में इसे स्पष्ट करना होना ही अध्ययन है। मानव के जन्म–जीवन काल में ही समाज एवं सामाजिकता के अध्ययन की अनिवार्यता है। यही अनिवार्यता **संबंधों** के निर्वाह के लिए प्रेरणा है। यह जन्म से ही आरंभ होता है। जैसे :–

  1. प्रत्येक माता–पिता अपनी संतानों का पोषण करते हैं, करना चाहते हैं।
  2. प्रत्येक शिक्षार्थी शिक्षा पाना चाहता है।
  3. प्रत्येक शिक्षक शिक्षा प्रदान करना चाहता है।
  4. प्रत्येक व्यक्ति न्याय पाना चाहता है और सही कार्य–व्यवहार करना चाहता है।
  5. प्रत्येक व्यक्ति परस्परता में कर्तव्य एवं दायित्व निर्वाह की अपेक्षा करता है और स्वीकारता है।
  6. प्रत्येक व्यक्ति भौतिक समृद्धि और बौद्धिक समाधान चाहता है।

  इसलिए प्रत्येक स्थापित **संबंधों** में निहित सम्पूर्ण मूल्यों का निर्वाह ही सामाजिकता का प्रत्यक्ष रूप है। यही निर्विषमता सह–अस्तित्व का भी प्रत्यक्ष रूप है। इसमें संदिग्धता या विषमता ही अर्थात स्थापित मूल्यों का निर्वाह होने में जो असमर्थता है, अन्याय एवं भय के रूप में भासित होता है। फलत: उनके निराकरण के लिए प्रयास होते हैं इसी प्रयास क्रम में मानव मानवीयता को स्वीकारने के लिए उत्सुक जाता है।

समाज संरचना शुद्धत: मानव की परस्परता में स्थापित **संबंध** ही है। यही समाज की आद्यान्त संरचना है। **संबंधों** की अक्षुण्णता उसमें स्थापित मूल्यों का निर्वाह ही है। यही मानव जीवन की गरिमा है। स्थापित मूल्य अनुभूति है। मानव जीवन अनुभव–क्षमता सम्पन्न है। यही क्षमता मूल्यों का अनुभव करने के लिए प्रवृत्त है।

समाज संरचना का आधार मानव मूल्य एवं स्थापित मूल्य ही है। **संबंधों** से अधिक समाज संरचना नहीं है। मित्र **संबंध** में समस्त मानव–मात्र संबंधित हैं ही। अपराध विहीन समाज को पाने के लिए मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति ही मूलत: कारक एवं आवश्यक है। मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था अन्योन्याश्रित उद्घाटन हैं। इनकी आधारभूत संहिता में मानव–जीवन के अनुरूप जीवन के कार्यक्रम को पूर्णतया विश्लेषित करते तक अंतर्विरोध स्वभाविक है। भ्रमित शिक्षा और व्यवस्था का अंतर्विरोध ही अराजकता है। अराजकता व्यक्ति परिवार एवं वर्ग के लिए भी वांछित घटना नहीं है। यही समीक्षा उनमें निर्विरोधिता, निर्विषमता को स्थापित करने एवं पूर्णताको प्रदान करने के लिए प्रेरणा पूर्वक प्रयास प्रक्रिया व्यवहारोदय है। मानवीय शिक्षा एवं व्यवस्था–संहिता का योगफल ही मानव–जीवन–संहिता है, जिसमें मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या समायी हुई है। यही जीवन–संहिता की पूर्णता है। इसी के आधार पर निर्विषमता, निर्विरोधिता स्थापित होती है। ये जागृति पूर्वक प्रमाणपूर्वक पाई जाने वाली स्थिति है।

प्रत्यक्ष रूप में स्थापित **संबंध** ही समाज संरचना है जिसके अनुभव में ही सम्पूर्ण मूल्य ज्ञातव्य हैं। ये मूल्य शुद्धत: स्थिति ही हैं। स्थिति दर्शन अनुभूति हैं। संबंध विहीन इकाई नहीं हैं। प्रत्येक **संबंध** मूल्य सम्पन्न हैं। मानव के परस्पर **संबंधों** मे निहित सम्पूर्ण मूल्यों में से नौ स्थापित मूल्यों में से पूर्ण मूल्य प्रेम है, जो मानव **संबंधों** में इष्ट, मंगल एवं शुभ है। यही अनुभव है जिससे ही निर्विषमता, अनन्यता मानव जीवन में प्रकट होती है। यही सामाजिकता की आत्मा प्राण और त्राण है। प्रेरणा ही प्राण, आचरण ही त्राण है।

संबंध विहीन समाज नहीं है। समाज रचना **संबंध** "में, से, के लिए" ही है। **संबंध** मात्र समाज "में, से, के लिए" है। अत: समाज एवं **संबंध** अन्योन्याश्रित हैं। इसी तारतम्य में सभी मूल्य अन्योन्याश्रित है। फलत: अनन्यता सिद्ध है। यही सह–अस्तित्व का मूल सूत्र है। इसलिए

संबंध ही जन्म, शिक्षा, व्यवहार, परिवार, उत्पादन, व्यवस्था के प्रभेद से दृष्टव्य है। वह :–

1. जन्म संबंध :– माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहन उनसे संबंधित सभी संबंध
2. शिक्षा संबंध :– गुरु–शिष्य।
3. व्यवहार संबंध :– मित्र, वरिष्ठ, कनिष्ठ (आयु के आधार पर)
4. उत्पादन प्रौद्योगिकी संबंध :– साथी–सहयोगी, स्वामी–सेवक, साधन–साधक, साध्य।
5. व्यवस्था संबंध :– दश सोपानीय परिवार सभा विधि।

6. परिवार संबंध :– परिवार संबंध में पति–पत्नि सहित सभी संबंध समाये रहते हैं।

प्रत्येक मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए उत्सुक है। जागृत मानव प्रधानत: मानव के साथ ही स्वयं की जागृति को प्रमाणित करता है। स्थापित संबंध में ही निर्वाह–क्षमता का उपार्जन कर लेना ही शिक्षित होने की उपलब्धि है।.... **(अध्याय:20, पृष्ठ नंबर: 75–77)**

- क्रमिकता ही नियति क्रम है। नियंत्रणपूर्ण गति ही नियति है। क्रमिकता ही गुणात्मक विकास एवं जागृति की श्रृखंला है। गुणात्मक जागृति ही प्रकटन है। यही जड़–चैतन्यात्मक प्रकृति की अभिव्यक्ति है। अभ्युदय को व्यक्त करना ही अभिव्यक्ति है। रूप, गुण, स्वभाव की वैविध्यता ही अनेक स्थितियों को स्पष्ट करती है। यही स्थितियाँ क्रम से गठन–क्रिया एवं आचरणपूर्णता को प्रकट करती हैं। यही त्रिसिद्धियाँ आद्यान्त प्रकृति में पायी जाने वाली उपलब्धियाँ हैं। दर्शन–क्षमता का उदय मानव में विशेषत: हुआ है। अशेष प्रकृति प्रकटन है। यही अध्ययन एवं उदय का कारण है। क्रिया में वैविध्यता का समापहरण ही सार्वभौमिकता है। यही मानवीयता का प्रत्यक्ष रूप है। मानव में व्यवहार एवं उत्पादन क्रियाएं प्रसिद्ध हैं। उत्पादन क्रियाओं की सार्वभौमिकता निपुणता एवं कुशलता से अर्थात् उपयोगिता मूल्य एवं सुन्दरता मूल्य के स्थापन करने की सामर्थ्य समानता से, व्यवहार क्रिया में सार्वभौमिकता पांडित्यपूर्ण पद्धति से अर्थात् **संबंधों** में निहित मूल्यों के निर्वाह से है। यही संस्कृति एवं सभ्यता में सार्वभौमिकता का आधार है या यही सार्वभौमिकता है। सार्वभौमिकता ही विरोध की विजय है, विरोध की विजय ही सह–अस्तित्व है। अमानवीयतावादी जीवन में सामान्य समाज–व्यवस्था एवं शिक्षा समृद्धि पर्यन्त विरोध का अभाव नहीं है। इकाई की क्षमता में जागृति पर्यन्त विरोध का अभाव नहीं है। इकाई की क्षमता में जागृति ही गुणात्मक परिमार्जन है। प्रत्येक मानव इकाई की क्षमता ही आचरण में अभिव्यक्त होती है। अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से अतिमानवीय गुणात्मक परिवर्तन सिद्ध हुआ है। मानवीयता सहज क्रिया की पूर्णता होती है। फलत: संस्कृति एवं सभ्यता में निर्विषमता एवं सतर्कता सहित सजगता पूर्ण होती है। अतिमानवीयता पूर्वक आचरण में पूर्णता होती है, फलत: सजगता प्रमाण सिद्ध होती है। **(अध्याय:21, पृष्ठ नंबर: 79)**
- .....यह संबोधन क्रम से स्थापित **संबंधों** को ज्ञात कराता है। प्रत्येक **संबंध** में स्थापित मूल्य प्रसिद्ध है। प्रत्येक **संबंध** की चरितार्थता केवल अभयता एवं अनिवार्यता ही है। जो जीवन का लक्ष्य है। प्रत्येक चैतन्य इकाई जीवन घटना में लक्ष्य को साधना चाहती है। इसी महत्वपूर्ण भूमिका का आरम्भ नामकरण से होता है। अस्तु, मानवीयता का प्रबोधन उद्बोधन करने का आधार भी नाम ही है।.....**(अध्याय:31, पृष्ठ नंबर: 100)**

- "मानव जीवन में गुणात्मक जागृति के लिए शिक्षा–संस्कार प्रसिद्ध है।" गुणात्मक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्यक्रम पद्धति, नीति, वस्तु, विषय, प्रणाली एवं प्रक्रिया ही मानव जीवन में शिक्षा–संस्कार का प्रत्यक्ष रूप है। यह क्रम से माता–पिता, परिवार, संपर्क, **संबंध**, शिक्षा मंदिर, शिक्षा संस्थान एवं मानवकृत वातावरण से सम्पन्न होता है। प्रत्येक मानव जन्म से जाति एवं वर्ग विहीन है। शिक्षापूर्वक ही उसमें वर्गीय, जातीय संस्कारों को स्थापित किया जाता है, जो मानवता के लिए वांछित घटना नहीं है। इसका विकल्प अर्थात् मानवीयतापूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का अप्रचुर होना ही ऐसी अवांछित घटना के लिए विवशताएं हैं। इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण जीवन चित्रण एवं ऐसी चेतना की परम्परा ही है, जो शुद्धतः मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता में विलीन होती है। गुरू मूल्य में लघु मूल्य का विलय होना पाया जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी में क्रम से शैशव, बाल एवं किशोरावस्था से ही माता–पिता, परिवार, शिक्षा मन्दिर, शिक्षा संस्थान, व्यवस्था–पद्धति, प्रचार, प्रकाशन,प्रदर्शन–समुच्चय द्वारा मानवीयता पूर्ण जीवन एवं जीवन के कार्यक्रम को उद्बोधन–प्रबोधन कराने वाली प्रक्रिया परम्परा ही वर्ग विहीन चेतना को प्रस्थापित करने का एकमात्र उपाय है। यही मानवीय संस्कृति का मौलिक देय है। संस्कृति एवं सभ्यता से संबद्ध शिक्षा सर्वसुलभ न होने से अखंड सामाजिकता में प्रत्येक व्यक्ति के भागीदार होने की संभावना नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका सर्वसुलभ होना अनिवार्य है। यही शिक्षा–संस्कार की गरिमा, महिमा एवं जीवन में अविभाज्यता है। (**अध्याय:31, पृष्ठ नंबर: 101**)
- **मानव के संपूर्ण संबंध गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक हैं।**

  प्रत्येक मानव, मानव से न्याय की याचना करता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन की तृषा एवं उसका द्योतक है। गुणात्मक परिवर्तन ही जागृति है। जागृति स्वंय में संतुलन, समाधान एवं नियंत्रण है, जो जीवन का अभीष्ट है। जागृति क्रम में प्रत्येक मानव सुख सहज अपेक्षा करता है। इसके मूल में सत्यता यही है कि प्रत्येक मानव अधिकाधिक विकास की ओर प्रगतित होना ही है। यह साम्य आकाँक्षा भी है। साथ ही मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए बाध्य है। व्यवहार विहीन स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन की संभावना नहीं है। मानव में स्थापित मूल्यानुभूति पूर्वक ही गुणात्मक परिवर्तन होता है। इससे यह स्पष्ट हो पाता है कि प्रत्येक **संबंध** में निहित मूल्य निर्वाह ही जागृति का तथा उसकी उपेक्षा ही ह्रास का प्रधान कारण है। प्रत्येक **संबंध** में परस्पर न्याय सहज उपलब्धि ही गुणात्मक परिवर्तन का आधार, प्रक्रिया एवं गति है। न्याय का अभाव ही द्रोह, शोषण, वंचना, प्रवंचना के रूप में अभिव्यक्त होता है। यही कालांतर में असहनीय होकर विद्रोह एवं विरोध के रूप में प्रकट होता है। यही संघर्ष है। संघर्ष जनाकाँक्षा एवं उपलब्धि के मध्य में पायी जाने वाली रिक्तता ही है। इस रिक्तता को भली प्रकार से अरिक्तता में परिवर्तित करने का उपाय केवल मानवीयतापूर्ण शिक्षा एवं व्यवस्था पद्धति है। सार्थक चरितार्थ वर्तमान होता है। ऐसी व्यवस्था से ही प्रत्येक **संबंध** में न्याय प्रदायी एवं ग्राही क्षमता का प्रमाण होता है। फलतः सर्वमंगल एवं नित्य शुभोदय होता है। (**अध्याय:34, पृष्ठ नंबर: 115–116**)

- धर्मनैतिक कार्यक्रम पूर्णतया अर्थ के सदुपयोग पर आधारित है। अर्थ की सदुपयोग परम्परा स्वयं में धर्मनीति है। यह प्रधानत: अर्थ के उपयोग, सदुपयोग एवं वितरण की प्रक्रिया सें संबद्ध है। वस्तु मूल्य का आदान–प्रदान वस्तु व सेवा के रूप में, शिष्ट मूल्य का आदान–प्रदान मुद्रा, भंगिमा व अंगहारपूर्वक वस्तु के अर्पण एवं सेवा के रूप में तथा स्थापित मूल्य का आदान–प्रदान शिष्ट मूल्य सहित व्यंजनीयता के रूप में है। प्रत्येक मूल्य व्यंजनीयता से संबद्ध है ही। व्यंजनीयता ही मानव में तादात्म्य प्रक्रियानुषंगिक शिष्टता को प्रकट करती है। शिष्टता में वस्तु मूल्य समर्पित है ही। इस विश्लेषण से यह निर्णय स्पष्ट होता है कि स्थापित मूल्यों के आनुषंगिक शिष्ट मूल्य एवं शिष्ट मूल्यों के आनुषंगिक वस्तु मूल्य का प्रत्येक **संबंधों** में व्यवहृत किया जाना धर्मनैतिक कार्यक्रम है। यही विशुद्ध रूप से मानव में वांछित सुख परिपाकात्मक मूल प्रवृत्तियों से संपन्न होता है जिसके लिए ही मानव कुल तृषित है। (**अध्याय:39, पृष्ठ नंबर: 131**)
- मानवीयतापूर्ण जीवन में ही औचित्यता चरितार्थ होती है। गुणात्मक परिवर्तन के लिए औचित्यता का निर्णय एवं उसके अनुसार आचरण अनिवार्य है। सम्पूर्ण प्रकार के अपव्यय मानवीयतापूर्ण जीवन में समाप्त हो जाते हैं। फलत: भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान है। अपव्यय एवं अज्ञान के बिना मर्ध्यता एवं समस्या नहीं है। मर्ध्यता का तात्पर्य असमृद्धि एवं अभावता से है। वर्तमान में मानव के लिए आवश्यकीय वस्तुओं की निर्माण क्षमता उनमें पर्याप्तता के निकटवर्ती है। केवल व्यवहारिक आकाँक्षा का पूर्ण होना ही समाज वैभव सिद्धि है। सामाजिक वैभवता बौद्धिक समाधान एवं भौतिक समृद्धि ही है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन ही भौतिक समृद्धि का प्रत्यक्ष रूप है। यही समाधानात्मक भौतिकवाद का आधार है। स्थापित **संबंधों** का विधिवत् निर्वाह ही व्यवहार आकाँक्षा का आशय है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का सूत्र है। स्थापित मूल्यों की अनुभूति योग्य क्षमता सम्पन्नता ही या सम्पन्न कार्यक्रम ही अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का सूत्र है। अनुभव, समाधान, व्यवहार एवं समृद्धि मानव जीवन के अविभाज्य भाग हैं। इनमें से किसी एक का अभाव होने पर जीवन गति कुण्ठित होना अथवा इनकी परस्परता में असंतुलन होना पाया जाता है। (**अध्याय:41, पृष्ठ नंबर: 137**)
- "आवश्यकताएं परिवारमूलक हैं।" परिवार के अभाव में आवश्यकता का उद्गम प्रमाणित नहीं है। एकाकी मानव जीवन का इतिहास एवं चरितार्थता नहीं है। मानव जीवन के इतिहास एवं चरितार्थता का समाज एवं सामाजिकता की अपेक्षा में अध्ययन होता है। एक से अधिक होने की स्थिति में परस्पर अपेक्षा का उद्गमन संभव होता है। संपूर्ण अपेक्षाएं परस्परता में, से, के लिए ही ज्ञातव्य एवं दृष्टव्य हैं। व्यवहार का अभाव उसी भूमि पर होगा जहाँ मानव का अभाव है। विकास के क्रम में इस धरती पर भी मानव का अभाव रहा ही होगा। साथ ही यह कल्पना भी होती है कि जब कभी भी इस पृथ्वी पर मानव का अवतरण हुआ, एक से अधिक हुआ है। यह वास्तविकता स्पष्ट है कि एक से अधिक एकत्रित हुए बिना मानव परम्परा सिद्ध नहीं होती। इस श्रृंखला में यह निश्चय होता है कि मानव जीवन में आवश्यकताएं उनके **संबंध** एवं संपर्क की विशालता के अनुरूप पायी गई हैं। उसी की पूर्ति हेतु समस्त योजना–परियोजना दृष्टव्य है। ऐसी आवश्यकताएं व्यवहारिक एवं वस्तु मूल्यों से लक्षित हैं, जिनमें से किसी एक का अपूर्ण

होना दूसरे के सदुपयोग व सुरक्षा में हस्तक्षेप होना है। व्यवहारिक प्रमाणों में अंतर्विरोध नहीं है। प्रमाण ही परस्पर विरोध पर विजय पाता है। इसी सत्यता के आनुषंगिक व्यवहारिक अनुसंधान एवं उत्पादन संबंधी अविष्कार होते गए हैं। प्रमाण विहीन स्थिति में ही मानव की परस्परता में विरोध होना पाया जाता है, भले ही वह व्यवहारिक या उत्पादन संबंधी क्यों न हो। विरोध पर विजय ही गुणात्मक परिवर्तन का प्रधान लक्षण है। जीवन समग्र का प्रमाणित हो जाना ही संपूर्ण विरोध का निराकरण है। प्रमाण विहीन ऐच्छिककताएं काल्पनिक सुविधाओं पर आधारित होनी स्वभाविक है। यही वैचारिक वैविध्यता का कारण है और मानव में परस्पर मतभेद है। यह क्रम से वर्ग संघर्ष एवं युद्ध है, जो स्पष्ट है। इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष मिलता है कि जीवन समग्र का अध्ययन ही ऐसी समस्याओं का समाधान है। मानव जीवन समग्रता, आयाम चतुष्टय की एकात्मकता में तथा पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था की एकरूपता में प्रमाणित है। यही मानव–जीवन परम्परा का प्रत्यक्ष रूप है। यही क्रम से संस्कृति एवं सभ्यता है। इसी सीमा में संपूर्ण परस्परताएं विश्लेषित हैं। इन सभी **संबंधों** एवं संपर्कों का निर्वाह ही मानव–परम्परा की ख्याति है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि मूल्यों से अधिक अनुभव करने के लिए वस्तु नहीं है तथा मूल्यों से अधिक विशालता नहीं है। सत्तामयता से अधिक व्यापकता नहीं है। सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति से अधिक विकास एवं जागृति के लिए वस्तु नहीं है। विश्लेषण प्रकृति की सीमा में हुआ है। यह उसकी उपयोगिता एवं उपादेयता को स्पष्ट किया है। गुरुमूल्य के बिना लघुमूल्य का नियंत्रण नहीं है। इसे सत्ता में संपृक्त प्रकृति ने प्रमाणित किया है। इसी तारतम्य में शिष्ट मूल्य का वस्तु मूल्य से गुरु मूल्य होना एवं शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य का गुरुमूल्य होना प्रमाणित है। आवश्यकताओं के नियंत्रण, संयमन एवं संरक्षण की अपेक्षा में संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकरूपता का होना आवश्यक, अनिवार्य एवं अपरिहार्य है। इसके बिना सर्वमंगल, नित्यशुभ, जीवन सफल एवं भौमिक स्वर्ग संभव नहीं है। **(अध्याय:41, पृष्ठ नंबर: 137–138)**

- "विश्वासपूर्ण जीवन में प्रगतिशील कार्यक्रम, विश्वास विहीनता पर्यन्त प्रतिक्रियावादी कार्यक्रम प्रसिद्ध है।" प्रगतिशीलता कार्यक्रम ही सतर्कता का द्योतक है जो समाधान निरन्तरता है। प्रगतिशीलता गुणात्मक परिवर्तन के क्रम में होती है। गुणात्मक परिवर्तन जागृति क्रम में है। मानव में विश्वास अमानवीयता से मानवीयता एवं मानवीयता से अतिमानवीयता क्रम ही है। मानवीयता से परिपूर्ण होने के अनन्तर ही प्रगतिशील कार्यक्रम आरम्भ होता है। यही अतिमानवीयता से परिपूर्ण होते तक संबद्ध रहेगा। विश्वास स्थापित मूल्यों में साम्य मूल्य है। विश्वास मूल्य की अनुभूति मानवीयता में ही होती है। विश्वास ही क्रम से पूर्ण मूल्यानुभूति पर्यन्त प्रगतिशीलता के लिए बाध्य करता है। इसी क्रम में मानव में गुणात्मक परिवर्तन होता है। फलत: वह सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होता है जो समाधान निरंतरता का आधार है। यही सामाजिकता को प्रकट करता है। साथ ही, उसको प्रमाणपूर्वक अक्षुण्ण बनाता है तभी जीवन का चतुर्दिग उदय होता है। यही अभ्युदय है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की एकसूत्रता ही चतुर्दिग उदय है। इनमें विषमता ही वर्ग समुदाय है। अभ्युदय विहीन जीवन सामाजिक सिद्ध नहीं होता है। अभ्युदय का प्रमाण ही स्थापित मूल्यों की अनुभूति है। अभ्युदय अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान ही जीवन

सफलता है। यही चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों में दश सोपानीय व्यवस्था की एकसूत्रता के लिए प्राणतत्व है अर्थात् मूल तत्व है। विश्वास विहीन प्रत्येक **संबंध** एवं संपर्क में दायित्व एवं कर्तव्य वहन सिद्ध नहीं होता है। दायित्व एवं कर्तव्य वहन की उपेक्षा अथवा तिरस्कारपूर्वक समाज संरचना नहीं होती है और न सामाजिकता ही सिद्ध होती है। **(अध्याय:49, पृष्ठ नंबर: 160–161)**

- "आयोजनात्मक, प्रयोजनात्मक एवं योजनात्मक कार्यक्रम प्रसिद्ध हैं।" आत्मीयतापूर्ण अर्थात् न्याय सम्मत पद्धति से किया गया सम्मेलनात्मक योजना ही आयोजन है। पूर्णता की अपेक्षा में या पूर्णतया परस्पर मिलन ही सम्मेलन है। आयोजनात्मक कार्यक्रम ही सामाजिक कार्यक्रम है। सामाजिक कार्यक्रम प्रधानत: संवेदनशीलता व संज्ञानीयता की अभिव्यक्ति है, यही प्रयोजन है। संज्ञानीयता ही आयोजन का प्रधान कारण है। संज्ञानीयता के अभाव में आयोजनात्मक कार्यक्रम सफल नहीं है। आयोजनात्मक कार्यक्रम ही सामाजिकता को स्पष्ट करता है। आयोजन मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों के अर्थ में चरितार्थ होती है। यही प्रमाण मूलक दश सोपानीय परिवार सभा व्यवस्था होने से परंपरा है। प्रमाण मूलक न होने से वर्ग भावना की अभिव्यक्ति है। परम्परा में प्रमाण मूलक चिन्तन का होना अनिवार्य है। यही सफलता का द्योतक है। इसके अभाव में आयोजन नहीं है। आयोजन में व्यवहारिकता का निर्धारण होना ही प्रधान तत्व है। व्यवहारिकता अनुभवमूलक होने से ही सफल होता है। फलत: समाज संरचना स्पष्ट होता है अर्थात् **संबंध** एवं संपर्क के प्रति दायित्व एवं कर्तव्य निर्वाह होता है। फलत: समाज की अखण्डता एवं अक्षुण्णता सिद्ध होता है। आयोजन की चरितार्थता अखण्डता में ही है न कि विघटन में। संपूर्ण आयोजनायें धर्मीयता को प्रसारित करने के लिए बाध्य है। मानव धर्मीयता सार्वभौमिक है। मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था के रूप में ही मानव धर्मीयता प्रसारित होता है। **(अध्याय:50, पृष्ठ नंबर: 162–163)**
- रस जीवन में अविभाज्य तत्व है। रस ही मूल्य है। जीवन का मूल्य मूल्यानुभूति योग्य क्षमता है। मूल्य विहीन जीवन रसानुभूति करने में सक्षम नहीं होता है। इसी सत्यतावश उसे जन–सामान्य, सहज–सुलभ सिद्ध करने के लिए रसानुसंधान एवं उसके लिए कार्यक्रम है। स्थापित मूल्य ही मूलत: रस हैं। रस का तात्पर्य ही जीवनसार से है। उसमें से पूर्ण मूल्य ही पूर्ण रस है। यही रसैश्वर्य है। इसे जीवन में प्रत्येक मानव अनुभव करना चाहता है। रसानुभूति के लिए जीवन में संपूर्ण कार्यक्रम तथा इसी के लिए प्रदर्शन क्रियाकलाप भी सहायक है। इसी में नाट्य–अभिनय, नृत्य और प्रहसन भी सहायक हैं। प्रधानत: साहित्य ही इसका माध्यम है। रसानुभूति रति शब्द से इंगित है। मूल्यानुभूति ही अंततोगत्वा तात्विकता एवं रति है। यही साहित्य की मौलिकता, उपादेयता एवं चरितार्थता है। सत्यता ही तात्विकता है। मूल्य और मूल्यानुभूति से अधिक तात्विकता कुछ भी नहीं है। यही रसानुभूति है। साहित्य द्वारा इसी सत्यता के उद्घाटन की अपेक्षा है। सत्यता के उद्घाटन हेतु प्रयुक्त, प्राप्त एवं स्थित साधन ही साहित्य है। ऐसे साधन मानव में शब्दादि पाँच रूपों में हैं। उनमें से शब्द ही वरीयतम साधन है। उसकी तुलना में दूर–दूर तक फैलने व फैलाने योग्य उपयुक्त साधन और कोई नहीं है। शब्द ही भाषा, साहित्य, काव्य, संहिता एवं सूत्र के रूप में प्रायोजित होता है। शब्द, भाषा विज्ञान से सुसंस्कृत होकर भाषा के रूप में अवतरित होता है। तब

वह सार्थक होता है। सार्थकता ही भाषा है। भाषा का तात्पर्य ही है भाषाभाष एवं प्रतीति की व्यंजना। साथ ही, उसमें भावग्राही व भाव प्रदायी व्यंजनीयता सिद्ध होती है। मौलिकता ही भाव है। व्यंजनीयता ही संवेदनशीलता है। संवेदनशीलता ही व्यंजनोत्पादीय एवं व्यंजनारत है। अस्तु, भाषा में भाव की, भाषा–भाव में शैली एवं भाषा–भाव–शैली में अलंकार एवं रस की, भाषा–भाव–शैली–अलंकार एवं रस में भाषा विज्ञान तथा भाषा विज्ञान में भाषा के आश्लिष्ट एवं संश्लिष्ट भेद–प्रभेद से साहित्य रचनाएं हैं। साहित्य परम्परा में मौलिक अक्षुण्णता यह है कि मानव की परस्परता में स्थित या स्थिति–निर्मित जो रसानुभूति की वाँछाएं–आकाँक्षाएं हैं वे भावपूर्ण वांग्मय मूर्तियों की सम्प्रेषण एवं स्वागत अथवा व्यंजित होने एवं व्यंजनोत्पादन क्रिया–प्रक्रियापूर्वक समय सन्निवेशात्मक साधन सहित व्यंजनास्थल में रसारोपण एवं पोषण में रत है। रत का गन्तव्य रति ही है। रति केवल अनुभवात्मक एवं सान्निध्यात्मक ही चरितार्थ हुई है। रस रति "में, से, के लिए" ही है। इन दोनों प्रकार की रति की मौलिकता को व्यक्त करना और उसे सर्वसुलभ बनाना ही साहित्य का आद्यान्त उद्देश्य है। **सान्निध्यात्मक रति संबंध एवं संपर्क मूलक है।** यह शिष्टता पूर्वक रसानुभूति का क्रम है। अनुभवात्मक रति स्थापित मूल्यानुभूति के अनंतर शिष्टता एवं सामाजिकता को अभिव्यक्त करती है। यही साहित्य का मूल तत्व है। रसविहीन साहित्य निरर्थक है। रसाभिव्यक्ति होना ही साहित्य में आद्यान्त गरिमा एवं चरितार्थता है। रस ही जीवन सर्वस्व है। मानव जीवन चरितार्थता के लिए अनवरत प्यासा है। साहित्य के माध्यम से रस का मुखरित होना पाया जाता है। संयोग विकास जागृतिपूर्वक रसानुभूति होती है। जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य का अनुभव ही रस है। रसानुभूति योग्य प्रेरणा ही साहित्य है। मानव जीवन में पांडित्य पूर्वक ही साहित्य स्पष्ट है। यही जीवन दर्शन है। जीवन दर्शन विहीन साहित्य सार्थक नहीं है। जीवन दर्शन ही मानव एवं मानवता को स्थापित करता है। यह रसानुभूति का प्रथम सोपान है। इसी सोपान में रस में तन्मयता सर्वसुलभ होती है। इसी रसमयता में अधिकार पाने की श्रंृखला में ही देव मानवीयता एवं दिव्य मानवीयता सिद्ध होती है। रसानुभूति में विषमता का अत्याभाव होता है। ऐसे रस नौ स्थापित मूल्यों के रूप में अभिप्रेत हैं। ये सभी मूल्यात्मक रस मानव जीवन में ही चरितार्थ होते हैं। इनमें प्रसक्ति ही रसिकता है। रसिकता गुणात्मक परिवर्तन की द्योतक है न कि कामुकता की। कामुकता गुणात्मक परिवर्तन के लिए सहायक नहीं है। कामुकता परतंत्रित आवेश है। रसानुभूति स्वतंत्राभिव्यक्ति है। रसानुभूति सामाजिक, व्यवहारिक एवं प्रमाणिक है जबकि कामुकता असामाजिक, अव्यवहारिक एवं अप्रमाणिक है। प्रमाणिकता प्रमाणिक क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता के संदर्भ में है। वह केवल गुणात्मक परिवर्तन है। जीवन सर्वस्व रसानुभूति में प्रमाणित है न कि कामुकता में। संपूर्ण प्रकार के अभ्यास की चरितार्थता रसानुभूति में ही है। यही सफल जीवन है। संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्थापूर्वक इसके सर्वसुलभ होने में ही भूमि स्वर्ग, मानव देवता, धर्म सफल एवं नित्य मंगल है। (अध्याय:54, पृष्ठ नंबर: 170–172)

संदर्भ: मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

- इकाई रूप–गुण–स्वभाव एवं धर्म के योगफल में ही स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का अनुभव करती है। यही सामाजिकता का परिणाम एवं पूर्ण सतर्कता है। इस क्षमता से परिपूर्ण होते तक मानव में गुणात्मक परिमार्जन भावी है। (अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 39)
- सृष्टि में पाए जाने वाले तिरोभाव, भाव, अभाव, परिणाम, परिपाक संबंध, ज्ञान योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता की अपूर्णता ही माया है। (अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 39)

संदर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(**संस्करण**: 2009)

- समाधान ही विभव का आधार हैं। समाधान पूर्वक ही प्रत्येक विकास की कड़ी अपने आप में प्रकाशित होती हैं। यही समाधान नित्य परम्परा और त्राण तथा प्राण होने के कारण यह स्पष्ट हो जाता हैं कि समाधान के पद में ही विकास और उसकी निरन्तरता का वैभव है। इस प्रकार मध्यस्थ क्रिया का स्वयं व्यवहारिक समाधान के रूप में नित्य प्रभावशील होना ही स्थिति के अर्थ को स्पष्ट कर देता है। समविषमात्मक आवेश निरन्तर समस्या का ही प्रकाशन हैं इस तथ्य को हृदयंगम करने पर असंदिग्ध रूप में स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण प्रकृति स्थिति में स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही रहती हैं जो मध्यस्थ क्रिया "आत्मा" के अनुशासन में होने वाली क्रिया है। यही अनुशासन मध्यस्थ क्रिया बल के रूप में अनुभव, शक्ति के रूप में प्रामाणिकता होती है। यह चैतन्य क्रिया की अभिव्यक्ति में होने वाला वैभव है। प्रत्येक चैतन्य क्रिया की प्रामाणिकता प्रकाशित होने की संभावना रहती हैं। उन संभावनाओं को सर्व सुलभ, सहज सुलभ बना लेना ही पुरुषार्थ का तात्पर्य है। शिक्षा पूर्वक अथवा प्रबोधन पूर्वक प्रामाणिकता आदान–प्रदान करने की वस्तु है। चैतन्य–प्रकृति में ही समाधान की नित्य तृषा का होना एवं समाधानपूर्वक नित्य तृप्ति होना पाया जाता है। समाधान और उसकी निरन्तरता के अर्थ में ही सम्पूर्ण पदार्थ और **संबंध** का निर्वाह हो पाता है। समाधान ही जीवन सन्तुष्टि का स्रोत होने के कारण समाधान और प्रामाणिकता की परम्परा में ही चैतन्य–प्रकृति की परम्परा अथवा सम्पूर्ण चैतन्य–प्रकृति के तृप्त होने की व्यवस्था है। इस निष्कर्ष पर आते हैं कि चैतन्य–प्रकृति में आदान–प्रदान होने वाली, पहचानने और निर्वाह करने की संयुक्त संप्रेषणा की स्वीकृति ही बोध के नाम से जानी जाती हैं। इसी को हृदयंगम कहा जाता हैं और ऐसा बोध ही अवधारणा है। (**अध्याय**:5, **पृष्ठ नंबर**: 84–85)
- पूरकता विधि से समाधान:–

 अस्तित्व में समाधान, दर्शनक्रम में किसी एक की भी ख्याति समाप्त नहीं हो सकती, चाहे मानव कितना भी समस्यात्मक प्रयत्न कर ले। अर्थात् कोई न कोई मानव संतान ही सर्वशुभ समाधान के लिए प्रयत्नशील रहता ही है। इससे यह ज्ञान, विवेक और प्रक्रिया सुलभ होती हैं कि एक दूसरे को मिटाने की आवश्यकता नहीं। सभी अवस्थाओं का अपना–अपना उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन अस्तित्व सहज विधि से ही अनुबंधित है। यही पूरकता विधि है। मानव में यह पूरकता विधि **संबंधों** को पहचानने के आधार पर या **संबंधों** को निर्वाह करने के प्रमाणों के आधार पर सार्थक होती हैं। प्रत्येक मानव में यह अध्ययनगम्य होता हैं कि जहाँ–जहाँ हम **संबंधों** को पहचान पाते हैं, वहाँ–वहाँ मूल्यों का निर्वाह होना पाया जाता है। इस तथ्य के आधार पर अस्तित्व में परस्पर **संबंध** एक मौलिक अनुबंध है। ये भी अनुबंध पूर्णता और उसकी निरंतरता के लिए अनुबंधित हैं। पदार्थावस्था से प्राणावस्था,

प्राणावस्था से जीवावस्था, जीवावस्था से ज्ञानावस्था अनुबंधित हैं ही इसका प्रमाण इन सब का वर्तमान ही है। इसी आधार पर ज्ञानावस्था से जीवावस्था, जीवावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से पदार्थावस्था की परस्परता में अनुबंध है। इनमें से मानव के अतिरिक्त सभी अवस्थाओं ने अपने अनुबंध को पूरकता विधि से प्रमाणित किया है। क्योंकि पदार्थावस्था के अनंतर प्राणावस्था, पदार्थावस्था प्राणावस्था के अनंतर जीवावस्था, पदार्थावस्था प्राणावस्था जीवावस्था के अनंतर ज्ञानावस्था का प्रार्दुभाव, प्रकाशन इस धरती पर हुआ है। इस धरती पर मानव की समझ में यह भी आता हैं कि जीवावस्था, प्राणावस्था और पदार्थावस्था परस्पर पूरक हैं। वे सब मानव के लिए पूरक है हीं; पर बीसवीं शताब्दी के अंत तक मानव ने जो कुछ किया है, उससे मानव का अन्य तीनों अवस्थाओं की प्रकृति के साथ पूरक होने के स्थान पर विरोधी होना व विद्रोही होना प्रमाणित हुआ है।... **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 105–106)**

- अस्तित्व सहज वैभव पदार्थ, प्राण, जीवों के रूप में दिखाई पड़ रहा है। ये सब मानव की किसी योजना के बिना ही धरती पर संपन्न हो चुका है। अध्ययन का मूल बिंदु है– यथास्थिति से, सम्पूर्ण पद्धति के साथ मानव के साथ तालमेल, **संबंध** और कर्तव्यों को पहचानना। अध्ययन जब कभी मानव कर पाता है, यथार्थ विधि से ही, मानव सहज जागृति को अध्ययन कर पाता है। अभी मुख्य मद्दा यह है कि जो कुछ भी अस्तित्व है वह अंतर्विरोध बाह्य विरोधों से प्रताड़ित रहता हैं या अंत:संगीत बाह्य संगीत संपन्न है। इन्हीं तथ्यों पर ध्यान देना विवेक और विज्ञान सम्मत विधि से परीक्षण करना और तथ्यों को स्वीकार करना –यही अध्ययन का सार रूप है। ऐसी अध्ययन सहज अवधारणाएँ स्वयं संस्कार यथा सह–अस्तित्व सहज नियम से ही जानी जाती है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 110)**
- "मानवीयता" व्यवहार में प्रमाणित होने का तात्पर्य यही है कि –
    1. हम जीवन ज्ञान में पारंगत रहेंगे। स्वयं के प्रति विश्वास करेंगे श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करेंगे।
    2. अस्तित्व दर्शन में निर्भ्रम रहेंगे।
    3. स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार करेंगे।
    4. तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा करेंगे।
    5. **संबंधों** को पहचानेंगे, मूल्यों का निर्वाह करेंगे, मूल्यांकन करेंगे।

यही मानवीयता को व्यवहार में प्रमाणित करने परस्पर तृप्ति और संतुलन का तात्पर्य है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 121)**

- ...जागृति का प्रमाण हैं –अस्तित्व दर्शन अर्थात् सह–अस्तित्व के प्रति पूर्ण जागृति अर्थात्:–

    1. अस्तित्व कैसा है, इसका संपूर्ण उत्तर जिसके पास हो।

    2. जो जीवन ज्ञान अर्थात् चैतन्य स्वरूप के अध्ययन में पारंगत हो और जिसका मानवीय आचरण वर्तमान में प्रमाणित हो, यही जागृत व्यक्ति का स्वरूप है।

    इसका मतलब यही हुआ कि जो जीवन को भले प्रकार से जानता मानता हो; अस्तित्व को भले प्रकार से जानता मानता हो और मानवीयतापूर्ण आचरण अर्थात् स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष और दयापूर्ण कार्य–व्यवहार करता हो; तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा करता हो, **संबंधों** को पहचानता हो, मूल्यों का निर्वाह करता हो– यही मूल्य, चरित्र, नैतिकतापूर्ण मानवीय आचरण है।.... (**अध्याय:6, पृष्ठ नंबर**: 130–131)

- जागृति के आधार पर ही मानव **संबंध**, मूल्य और मूल्यांकन विधि से न्याय को प्रमाणित करता है। यह जागृति का प्रमाण है। सह –अस्तित्व में **संबध** सहज वर्तमान हैं, इसको पहचान लेना जागृति हैं। **संबंध** को पहचानने का प्रमाण ही हैं मूल्यों का निर्वाह करना। इससे यह सूत्र स्पष्ट हो जाता हैं कि मूल्यों का निर्वाह करना जीवन सहज हैं। **संबंधों** को पहचानना मानव सहज है। शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव हैं। मानव सहज रूप में जो–जो पहचान पाता है उसी में जीवन शक्तियाँ और बल अभिव्यक्त होते हैं। इसका प्रमाण मानव इतिहास रूपी विभिन्न आयामों में इसके कार्यकलापों को स्मरण में लाने पर स्वयं स्पष्ट होता है। जैसे–जैसे आदि काल से मानव जिस वस्तु को पहचान कर पाता था उसी में मानव शक्तियाँ अर्थात् आशा, विचार, इच्छा रूपी शक्तियाँ लगता ही रहा है। इसे किसी भी आयाम के साथ विचार कर देखें और वर्तमान में किसी भी एक पहचान के साथ अपना परीक्षण कर देखें। इस धरती के प्रत्येक मानव को देखें तब हम यही पाते हैं कि जो **संबंधों** को जैसा पहचान लिए हैं उसी में उसकी शक्तियाँ बहती हुई दिखाई देती है। जैसे एक व्यक्ति अपने बच्चे को पहचान लिया उस स्थिति में ममता व वात्सल्य मूल्य अपने आप बहता है। उसी प्रकार जैसे स्वयं के बच्चे को पहचाने और ममता वात्सल्य बहा, वैसे ही किसी भी बच्चे को पहचानने की स्थिति में वैसा ही ममता और वात्सल्य का बहना देखने को मिलता है। एक मित्र का एक मित्र के साथ **संबंध** पूर्णतया पहचानने के उपरान्त पहचान तथा निर्वाह हो पाता है। वैसे ही प्रत्येक मित्र के साथ पहचान तथा निर्वाह हो पाना स्वाभाविक है। ऐसे ही गहराई से देखें तो प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्मुख मित्रता सहित मुलाकातें होने की कामना करता ही है। प्रत्येक व्यक्ति से हर व्यक्ति विश्वास की अपेक्षा रखता है, न कि अविश्वास की। इसका प्रमाण यही है कि अनजान देश, अनजान व्यक्ति, अनजान भाषा आदि की विपरीतता होते हुए भी एक दूसरे से मिलने के लिए जब कोई व्यक्ति मानसिकता बनाता है, तब सामने वाला व्यक्ति विश्वास निर्वाह करने में ही अधिक भरोसा करता है। इसी क्रम में हर संस्था में भागीदारी करने वालों की परस्परता में विश्वास निर्वाह होने की इच्छा बनी रहती है। हर समुदाय, हर देश की परस्परता में भी विश्वास निर्वाह की निश्चित रूप रेखा के साथ निर्वाह करने की स्थिति में परस्पर मित्र राष्ट्र, मित्र समुदाय कहलाते हैं। अर्थात् परस्पर निश्चित अपेक्षाएँ

निर्वाह होने की स्थिति में यह परस्पर मित्रता कहलाती हैं। इसका निश्चित न्याय बिन्दु या सार्वभौम न्याय बिन्दु मानवीयता और पांडित्य के साथ ही प्रमाणित हो पाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 131–133)**

- अस्तित्व सहज मानव में समग्र अस्तित्व के प्रति विश्वास, वर्तमान के प्रति विश्वास, स्वयं के प्रति विश्वास होना, **संबंधों** को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना, मूल्यांकन करना बन जाता है। यह जागृत मानव परंपरा में ही सर्व सुलभ सर्वसाध्य हो पाता है। समुदाय परंपराओं में यह संभव नहीं हो पाता। इसका प्रमाण आज तक का बीता हुआ इतिहास है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 133)**
- बौद्धिक नियम का तात्पर्य :–
    1. असंग्रह अर्थात् आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था में भागीदारी।
    2. स्नेह अर्थात् **संबंधों** को पहचानने में, मूल्यों को निर्वाह करने में विश्वास।
    3. जीवन विद्या में पारंगत रहना, पांरगत होने में विश्वास, प्रतिभा और व्यक्तित्व में सामरस्यता सहज विश्वास। व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होने में विश्वास।
    4. सरलता अर्थात् **संबंधों** को पहचानने में विश्वास मूल्यों को निर्वाह करने में विश्वास और मूल्यांकन करने में विश्वास।
    5. अभय अर्थात् स्वयं मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने में विश्वास है।

    सामाजिक नियम:–

    1. स्वधन अर्थात् प्रतिफल, पारितोष और पुरस्कार रूप में प्राप्त धन से है।
    2. स्वनारी और स्व पुरुष–विवाह पूर्वक प्राप्त दाम्पत्य **संबंध**।
    3. दया पूर्ण कार्य–व्यवहार अर्थात् अविकसित के विकास में सहायक होने का संपूर्ण कार्य है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 140)**
- प्राकृतिक नियम:– अपने स्वरूप में, प्राकृतिक संपदा के साथ, मानव का अपने को नैसर्गिक **संबंध** के रूप में पहचान और पहचानने में विश्वास है, क्योंकि मानव के लिए मानवेत्तर प्रकृति नैसर्गिक हैं और मानवेत्तर प्रकृति के लिए मानव नैसर्गिक है। इसमें पूरकता विधि को निर्वाह करना प्राकृतिक नियम है।.. **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 140)**
- "न्याय, धर्म, सत्य दृष्टियों का प्रयोग हर व्यक्ति कर सकता है।" यही जागृत परंपरा है। भ्रमित समुदाय परंपरा हर व्यक्ति को किसी न किसी सीमा में फँसा देती है। परिणामत: संकीर्णता में ग्रसित होना पाया जाता है। न्याय, धर्म, सत्य दृष्टियों का सहज ही विशाल, विशालतम होना पाया जाता है। जैसे, हर व्यक्ति, हर व्यक्ति के साथ अपने **संबंधों** को पहचान सकता है, उनमें निहित मूल्यों का निर्वाह कर सकता है, मूल्यांकन कर सकता है। प्रत्येक मानव में यही विशालता की संभावना और गति के लिए परंपरादायी है। अपने–पराए की दीवाल और परिचित–अपरिचित की दीवाल बनाए रहता है। इन्हीं कारणों वश मानव परंपरा में समझदारी नहीं होने से न्याय सहज विशाल दृष्टि का

प्रयोग नहीं कर पाता। आगन्तुक व्यक्तियों के साथ अपने ही अंदाज में निश्चय हुए आयु के साथ संबोधन करना, देखा जा सकता है। जिसके साथ जैसा संबोधन हुआ रहता है उनके साथ उसी तरीके के मूल्यों का निर्वाह करते हुए देखने को मिलता है। इसमें किसी भी आयु वर्ग के मानव हो, इस मुद्दे पर ऐसा परीक्षण कर सकते हैं। आगन्तुक व्यक्तियों के आयु वर्ग के अनुसार, सहज संबोधन के रूप में किसी न किसी **संबध** के साथ किया जाये उनमें से कोई नकारने वाले भी मिलते हैं और सकारने वाले भी मिलते हैं। इन दोनों परीक्षणों को ध्यान में रखते हुए सोचा जाय तो इनमें कुछ और ज्ञानार्जन होने लगता है। किसी भी बच्चे से, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, हम मिलते है। शिशु, कौमार्य सहज सांैदर्य उनमें रहता ही है, साथ ही सामने आयु वर्ग के आदमी रहे हों, दादाजी, अंकल, चाचाजी और भाई कहने योग्य हों, ऐसे संबोधन के प्रभाव में व्यक्ति पर अपना–पराया का प्रभाव, ऐसे बच्चों के बीच में बाधा नहीं डालता, निष्प्रभावी हो जाता है। दूसरी जो स्थिति बताई गई उसमें परस्पर आगन्तुकता युवा, प्रौढ और वृद्ध की हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में यह देखने को मिलता हैं कि अपने–पराए के आधार पर ही संबोधन की स्वागत कराने के बीच में अवरोध पैदा कर देता है इसलिए कुछ लोग स्वागत कर पाते हैं, कुछ लोग आंशिक रूप में स्वागत करते हैं, तो कुछ लोग बिल्कुल भी स्वागत नहीं करते। इन तीनों स्थितियों को इस प्रकार परंपरा के भ्रमवश, परंपरा से आई हुई मान्यताओं के साथ अपना पराया होता ही है। जैसे, हिन्दू धर्म, सिक्ख धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म, पारसी धर्म, यूनानी धर्म, हरिजन धर्म, आदिवासी धर्म आदि और इसी प्रकार बहुत से धर्मों को गिनाया गया है। बहुत सारे धर्मों के आधार पर समुदाय चेतना देखने को मिलती है। किसी एक समुदाय के आधार पर, मान्यता भले ही रूढ़ि के रूप में क्यों न हो, ऐसा होने के बाद स्वाभाविक रूप में उनके लिए बाकी सभी पराए हो ही जाते हैं। इस प्रकार अपने–पराए का चक्कर सभी व्यक्तियों के साथ प्रकारान्तर से चला है अथवा सर्वाधिक व्यक्तियों के साथ यह चक्कर लगा हुआ है। समाज मानव समाज ही होता है। "मानवत्व" मानव चेतना सम्पन्न परंपरा ही धर्म और राज्य का आधार होता है। समाज परंपरा में व्यवस्था होती है। समाज अखण्ड होता है। समाज समुदाय नहीं होता है। समुदाय समाज (अखण्ड) नहीं होता। सामुदायिक व्यवस्था सार्वभौम नहीं होते, इसकी गवाही मानव को मिल चुकी है। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 178–180)**

- अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का मूल सूत्र एक ही हैं यह है समाधान। समाधान=सुख। समाधान=व्यवस्था। **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन क्रिया– ये समाधान है। फलस्वरूप सुखी होना पाया जाता है। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 180)**
- अंडज परंपरा ही क्रम में पिंडज परंपरा में विकसित होकर अथवा समृद्ध होकर जीव शरीर, मानव शरीर रचना संपन्न होता हुआ वर्तमान में देखने को मिल रहा है। पहले से ही जीवन और शरीर के **संबंध** को समझा दिये हैं। मानव परंपरा में शरीर का पोषण–संरक्षण एक कार्य गति हैं, जिसके लिए आहार एक अनिवार्य तत्व हैं। जबकि जीवन के लिए समाधान अथवा सर्वतोमुखी समाधान, प्रामाणिकता सह–अस्तित्व ही जागृति का प्रमाण है। जीवन जागृति के क्रम में हैं। शरीर पोषण और संरक्षण क्रम को, जीवन ही स्वीकारा रहता हैं। जीवन ही भ्रमवश पोषण–संरक्षण को

अपना सम्पूर्ण कार्य मान लेता है। शरीर को जीवंतता प्रदान करने के आधार पर शरीर को ही जीवन समझने लगता है; यही मुख्य रूप में फँसने, भ्रमित होने का मुद्दा है। (**अध्याय:9–1, पृष्ठ नंबर:** 190)

- धीरता:– यह न्याय के प्रति निष्ठा, दृढ़ता और विश्वास के रूप में दिखाई पड़ता है। यह सब आचरण में प्रमाणित होते हैं। न्याय का मूल स्वरूप जो मानव में दिखाई पड़ता है, यह **संबंधों** की पहचान और मूल्यों का निर्वाह है। **संबंध** परस्परता में रहता ही है, उसे पहचानना जागृति हैं। निर्वाह करना निष्ठा है। मूल्यांकन करना व्यवस्था सहज गति है। (**अध्याय:9–1, पृष्ठ नंबर:** 196)
- उदारता:– यह जागृत सहज रूप में हैं। अविकसित के विकास में, **संबंधों** को निर्वाह करने में, श्रेष्ठता को सम्मान करने में, परिवार; ग्राम परिवार; विश्व परिवार की उपयोगिता–सदुपयोगिता विधि से तन–मन –धन रूपी अर्थ को सदुपयोग सुरक्षा करते हैं। इस प्रकार धीरता, वीरता, उदारता मानवीय स्वभाव के रूप में देखने को मिलता है। (**अध्याय:9–1, पृष्ठ नंबर:** 196)
- मानवीयता पूर्ण व्यवहार, व्यवस्था, संविधान, शिक्षा–संस्कार के साथ–साथ आहार, विहार, व्यवहार, व्यक्तित्व और प्रतिभा में संतुलन को प्रमाणित करने के लिए अति आवश्यक है। व्यवहार, मानवीय आचरण के रूप में, व्यवस्था में भागीदार होने के रूप में स्पष्ट व नियंत्रित, संतुलित हो जाता है। व्यवस्था में भागीदारी, व्यवहार में **संबंधों** व मूल्यों को निर्वाह करना, व्यवस्था के लिए पूरक होता है। व्यवस्था में भागीदारी प्रधानतः न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य और विनिमय–कोष कार्यों में भागीदारी हैं। इसके अतिरिक्त भी प्रत्येक मानव आहार–विहार करता ही है। (**अध्याय:9–1, पृष्ठ नंबर:** 200)
- अस्तित्व सहज रूप में हमारे सम्मुख मानवेत्तर प्रकृति के साथ क्रमिक **संबंध** है। जैसे– पदार्थावस्था का प्राणावस्था के साथ क्रमिक **संबंध** है। प्राणावस्था से पदार्थावस्था पूरक व क्रमिक **संबंध** हैं। इसको ऐसा भी कहा जा सकता हैं कि पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था, जीवावस्था से ज्ञानावस्था की रचनाओं में क्रमिक **संबंध** है। क्योंकि पदार्थावस्था की वस्तुएँ रासायनिक द्रव्य वैभव पूर्वक, प्राणावस्था की संपूर्ण रचनाएँ– अन्न वनस्पतियों के रूप में, जीवावस्था और ज्ञानावस्था की शरीर रचना के रूप में संपन्न हुई, यह स्पष्ट लगता है। इस प्रकार प्राणावस्था के रासायनिक द्रव्य ही वनस्पति, जीव और मानव शरीर रूप में हैं। प्राण कोषा रूपी द्रव्य के रूप में ये सब समान हैं। यह बात स्पष्ट होती हैं। इसके आधार पर सोचने पर मांसाहार, शाकाहार में दिखने में कोई अंतर नहीं हैं। संभवतः यही वैज्ञानिक विश्लेषणों का नजरिया भी हैं। जबकि स्रोत व प्रयोजन के अर्थ में देखने पर स्पष्ट होता है कि इसका विनियोजन विधि में ही भिन्नता है। विनियोजन का तात्पर्य है– विहित विधि से नियोजन। अन्न–वनस्पतियों का विहित विधि से नियोजन का तात्पर्य है, पदार्थावस्था के लिए पूरक होना। पदार्थावस्था, प्राणावस्था के लिए पूरक होना जबकि जीवावस्था और ज्ञानावस्था में शरीर रचना का विनियोजन, जीवन के लिए पूरक होना है और जीवन का शरीर के लिए पूरक होना जीवन्तता सहज विधि से स्पष्ट हैं। यही मुख्य तत्व है। शरीर रचनाओं और वनस्पति रचनाओं में मुख्य विनियोजन विधि भिन्न हैं। यह भिन्नता अवस्थाओं को परिभाषित करने,

व्याख्यायित करने, वर्तमान में प्रकाशित करने के आधार पर स्पष्ट हुई हैं। अस्तित्व का अपने में, चारों अवस्थाओं में प्रमाणित होना, इस धरती पर प्रमाणित हो चुका है। इन चारों अवस्थाओं में स्पष्ट है। दृष्टा, दृश्य, दर्शन का प्रमाणित होना एक आवश्यकीय तत्व रहा है। इसी क्रम में जीवावस्था के अनंतर ज्ञानावस्था की अभिव्यक्ति सहज रूप में हुई है। इन तमाम अभिव्यक्तियों में अस्तित्व सहज नियम, प्रक्रिया–वस्तु द्रव्य ही हैं। मानव का जब से जंगल, पत्थर, धातु, जलवायु और मिट्टी पर हस्तक्षेप होता आया यह अपनी बहादुरी की दुहाई देते रहा। इस बीच मानव के साथ मानव का पाला पड़ा। फलस्वरूप विविध समुदायों के रूप में बँटा हुआ आदमी आज की तिथि में व्यक्त हैं। इस क्रम में अर्थात् इस भ्रमित क्रम में मानव मांसाहार में लटका हुआ है। मांसाहार में सबसे स्वादिष्ट मानव शरीर को होना बताया करते हैं। इस प्रकार मानव भी मांसाहार की इकाई होने के पश्चात् मानव को मांसाहार के रूप में स्वीकार लिया। यदि ऐसे ही प्रत्येक मानव में मानसिकता बन जाये, उसके लिए भी मानव को ही प्रयत्न करना पड़ेगा। मानव, मानव को जब मांसाहार का आधार बना देगा तब मांसाहार करने वाला अलग से कैसा पहचाना जाय, यह प्रश्न उभर आता है? उस स्थिति में जो सबसे बलवान होगा वह अधिक लोगों को खाएगा। अब बलवान होने की होड़ चली। यह मल्ल युद्ध वाली बात, शिलायुग तक भी तैयार हो चुकी थी। अभी की स्थिति में तकनीकी बल ज्यादा ताकतवर हुई। भीमकाय व्यक्ति को एक दुबला पतला आदमी गोली मारे, भीमकाय व्यक्ति मर जाएगा। इस प्रकार बल के आधार पर मानव को मांसाहार का आधार बनाना संभव नहीं हो पाता। इसी के साथ बलवान वाली बात, दुष्टता के साथ, पशुता के साथ, परेशानी का घर होना सिद्ध हो गया और परेशानियों को मानव वरता नहीं हैं। इस स्थिति में पुनः विचार करने के लिए आवश्यकता का अनुभव करता है। जब बल के आधार पर मांसाहार विधि मानव कुल के लिए व्यवस्था का आधार नहीं हुई हैं, तब और कौन सा आधार है कि मांसाहार विधि को वैध मानें। केवल शाकाहारी पद्धति भी व्यवस्था का आधार नहीं हो पाया तब मानव संचेतना ही एकमात्र शरण है जो मानवत्व है। **(अध्याय:9–2, पृष्ठ नंबर: 210–211)**

- विभिन्न आहार पेय पद्धति:– मानव इतिहास में, समुदायों का अध्ययन करने पर आहार मानसिकता के साथ पेय मानसिकता भी मुद्दा रहा है। इसको क्यूं ना कहें कि मांसाहार–मद्यपान, शाकाहार–दुग्धपान है। आहार और पेय का नजदीक का संबंध रहा हैं। मानव के आहार, खान पान के साधन पर ही, देवी–देवताओं को समर्पित वस्तुओं से तृप्त होने की बात सोचे थे। इस क्रम में देवी–देवताओं के प्रसन्न होने की बात को स्वीकारा जाता है, उसी प्रकार रुष्ट होना भी स्वीकारा जाता है। इन्हीं दो विधियों से देवी–देवताओं की महिमा को गाया जाता है। यह आज भी प्रचलित है। इसका तात्पर्य है कि जो आदर्शवादी गतिविधियों में अपनी आजीविका को वैध मानते हैं वह सब इसी प्रकार की महिमा को बताया करते हैं। **(अध्याय:9–2, पृष्ठ नंबर: 219)**
- अस्तित्व स्वयं सह–अस्तित्व है, इस आधार पर जीवन और शरीर में सह–अस्तित्व संबंध वर्तमान रहता ही है। । **(अध्याय: 9–3, पृष्ठ नंबर: 230)**

- व्यवस्था अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व के रूप में है, जो चारों अवस्थाओं में प्रमाणित है:–मानव भी वर्तमान में ही, दृश्य को देखता है। देखने का मतलब समझना है, समझना समझदारी का प्रमाण प्रस्तुत करना ही जागृति हैं। समझना; जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है। यही दृष्टा पद का प्रमाण हैं। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि मानव अस्तित्व में अविभाज्य दृष्टा है। **संबंधों** के आधार पर ही अस्तित्व सहज व्यवस्था समझ में आता है। अस्तित्व सहज व्यवस्था सह–अस्तित्व ही हैं। इसलिए प्रत्येक एक की व्यवस्था होते हुए, समग्र व्यवस्था में भागीदारी सूत्र से सूत्रित रहना पाया जाता हैं इसका प्रमाण है कि चारों अवस्थाएँ, उनमें परस्पर में पूरकता, उदात्तीकरण, विकास, जागृति सहज रूप में दिखाई पड़ता है। मानव ही इसमें जागृति का प्रमाण हैं। परमाणु में विकास का प्रमाण जीवन है। पूरकता का प्रमाण सम्पूर्ण प्राणावस्था है। उदात्तीकरण का प्रमाण सम्पूर्ण प्राणावस्था की रचना हैं तथा साथ ही जीव शरीर एवं ज्ञानावस्था (मनुष्य) शरीर की रचना है। **(अध्याय:9–4, पृष्ठ नंबर: 236)**
- राज्य, धर्म का मूल रूप:– मानव में कल्पनाशीलता, कर्म–स्वतंत्रता का संपूर्ण कर्माभ्यास, व्यवहार अभ्यास की परिणित समाधान चाहना है। इसी विधि से शोध प्रक्रिया सहज संभव हो जाती है। इस प्रकार मानव का समाधान की ओर अपेक्षित रहना सहज है। इसी आधार पर प्रत्येक मानव समाधान को वरता (शोध या अनुसंधान करता) है। इस ढंग से राज्य और धर्म का मूल रूप समझदारी व्यवस्था है। व्यवस्था की अभिव्यक्ति सहज रूप में सर्वतोमुखी समाधान है। समाज रूप में **संबंधों**, मूल्यों को पहचानना तथा मूल्यांकन करने की विधि से समाधानित होना पाया जाता हैं। यही मानव धर्म हैं। यह जागृति का प्रमाण हैं। जागृति स्वयं समाधान और उसकी निरंतरता हैं। जागृति का प्रयोजन अस्तित्व में प्रत्येक एक के प्रति जागृत होने से हैं। जागृति का तात्पर्य जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से है। यह जीवन ज्ञान सहित सह–अस्तित्व में अनुभव है। पदार्थावस्था के रूप, गुण, स्वभाव, धर्म को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना यह पदार्थावस्था के प्रति जागृति हैं। इसी प्रकार प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था में उन–उन के रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के प्रति जागृत होना ही मानव के जागृत होने का प्रमाण हैं। इन प्रमाणों के साथ ही प्रत्येक मानव को वर्तमान में विश्वास होना प्रमाणित होता है। **(अध्याय:9–4, पृष्ठ नंबर: 239)**
- अस्तित्व में चार अवस्थाएँ, वंशानुषंगीयता एवं संस्कारानुषंगीयता:–अस्तित्व सहज रूप में ही सह–अस्तित्व, नित्य **संबंध** स्थिति में ही है क्योंकि पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था– ये संबंधित हैं ही। **संबंध** का तात्पर्य ही हैं, पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना। इसके निर्वाह होने के क्रम में चारों अवस्थाओं में विभिन्न रूपों में विधियाँ प्रभावशील हैं– ऐसा देखने को मिलता है। जैसे– सम्पूर्ण पदार्थावस्था नियम पूर्वक, **संबंधों** को निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है। नियम 'त्व' सहित व्यवस्था हैं, यही संतुलन हैं। यह 'त्व' सहित व्यवस्था सभी अवस्था में ही सार्थक होता हुआ प्रमाणित है। यह प्रमाण है कि पदार्थावस्था ही प्राणावस्था में उदात्तीकृत हुआ वैभव है। उदात्तीकृत होने का तात्पर्य, रासायनिक वैभव के रूप में परिवर्तित होने से है। क्योंकि

पदार्थावस्था की वस्तुएँ स्वयं स्फूर्त विधि से रासायनिक द्रव्यों के रूप में परिवर्तित होती है। फलस्वरूप, प्राणावस्था का वैभव प्रमाणित है। प्राणावस्था का मूल रूप प्राण कोषा एवं उसमें निहित रचना विधि सहित सूत्र और विभिन्न प्रकार की रचनाएँ, बीजानुषंगीय एवं वंशानुषंगीय भेदों में देखने को मिलता है। जीव शरीर एवं मानव शरीर भी प्राण कोशिकाओं से रचित होता है। वे वंशानुषंगीय सूत्रों के आधार पर वैभवित रहते हैं। जीवावस्था और ज्ञानावस्था में जीवन और शरीर संयुक्त साकार रूप हैं, यह परंपरा देखने को मिलती है। इनमें से मानव परंपरा एक है, जीवों की परंपराएँ अनेक हैं। जीव परंपराएँ अनेक वंशों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। और वंशों के रूप में ही प्रमाण भी हैं। जबकि मानव परंपरा में भी अनेक वंशों के रूप में शरीर रचनाएँ देखने को मिलती है। ये सब संस्कारनुषंगी विधि से, एकरूपता को व्यक्त करते हैं, करने के लिए, अवसर संपन्न रहते हैं। **(अध्याय:9–4, पृष्ठ नंबर: 245–246)**

- न्याय:– **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति है। मौलिकता न्याय का स्वरूप सहज रूप में ही **संबंध** मूल्य और मूल्यांकन ही है। यह मानव **संबंध**, नैसर्गिक **सं ंबंध** और उत्पादन **सबंध** के रूप में स्पष्ट होता है। मानव **संबंध** व्यवहार सूत्र का स्वरूप हैं। नैसर्गिक **संबंध** पूरकता सहज सत्यता हैं। उत्पादन **संबंध** उपयोगिता सहज सबंध हैं। इनमें उपयोगिता को प्रमाणित करने के लिए प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन और कला मूल्य की स्थापना और उसके मूल्यांकन के रूप में हैं। आवर्तन विधि संपन्न विनिमय प्रक्रिया पूर्वक व्यवहारिक होना पाया जाता हैं मानव **संबंध** समाज रचना का आधार हैं। परिवार मूलक विधि से समाज रचना निरंतर सहज हैं। मानवत्व ही परिवार **संबंधों** की तृप्ति का सूत्र है। परिवार ही विश्व परिवार के रूप में अखण्ड समाज हैं। परिवार रचना के साथ व्यवस्था की अभिव्यक्ति एक अनिवार्य स्थिति हैं। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति क्रम में न्याय, विनिमय और उत्पादन प्रधान प्रक्रिया हैं। न्याय प्रक्रिया में स्थापित एवं शिष्ट मूल्यों का मूल्यांकन मौलिक हैं। विनिमय प्रकिया में श्रम मूल्यों का मूल्यांकन मौलिक हैं। उत्पादन कार्यों में अथवा उत्पादन विधि में श्रम नियोजन मौलिक हैं। इस प्रकार मौलिकता त्रय पूर्वक सार्वभौमिकता और अक्षुण्णता सहज होता है। इसी अभिव्यक्ति के लिए मानवीय शिक्षा–संस्कार और स्वास्थ्य–संयम आवश्यकीय कार्यक्रम हैं। इसी के आधार पर सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज रचना के लिए, मानव का जागृत होना पाया जाता है। **(अध्याय:9–4, पृष्ठ नंबर: 247–248)**
- न्याय स्वयं मूल्य और मूल्यांकन के रूप में **संबंधों** में समाधान = सुख है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 256)**
- परिवार मूलक विधि से परिवार मानव होने के प्रमाण के रूप में, **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करता हैं, फलस्वरूप समाधान होता है। **(अध्याय:9–5, पृष्ठ नंबर: 257)**
- जागृत मानव, अभिव्यक्ति सहज रूप में, मानव सहज व्यवहार में सफल हो जाता हैं। यह **संबंधों**, मूल्यों, मूल्यांकनों, दायित्वों, कर्तव्यों को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। इसलिए समाधानित होता है। **(अध्याय:9–5, पृष्ठ नंबर: 257)**

- मानव का निरीक्षण करने पर पता लगता है कि परिवार मानव विधि से मानव में आवश्यकताएँ प्रतीत होती हैं। परिवार मानव का तात्पर्य एक से अधिक समझदार मानव परस्पर **संबंध** को पूरक विधि से पहचानने के फलस्वरूप आवश्यकताएँ अपने आप प्रतीत होती हैं। प्रतीत का तात्पर्य – प्रत्येक रूप में प्रमाणित होने का प्रयास उदय हैं। इसे प्रत्येक दो या दो अधिक मानव परस्परता में पूरकता की अपेक्षा करता हो, विश्वास करता हो ऐसी स्थिति में ही आवश्यकताएँ समझ में आती हैं। यथा जानने, मानने में आता हैं, फलस्वरूप प्रयासोदय होना पाया जाता हैं। प्रयासों की प्रक्रिया रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर विशेषकर वन, खनिज पर श्रम नियोजन होना, फलस्वरूप आवश्यकता के रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य परिवर्तित होना पाया जाता हैं। **(अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 301)**
- उत्पादन और संतुलन सहज वैभव का मूल सूत्र विकल्प के रूप में होना समझ में आता है कि:–
    1. भय और प्रलोभन के स्थान पर मूल्यों की पहचान, निर्वाह और मूल्यांकन करने का दायित्व।
    2. लाभोन्माद के स्थान पर विकल्प के रूप में आवर्तनशीलता की समझ और प्रक्रिया।
    3. स्वयं व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी।
    4. श्रम मूल्यों का मूल्यांकन, स्वयं का, दूसरों का मूल्यांकन।
    5. श्रम विनिमय।
    6. हर मानव सहज रूप में अक्षय बल, अक्षय शक्ति संपन्न है। श्रम शक्ति ही निपुणता, कुशलता के रूप में मूल पूंजी है। यह पूंजी निवेश, पूंजीवाद और साम्यवाद का विकल्प है।
    7. संग्रह के स्थान पर समृद्धि।
    8. मानव व नैसर्गिक **संबंध**, हर परिवार मानव का उत्पादन में भागीदारी।
    9. हर परिवार में व्यवहार व उद्योग, परिवार व्यवस्था में भागीदारी। **(अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 305–306)**
- ...ऊपर कही गई तीनों दृष्टियाँ (तुलन) बिना सही समझदारी के भी अधिकांश व्यक्तियों में क्रियाशील रहती हैं। ऐसी तीनों दृष्टियाँ जीवों में भी किसी अंश में क्रियाशील होना, देखने को मिलती हैं। मौलिक रूप में जागृत मानव में कार्य करने वाली क्रियाशील दृष्टियाँ है, वे दृष्टियाँ है न्याय–अन्याय, धर्म–अधर्म और सत्य–असत्य। मानव परपंरा में सहज रूप में जागृति और इनकी निरंतरता ही जागृति का मतलब है। **संबंधों** को पहचानना, मूल्यों को निर्वाह करना तथा मूल्यांकन क्रिया व उभय तृप्ति का होना अपने रूप में न्याय है। इस क्रम में न्याय सबके लिए वांछित रहते हुए परम्परागत विधि से सर्व सुलभ होने की स्थिति तथा प्रमाण, किसी परंपरा में देखने को नहीं मिलता हैं क्योंकि न्याय संहिता व न्यायालयों में फैसला करते हैं, न्याय नहीं। यह स्वाभाविक रूप में मानववादी चिंतन क्रम में दृष्टिगोचर होता हैं। **(अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 308)**

- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज संभावना के लिए, यही सर्वेक्षण आधार हैं। मानव में, मानवीयतापूर्ण आचरण सहज पहचान इस प्रकार से देखा गया हैं – जो स्वधन, स्वनारी। स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य–व्यवहार करता हैं। **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन कार्य करता हैं, उभय तृप्ति सहज प्रमाण होता हैं। तन, मन, धन रूपी अर्थ को सदुपयोग, सुरक्षा करता हैं। यही मानवीयता पूर्ण आचरण का स्वरूप हैं। (**अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 310**)
- स्वनारी/ स्वपुरुष से स्पष्ट है कि विवाह पूर्वक प्राप्त दाम्पत्य **संबंध**:– यह सब व्यवस्था के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को प्रमाणित होने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने के क्रम में विवाह **संबंध** संयत होता हैं। दाम्पत्य **संबंध** में ही यौवन यौन **संबंध** संयत, सुरक्षित होता हैं। जबकि भोग, बहुभोग, अतिभोग क्रम में लिप्त हर मानव असंयत होना पाया गया। इसकी अंतिम परिणित क्रूरता ही निकली अथवा दीनता हुई। अभी तक इतिहास के अनुसार बहुयौन, यौन भोग के लिए मानव का राक्षस अथवा पशु जैसे वर्तना आवश्यक हैं। यह इतिहास में अथवा वर्तमान में भी देखा जाता है। (**अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 311**)
- परस्पर पूरकता क्रम ही आवर्तनशीलता है, मानव जागृति पूर्वक सम्पूर्णता सहज प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रमों को पहचानने से अपने आप आवर्तनशील हो जाता हैं। जैसे धरती का स्ंारक्षण, क्षरण शीलता से मुक्ति दिलाना, उर्वरक से समृद्ध बनाये रखना। यह स्वाभाविक रूप में, जो कुछ भी सुरक्षित धरती पर जितनी हरियाली उत्पन्न होती हैं, सबको उस धरती पर समा लेने पर उस धरती की उर्वरकता संतुलित रहते हुए किसी न किसी मात्रा में समृद्ध होती हुई देखने को मिलती हैं। जहाँ तक अनाज को पाते हैं, वह भी अंततोगत्वा खाद बनकर धरती में समा जाता है। यह स्वयं आवर्तनशीलता का प्रमाण हैं। यह संबंध श्रम नियोजन विधि से संपन्न होता है। श्रम नियोजन पूर्वक ही मानव धरती की क्षरणशीलता को रोक पाता हैं। इसके फलस्वरूप धरती में फसल बोने की संभावना और फसल होने की संभावना तथा धरती की उर्वरकता को बनाए रखने में संतुलन की संभावना, यही आवर्तनशीलता का फलन हैं। धरती के संरक्षण से स्वाभाविक रूप में धरती में जो पानी बरसता हैं, वह अधिकाधिक धरती में समाने का अवसर एवम् परिस्थितियाँ निर्मित हो गई। इससे धरती में समाया हुआ जल धरती के लिए सदा ही उपयोगी होना पाया गया। (**अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 323**)

- उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो गया कि जीने की कला, विचार शैली और अनुभव बल के आधार पर ही, मानव परंपरा अपनी जागृति का साक्ष्य प्रस्तुत कर पाती हैं। भविष्य के प्रति आश्वस्त एवं वर्तमान में प्रमाण रूप में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में वैभवित हो पाता है। यही मानव का लक्ष्य हैं। इस लक्ष्य के संदर्भ में ही आवश्यकता, उत्पादन के लिए उद्योग तथा संबंध और संतुलन को बनाये रखना सुलभ हो जाता हैं। मुख्य बात यह है कि –

    1. व्यवस्था में मानव संयत होता हैं, जो जागृति का प्रमाण है।
    2. परिवार मानव की आवश्यकता संयत होती हैं, यह जागृति का प्रमाण हैं।
    3. प्रत्येक परिवार आवश्यकता से अधिक उत्पादन करता हैं, यह जागृति का प्रमाण है।
    4. प्रत्येक परिवार अथवा प्रत्येक अवस्था में परिवार समृद्धि का अनुभव करता हैं, यह जागृति का प्रमाण है।

  इस तथ्य को ऐसा समझा जा सकता हैं कि जब परिवार अपनी स्वायत्तता की परिभाषा में वर्तमान होता हैं, तब यह परस्पर **संबंधों** को पहचानता हुआ, मूल्यों को निर्वाह करता हुआ और मूल्यांकन करता हुआ देखने को मिलता हैं। साथ ही परिवार में अपनाया हुआ उत्पादन कार्य में भागीदार होता हुआ देखने को मिलता है। इस क्रम में आवश्यकता से अधिक उत्पादन, प्रमाणित होता हैं। इसके मूल में यह भी तथ्य प्रभावशील रहता हैं कि जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में प्रत्येक मानव वैभवित होने के कारण, जीवन शक्तियाँ अक्षय होने के कारण आवश्यकताएँ सीमित होने के कारण आवश्यकता से अधिक उत्पादन होता है। फलत: समृद्धि का अनुभव होना संभव है। **(अध्याय:9–10, पृष्ठ नंबर: 328)**

- मानव जड़–चैतन्य–प्रकृति का संयुक्त साकार रूप है। मानव शरीर रचना की परंपरा शरीर संयोग से संपन्न होना ज्ञातव्य है। जीवन अपनी जागृति को प्रमाणित करने की अनिवार्यता वश, मानव शरीर को संचालित करता है जबकि जीवों के शरीर को भी जीवन ही संचालित करता है। इसमें उद्देश्य वंशानुषंगीय कार्यकलापों को वर्तमान में प्रमाणित करता रहता है। यही मानव और जीवों के उद्देश्य में भेद है। मानव परपंरा में जीवन प्रमाणित होता है, जबकि जीवावस्था में शरीर सहज क्रियाकलाप प्रमाणित होता है। जीवन का उद्देश्य जागृति है। जागृति सहज व्याख्या अस्तित्व में जागृति सहज ज्ञान, दर्शन और आचरण ही है। मानव जब कभी भी जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करेगा, तब इन्हीं तीन बिंदुओं में अपने को व्याख्यायित करेगा। दर्शन के अर्थ में दृष्टा और दृश्य दोनों समाहित है। दृष्टा का अर्थ समझने वाला है और समझा हुआ है। मानव ही दृष्टा है। दृष्टा रूपी मानव में छः (6) दृष्टियाँ होती हैं। जिसमें से न्याय, धर्म, सत्य से नियंत्रित प्रिय, हित और लाभ (समृद्धि) दृष्टियाँ जागृत मानव में प्रमाणित होती है। भ्रमित मानव में केवल प्रिय, हित और लाभ दृष्टियाँ प्रकाशित होती है। जीवन जागृति के अर्थ में ज्ञान यही है –जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान। जीवन–ज्ञान और अस्तित्व दर्शन के फलस्वरूप, जागृति सार्वभौम व्यवस्था विधि से आचरण, कार्य, व्यवहार के रूप में प्रमाणित हो पाता है। इसी के साथ, जागृतिपूर्वक जो कुछ भी उत्पादन कार्य करते हैं और करने के लिए प्रयत्न करते हैं, वह सब सह–अस्तित्व सहज मानसिकता सहित ही संपन्न होना देखने को मिलता है। फलस्वरूप मानव सह–अस्तित्व सहज उत्पादन कार्यकलापों को योजनापूर्वक अपनाता रहेगा। इसलिए नैसर्गिक **संबंधों** का निर्वाह, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन सहज हो पाएगा। मानव सह–अस्तित्व अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में ही प्रमाणित हो पाता हैं। इसलिए मानव **संबंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह व मूल्यांकन सहज ही संपन्न होगा। इन दोनों स्थितियों के फलस्वरूप प्राकृतिक ऐश्वर्य पर जीवन और शरीर की संयुक्त विधि से नियोजित श्रम वस्तु में स्थापित उपयोगिता व कला मूल्य के आधार पर मूल्यांकन होना सहज हो जाता हैं, यही मूलतः प्रतीक का मुद्रा का विकल्प है। **(अध्याय:9–11, पृष्ठ नंबर: 348–349)**

****

संदर्भ: व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- सर्वप्रथम मानव की परस्परता में मानवकुल अनेक रंग, नस्ल के रूप में पहचाना जाता है। ऐसी परस्परताएँ जीव संसार रूपी अस्तित्व में रहती ही है। परस्परताएँ सहअस्तित्व सहज है। सहअस्तित्व में हम परस्परता को पाते है इसी क्रम मे मानव में, से, के लिए अखण्ड समाज में परस्परताएँ उपलब्ध है ही। इन परस्परताओं को **संबंध** के रूप में पहचाना जाता है। सबसे विशाल **संबंध** मित्र के रूप में, भाई के रूप में होना पाया जाता है। तर्कसंवाद का भूमि बनता है मित्र, भाई **संबंधो** में हर विधाओ में समाधान को पहचानना महत्वपूर्ण कार्य है। समाधानों के अर्थ में संवाद होना स्वाभाविक है। ऐसे संवाद मानव लक्ष्य के साथ होने वाली दिशा के अर्थ में होना पाया जाता है। सम्पूर्ण संवाद लक्ष्य को पहचानने के क्रम में सार्थक होता है। लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा निर्धारित होने पर संवाद सार्थक होता है। फल परिणाम के रूप में लक्ष्यपूर्ति, उसकी निरन्तरता का होना संवाद सहित किया गया प्रवृत्ति, निष्कर्ष और प्रयासों के फलन में ही हो पाता है। ये सभी प्रयास और फलन बहुआयामी विधि से मानव कुल में ही सार्थक हो पाता है।

  सार्थकता के लिए व्यवहार एक मुद्दा है। व्यवहार में **संबंधो** को पहचानना होता ही है। इन **संबंधो** को पहचानने के रूप में कम से कम विश्वास मूल्य प्रमाणित होना एक स्वाभाविक उपलब्धि है, प्रक्रिया है। विश्वास होने के आधार पर आरंभ होते हुए प्रयोजनो को, लक्ष्यो को और प्रक्रियाओं को पहचानने के अर्थ में हर संवाद सार्थक होता है। मानव **संबंधों** में ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह सार्थक होते है। ये सब अभ्युदय के अर्थ में ही प्रयोजनशील होना पाया जाता है। अभ्युदय स्वयं में सर्वोतोमुखी समाधान है। मानव ही इसका धारक वाहक है। **संबंधों** में ही इसका प्रमाण होना शाश्वत सत्य है। इसी आधार पर मानव परिवार से अखंड समाज तक समाधान सूत्र को फैला पाते है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का प्राण तत्व है।

  (अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 39–40)

- मानव व्यवहार और पूरकता :

  जन चर्चा के मुद्दे में पूरकता एक मुद्दा है। पूरकता के आधार पर ही जनचर्चा द्वारा, संवाद द्वारा, स्पष्टीकरण द्वारा समाधान के छोर तक पहुँचते है। समाधान मानव परम्परा के लिए स्वीकृत आवश्यकता, प्रधान आवश्यकता अथवा परम आवश्यकता है। समाधान अपने में क्यों, कैसे का सहज उत्तर है। हर मुद्दे के साथ क्यो, कैसे, कितना का प्रश्न होता ही है। जितने भी क्यों की बात आती है या प्रश्न उठता है उसका उत्तर का आधार मूल कारण ही होता है। कैसे का उत्तर हम पाने के लिए दौड़ते हैं। प्रक्रिया, प्रणाली पद्धति के सूत्रों के आधार पर प्रक्रियाएं स्पष्ट हो जाती है। कितना का उत्तर, फल परिणाम और आवश्यकता की तृप्ति के अर्थ में स्पष्ट हो जाता है। इसकी स्पष्ट चर्चा करने के योग्य इकाई केवल मानव ही है। मानव के साथ व्यवहार जुड़ा ही रहता है। व्यवहार सदा–सदा से मानव

के साथ ध्रुवीकृत होता आया है। चाहे नकारात्मक हो चाहे सकारात्मक हो मानव अपनी परस्परता में व्यवहार करना सर्वस्वीकृत हो चुका है। मानव परम्परा में व्यवहार परस्परता में मूल्यों का निर्वाह करने के आधार पर ही प्रमाणित होता है। मूल्यों का निर्वाह **संबंधो** के आधार पर होना सर्वमानव को स्वीकृत है। मानव मानव के **संबंधों** को पहचानने की प्रवृति शिशु काल से ही निर्धारित है। यह शब्दों के रूप में सबको स्पष्ट है। मूल्यों के रूप में पहचान और निरन्तरता की आवश्यकता बनती है। **सम्बन्ध**, उसकी पहचान और निरन्तरता ही विश्वास है। इस परिभाषा के आधार पर सभी **सम्बन्धो** के साथ संवाद अपेक्षित रहता है। हर संवाद की सार्थकता में समाधान है। संवाद की सार्थकता क्यों, कैसे, कितना का उत्तर पाने में ही है। (**अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 41–42**)

- **सम्बन्ध** की परिभाषा ही है " पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना" ऐसे **सम्बन्ध** का स्वरूप निरन्तरता में ही वैभव और प्रयोजन प्रमाणित होना पाया जाता है। प्रयोजन मूलतः सहअस्तित्व में नित्य प्रमाण ही है। यही जागृति, वर्तमान में विश्वास (परस्परता में भय, शंकामुक्ति) और समाधान होना स्वाभाविक है। इन तीनो विधाओं के आधार पर अथवा इन तीनों विधाओं में प्रमाण होने के उपरान्त समृद्ध होना एक अवश्यकता, सम्भावना और इस हेतु प्रयास होना स्वाभाविक स्वयं स्फूर्त है। इसका तात्पर्य यही हुआ कि हम मानव समझदारी पूर्वक ही समाधानित होते हैं और वर्तमान में विश्वास अर्थात **सम्बन्ध** की पहचान और उसकी निरन्तरता बनाए रखने में निष्ठा ईमानदारी होने का प्रमाण है। पहचान और उसकी निरन्तरता स्वयं जिम्मेदारी के रूप में स्पष्ट होती है। इस प्रकार, समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक ही परिवार व्यवस्था में प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होना और समृद्धि का साक्ष्य स्पष्ट होना पाया जाता है। इसके लिए परिवार में चर्चा, परिवार के कार्य–व्यवहार के लिए चर्चा, संवाद और परिवार लक्ष्य के लिए संवाद मानव परंपरा में सम्पन्न होना एक प्रतिष्ठा है। (**अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 42**)

- संवाद मानव परम्परा में एक सहज कार्य है। इसमें कहीं न कहीं सर्वशुभ की कामना समायी रहती है। सर्व शुभ घटनाएँ घटित होने के उपरांत मानव परम्परा स्वयं शुभ परम्परा के रूप में प्रमाणित होने की सम्भावना बनी ही है। मानव में चाहत भी बनी है। चाहत और सम्भावना का संयोग योग बिन्दु में ही शुभ परम्परा का उद्गम है। इसका प्रमाण रूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा–संस्कार में मानव की पहचान, मानव की पहचान का मतलब मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान और मानवीयता पूर्ण आचरण को बोधगम्य कराना ही है। इस क्रम में मूल सूत्र "त्व सहित व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी" ही है। मानवत्व अपने में जागृति के रूप में सुस्पष्ट है। जागृति अपने में समझदारी का स्वरूप होना स्पष्ट हो चुकी है। समझदारी अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व होना स्पष्ट हुआ। इसी क्रम में अर्थात जागृति क्रम में मानव परम्परा का वैभव, मानवत्व सहित महिमा, परिवार में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण, विश्व परिवार व्यवस्था तक सोपानीय क्रम में प्रमाणित होना है। इसी विधि से मानव **संबंध** और प्राकृतिक **संबंध** संतुलन होना पाया जाता है। नियति विरोधी, प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी गति विधियो से मुक्ति पाने का उपाय भी यही है। हर मानव विरोधो से मुक्ति पाना चाहता ही है। इसी तथ्यवश इसकी संभावना सुस्पष्ट होती है। प्रमाणित होना मानव परम्परा को ही है। **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 52–53)**
- समाधान के लिए समझदारी का होना अनिवार्य है। समझदारी के प्रयोग से ही हम समाधान पाते है। समाधान के उपरान्त ही परिवारगत आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने का तौर तरीका सुलभ होता है, सम्भावना पहले से ही रहती है। सम्भावनाओं को पहचानना समझदारी पूर्वक अति सुलभ हो जाता है समाधान, समृद्धि के फलस्वरूप उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता विधि से अभयता अपने आप में उद्गमीत होती है यही वर्तमान में विश्वास होने का प्रमाण है। ऐसी प्रतिष्ठा का प्रभाव सहअस्तित्व में प्रमाणित होना सुलभ होता है यही जागृति है। इससे स्पष्ट हो गया कि हम मानव जागृति पूर्वक ही सम्पूर्ण वस्तुओं की उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता को प्रमाणित करते हैं जिससे तुष्टि बिन्दु अर्थात् समाधान बिन्दु तक पहुंचना सुलभ हो जाता है। इसी सम्पदा के साथ हम **सम्बन्ध** मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति सम्पन्न हो जाते है। यह तृप्ति की निरन्तरता का प्रमाण है। तृप्ति समाधान और प्रामाणिकता प्रमाण एक दूसरे के पूरक विधि से क्रियान्वयन होते ही है। यही जागृत मानव परम्परा की पहचान है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 66)**

- मानव में परस्परताएँ में भाई–बहन, पुत्र–पुत्री, माता–पिता, पति–पत्नि, चाचा–चाची, मामा–मामी आदि से सम्बोधन किये जाते है। ये परिवार सम्बोधन कहलाते है। इन सम्बोधन के साथ प्रयोजनो को (सम्बंध का अर्थ रूपी प्रयोजनो को) पहचानते हुए निर्वाह करने के क्रम में हम जागृत मानव कहलाते है। भ्रमित मानव भी सम्बोधनो को प्रयोग करता ही है। सम्पूर्ण प्रयोजन सम्बन्धो की पहचान और निर्वाह जैसे गुरू के साथ श्रद्धा–विश्वास, माता–पिता के साथ श्रद्धा–विश्वास, भाई–बहन के साथ स्नेह और विश्वास, मित्र के साथ स्नेह–विश्वास, पुत्र पुत्री के साथ वात्सल्य, ममता, विश्वास, इसकी निरन्तरता में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करते है। इन सभी सम्बंधो का निर्वाह करने के साथ दायित्व और कर्तव्य अपने आप स्वीकृत होते है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 82)**
- हर मानव स्वराज्य स्वतंत्रता चाहता ही है। स्वतंत्रता का स्वरूप यही है :–
    - स्वयं में विश्वास करने में स्वतंत्रता
    - श्रेष्ठता का सम्मान करने में स्वतंत्रता
    - प्रतिभा को लोकव्यापीकरण में स्वतंत्रता
    - व्यक्तित्व को प्रमाणित करने की स्वतंत्रता
    - उत्पादन में स्वावलंबी होने की स्वतंत्रता
    - व्यवहार में सामाजिक होने की स्वतंत्रता

  यही छ: विधा में स्वतंत्रता है इसमें निष्णात होने के फलस्वरूप:–

    - मानवीय शिक्षा कार्य में स्वतंत्रता
    - न्याय सुरक्षा कार्य में स्वतंत्रता
    - उत्पादन कार्य में स्वतंत्रता
    - विनिमय कार्य में स्वतंत्रता
    - स्वास्थ्य–संयम कार्य में स्वतंत्रता

  स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होती है। इनमें हमें पारंगत होना है प्रमाणित होना है यही स्वतंत्रता का वैभव है। स्वतंत्रता के साथ स्वराज्य, स्वराज्य के साथ स्वतंत्रता अविभाज्य है। परिवार **संबंध**, मानव **संबंध**, प्राकृतिक **संबंधो** में न्याय और संतुलन प्रमाणित करने में स्वतंत्रता बनी ही रहती है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 91)**

****

संदर्भ: अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण: 2009)

- अनुभव (जागृति) के पश्चात् नैतिकता पूर्वक मानव व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर पाता है, चरित्रपूर्वक व्यवहार करता है और **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्तिपूर्वक जी पाता है । यही सुख, सुन्दर और समाधानपूर्वक जीने की कला का स्वरूप है । (**भूमिका के पश्चात**)
- अनुभवमूलक सभी कार्यकलाप सत्य, समाधान और न्याय के रूप में प्रमाणित होता है । न्याय को हम नैसर्गिक और मानव **संबंधों** के साथ अनुभव किये हैं । इसे हर मानव अनुभव करने योग्य इकाई है, इसकी आवश्यकता सदा–सदा ही बना है । मानव परंपरा में अनुभवमूलक अभिव्यक्ति ही ज्ञानावस्था का सार्थक, आवश्यक, वांछित कार्य होना देखा गया है। इसी आधार पर अनुभवमूलक विचार के रूप में इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करने की आवश्यकता निर्मित हुई । (**अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 14–15**)
- ...ऊपर जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का शब्द प्रयोग किये हैं । इनमें से जानने की वस्तुएँ में से प्रधान वस्तु को सह–अस्तित्व के रूप में बता चुके हैं । अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान है । सह–अस्तित्व का स्वरूप अपने में सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । क्यों और कैसे का उत्तर पा लेना ही जीवन जागृति क्रम सहज प्रवर्तन और जागृतिपूर्वक प्राप्ति है । हर प्रवर्तन में मानव प्राप्ति चाहता ही है । प्राप्ति ही मान्यता का आधार है । अस्तित्व में ही जीवन और जीवन जागृति का होना जानना है । अस्तित्व में ही विकास, रचना, विरचनाओं को जानना होता है । क्योंकि अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही; अस्तित्व में 'जो कुछ' भी है यह 'सब कुछ' को मानव जानना चाहता है । इसे जानना सम्भव है इसको हम देख चुके हैं । मानव और नैसर्गिक परस्परता में **सम्बन्ध** रहता ही है क्योंकि सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी रहता ही है । इसे जानना जागृत मानव के लिये सहज है। इसी के साथ अर्थात् **सम्बन्ध** के साथ मूल्यों को जानना भी जागृत मानव के लिए परम सहज है । मानव ही अस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता है । अस्तित्व में मानव जागृतिपूर्वक ही व्यवस्था, उसकी सार्वभौमता, समाज और उसकी अखण्डता को जानता है । (**अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 16**)
- उत्पादन सुलभता अर्थात् परिवार में जितने भी परिवार मानव रहते हैं उन सबकी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य होना परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में सहज और सुलभ है । इस विधि से हर परिवार समृद्ध होने सहज समीचीनता सुलभ रहता ही है। इसी के साथ श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय प्रणाली सर्वसुलभ होता ही है। इस विधि से लाभ–हानि मुक्त विनिमय सम्पन्न होना सहज है । फलस्वरूप लाभ से होने वाली अहम्ता (अहंकार) और हानि से होने वाली पीड़ा से मुक्त होना स्वाभाविक रहता ही है । समाधान, समृद्धि, शांति और सुख का सूत्र होना और न्याय सुलभता के साथ ही वर्तमान में विश्वास होना देखा गया है । बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक यह प्रणाली मानव कुल में प्रभावी नहीं हुई है। इस स्थिति में भी यह अनुभव किया गया है स्वायत्त विधि

से किया गया उत्पादन कार्य से समृद्धि का और **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि से न्याय का प्रमाण हमें सुलभ हो चुका है । अब रहा विनिमय प्रणाली अभी तक प्रचलित लाभोन्मादी के अंतर्गत ही हम लेन–देन जैसा उत्पादन और विनिमय मुद्रा के आधार पर करते हुए भी समृद्धि का अनुभव किया । इसलिये और कहा जा सकता है कि लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रणाली प्रत्येक परिवार में, से, के लिये शांति कारक सूत्र होना देखा गया। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 39)**

- स्वास्थ्य–संयम जागृति विधि से अर्थात् अनुभव विधि से स्वायत्त होना सहज है । **सम्बन्ध**–मूल्य–मूल्यांकन–उभय तृप्तिकारी मानसिकता स्वयं का प्रमाण है और स्वास्थ्य समाधान, सह–अस्तित्व, वर्तमान में विश्वास, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन–कार्य, न्याय–सुरक्षा में भागीदारी उसकी निरंतरता को बनाये रखने योग्य शरीर को संतुलित किये रहना स्वायत्तता के रूप में हर व्यक्ति में प्रमाणित होना समीचीन है । जीवन जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के लिये शरीर की आवश्यकता और इसका उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनों के सम्बन्ध में हर व्यक्ति जागृत रहना आवश्यक होना है क्योंकि अनुभव की महिमा जागृति ही है । इसी सत्यतावश मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कारपूर्वक ही अथवा सुलभता से ही स्वायत्तता अपने आप संस्कारित होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव होना, परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का धारक–वाहक होना, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही मानव में, से, के लिये परम सौभाग्य स्थिति, गति होना, फलस्वरूप मानव सहज सर्वशुभ, जीवन सहज नित्य शुभ, हर मानव में, से, के लिये प्रमाणित होता है । **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 39–40)**
- स्वायत्त मानव का प्रमाण रूप मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार ही है । इसकी महिमा को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वालंबन है । ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। हर परिवार मानव परस्परता में **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति को पाना देखा गया है । परिवार मानव ही परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार अपनाया गया उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक होते हैं, भागीदारी का निर्वाह करते हैं, फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना देखा गया है । यही समृद्धि, समाधान, न्याय सूत्र होना देखा जाता है । परिवार में समाधान और समृद्धि **सम्बन्धों** के आधार पर पाये गये उभय तृप्ति सहज न्यायपूर्वक व्यवस्था में जीना सहज होता हुआ देखा गया है । इन्हीं सहजता की पुष्टि में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि को प्रमाणित कर देता है । व्यवस्था में जीना ही समाधान का प्रमाण है और वर्तमान में विश्वास है । अतएव स्वायत्त मानव स्वरूप अनुभव मूलक होना देखा गया है । फलस्वरूप परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव के रूप में होना नियति सहज अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) और प्रामाणिकता (अनुभव और पूर्ण जागृति) सहज मानव में सार्थक होना देखा गया है । इसी आधार पर यह "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" लोक मानस के लिये प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है। मानव ही ज्ञानावस्था की इकाई होने के कारण

जागृति और सर्वतोमुखी समाधान को स्वीकारता ही है। यह अनुभव मूलक विधि से ही सर्वसुलभ होता है । ऐसे अनुभव और जागृति विधि से ही इस धरती को सुरक्षित बनाये रखने में मानव की भागीदारी अपेक्षा रूप में स्वीकार हो चुकी है । **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 40–42)**

- साक्षात्कार अपने में प्रयोजनों का निश्चयन सहित तृप्ति के लिये स्रोत रूप में अध्ययन विधि से पहचान लेता है । फलस्वरूप बोधपूर्वक अनुभव में सार्थकता सहित न्याय, धर्म, सत्य सहज स्वीकृति ही संस्कार और अनुभव बोध रूप में जीवन में अविभाज्य क्रिया रूपी बुद्धि में स्थापित हो जाता है । यही अध्ययन पूर्वक होने वाली अद्भुत उपलब्धि है । न्याय सहज साक्षात्कार सह–अस्तित्व सहज **संबंधों** का साक्षात्कार सहित मूल्यों का साक्षात्कार होना पाया जाता है । यही मुख्य बिन्दु है । सह–अस्तित्व सहज **सम्बन्धो** को पहचानने में भ्रम रह जाता है यही बन्धन का प्रमाण है । यही जीवन को शरीर समझने का घटना है । **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 67–68)**
- हर मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व व उसकी निरंतरता विधि से जीना चाहता है । इसके लिये अनुभवमूलक शिक्षा–संस्कार विधि समीचीन है । इसके विपरीत यह मानना कि मानव कभी सुधर नहीं सकता यह सर्वथा भ्रम है। हर मानव **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति पूर्वक परिवार मानव होना चाहता है इसके नित्य सफलता के लिये मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार समीचीन है । यह अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित होना पाया जाता है । मानव **सम्बन्धों** में निरंतर मूल्यों का अनुभव कर सकता है । इसे सफल बनाने का कार्य–विचार–व्यवहार विधि को अनदेखी करते हुए यह मानना कि बैर विहीन परिवार नहीं हो सकता और बैर रहेगा ही, दुख रहेगा ही इन्हें सत्य कहकर अपने भ्रम को दूर–दूर तक फैलाना है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 108–109)**
- जीवन में ही क्रियारत न्याय, धर्म और सत्यात्मक दृष्टियाँ जागृति बन्धन मुक्ति का सूत्र है । न्याय स्वभाविक रूप में परस्पर मानव के **सम्बन्धों** में प्रमाणित होने वाले तथ्य हैं। यह प्रत्येक मानव के अविभाज्य वर्तमान रूपी मूल्य, चरित्र, नैतिकता से प्रमाणित हो जाता है। मानवीयतापूर्ण आचरण में उक्त तीनों आयाम सम्पन्न आचरण देखने को मिलता है। यह आचरण मानवीयता से परिपूर्ण होते तक यह तीनों आयाम एक दूसरे में पूरक होना संभव नहीं है । यह इस तथ्य का द्योतक है कि मानव जागृतिपूर्वक ही मानवीयतापूर्ण आचरण करने में समर्थ होता है । इसको भले प्रकार से परीक्षण, निरीक्षण कर देखा गया है । जागृति का तात्पर्य जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत होने से है । मानवीयतापूर्ण आचरण हर विद्यार्थी में, से, के लिये सुलभ होने से है । सह–अस्तित्व ही परम सत्य होने के कारण अस्तित्व में अनुभव होने के क्रियाकलाप को "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" नाम दिया है । इस तरीके से हम सहज ही इस निष्कर्ष में आ सकते हैं कि हर व्यक्ति के जागृत होने की संभावना समीचीन है। जागृत मानव ही स्वायत्त मानव के रूप में मूल्यांकित होना पाया जाता है । ऐसे स्वायत्त मानव स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होने का सामर्थ्य, प्रक्रिया, ज्ञान, दर्शन विधाओं में पारंगत होता है । ऐसे मानव ही परिवार मानव के रूप में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करता है। मानवीयता पूर्ण आचरण में एक आयाम परिवार में

परस्पर **संबंधों** को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने, मूल्यांकन करने, उभयतृप्ति पाने के रूप में देखा गया है। इसकी अपेक्षा सर्वमानव में होना पाया जाता है। इसके लिये सम्भावना नित्य समीचीन है। यह मूलत: मानव केन्द्रित अध्ययन, चिन्तन के आधार पर ही सफल होता हुआ देखा जाता है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 158–160)**

- दयापूर्ण कार्य–व्यवहार का स्वरूप आवश्यकतानुसार (अपने–पराये के दीवाल विहीन विधि से) अर्थ का सदुपयोग कार्य ही है। यह विशेष कर कर्तव्य और दया सूत्र सम्पन्न परिवार **संबंधों** में जुड़े होते हैं। जागृति सम्पन्न सर्व परिवार, सर्व मानव के साथ दया का प्रभाव क्षेत्र बना रहता है। हर परिवार समृद्ध होने और समाधानित रहने के आधार पर दयापूर्ण कार्य–व्यवहार सार्थक होना देखा गया है। दयापूर्ण कार्य–व्यवहार की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति समग्र व्यवस्था में भागीदारी का ही स्वरूप है। इतना ही नहीं व्यवस्था स्रोत सहित व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इस प्रकार दयापूर्ण कार्य–व्यवहार का कार्य सार्थकता और उसकी अनिवार्यता स्पष्ट होती है। मूलत: यह सब अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के लक्ष्य में प्रतिपादित और प्रवर्तित है। इसका दृष्टफल मानवापेक्षा रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। यह अनुभव मूलक प्रणाली से ही हर मानव में सार्थक होना पाया जाता है। अस्तु, मानवीयतापूर्ण आचरण सह–अस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से और जीवन ज्ञान सहित ही अखण्ड समाज–सार्वभौम व्यवस्था सम्पन्न होना देखा गया है जो स्वयं में स्रोत के रूप में होना पाया जाता है। परिवार मानव पद में ही मानवीयतापूर्ण आचरण सार्थक हो पाता है। परिवार में न्याय सार्थकता प्रमाणित रहता ही है। इसी आधार पर अर्थात् परिवार मानव ही व्यवस्था मानव होने के आधार पर बंधनमुक्ति के प्रमाण स्पष्ट हो जाते है। न्याय सुलभता से स्वाभाविक रूप में भ्रमित आशा, विचार, इच्छा बन्धन से मुक्ति स्वाभाविक है। इससे पता चलता है न्याय प्रदायी योग्यता का विकसित होना ही बन्धन से मुक्ति का गवाही है। शरीर या मोह से ही मानव संपूर्ण प्रकार के अन्याय और कुकर्म करता है। इसे हर मानव, हर स्थिति में आंकलित कर सकता है। परिवार मानव विधि से हर काल, हर परिस्थिति में (मानवीयता पूर्ण परिस्थिति मे) न्याय प्रदायी योग्यता और क्षमता को प्रमाणित करना सहज है। यही प्रधान रूप में मुक्ति का प्रमाण है। ऐसी परिवार मानव के रूप में जीने की सम्पूर्ण चित्रण स्वयं में समाज रचना का चित्रण है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 162–163)**
- न्याय का साक्षात्कार **सम्बंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति के रूप में होने की प्रक्रिया है। यही न्याय प्रदायी क्षमता का द्योतक है। **सम्बन्ध** अपने में (सभी सम्बंध) परस्पर पूरक होना एक शाश्वत् सिद्धांत है। इसकी पुष्टि सह–अस्तित्व, सह–अस्तित्व में पूरकता सर्वमानव वांछित, अपेक्षित, वैभव है।ऐसी क्रियाएँ अर्थात् पूरक क्रियाएँ पुष्टिकारी, संरक्षणकारी, अभ्युदयकारी और जागृतिकारी प्रयोजनों के रूप में दिखाई पड़ती है। पुष्टिकारी कार्यों को शरीर पोषण, विचार पोषण, कार्य पोषण, आचरण पोषण, ज्ञान और दर्शन पोषण के रूप में देखने को मिलता है। यह पोषण विभिन्न **सम्बंधों** में घटित होता हुआ प्रत्येक व्यक्ति अनुभव कर सकता है। जैसा मातृ **सम्बंध** में शरीर–पोषण, शील संरक्षण, पितृ **सम्बन्ध** में शील, आचरण, शरीर संरक्षण, गुरु–शिष्य **संबंध** में शिक्षा, ज्ञान, दर्शन का

पुष्टि और संरक्षण भाई बहन, मित्र, पति–पत्नी, साथी–सहयोगी इन सभी **सम्बन्धों** में सर्वतोमुखी समाधान (अभ्युदय) की अपेक्षाएँ जीवन सहज रूप में ही होना देखा गया है। इतना ही नहीं सभी **संबंधों** में किंवा नैसर्गिक **सम्बंधों** में भी समाधान, पुष्टि, पोषण, संरक्षण की अपेक्षा आवश्यकता, प्रवृत्ति जीवन सहज रूप में आंशिक रूप में भ्रमित अवस्था में भी होता है । इसमें पूर्ण जागृत होने की संभावना समीचीन है । इस शताब्दी के दसवीं दशक में इसकी अपरिहार्यता अपने आप में समीचीन हुई है कि मानव इतिहास के अनुसार गम्य स्थली के रूप में सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता ही है । कार्यरूप में सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी ही कार्य है । आचरण के रूप में मानवीयतापूर्ण आचरण ही एक मात्र सूत्र है । अनुभव के सूत्र में सह–अस्तित्व में अनुभव प्रमाण ही सूत्र है । विश्लेषण के रूप में पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्था ही है। उपलब्धि के रूप में जो मानवापेक्षा सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व अनुभव सहज प्रमाण ही है । जीवन अपेक्षा सहज रूप में तृप्ति, सुख, शांति, संतोष, आनन्द ही है। जागृतिपूर्ण विधि से जीने के क्रम में सह–अस्तित्व ही विशालता है । ये सब बन्धन मुक्ति का साक्ष्य है । जागृतिपूर्ण विधि से किया गया मानव सहज अभिव्यक्तियाँ है । यह सभी तथ्य को विधिवत देखा गया है, समझा गया है, जीया गया है और अंत में मानवीयतापूर्ण आचरण व्यवहार पूर्वक हर व्यक्ति सर्वतोमुखी समाधान का धारक–वाहक हो सकता है यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का सार्थकता है । **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 171–172)**

- मानव ही अनुभव को व्यवहार में प्रमाणित करता है । फलस्वरूप मानव सहज अपेक्षा और जीवन सहज अपेक्षा सर्वसुलभ होना स्वाभाविक है। इसलिये यह सर्व स्वीकृत भी है। सम्पूर्ण प्रयोग सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तु के रूप में प्रमाणित होता है । यह सब व्यवस्था में उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता के अर्थ में प्रमाणित होता है। यही इसकी सार्थकता है । इससे यह भी पता चलता है कि नैतिकता पूर्वक ही मानव व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर पाता है । मानवीयतापूर्ण चरित्र पूर्वक व्यवहार करता है। मूल्य और मूल्यांकन पूर्वक जी पाता है अथवा **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति पूर्वक जी पाता है । यही सुख, सुन्दर, समाधान पूर्वक जीने की कला का स्वरूप है । प्रामाणिकता मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य स्त्रोत है । प्रामाणिकता अस्तित्व में अनुभव सहज अभिव्यक्ति है । सम्पूर्ण अस्तित्व व्यवस्था का ही ताना–बाना होने के कारण मानव भी व्यवस्था में जीने की आवश्यकता बना ही रहा। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 175)**

- स्वराज्य व्यवस्था ही होता है, शासन नहीं होता । व्यवस्था के संदर्भ में पहले से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जा चुका है । परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य वैभव का उदय होना देखा जाता है । हर परिवार में शरीर यात्रा के लिए शरीर पोषण, संरक्षण एवं समाज गति के लिये आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पादित करने का भी कार्यकलाप समाया रहता है । **सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति अथवा परस्पर तृप्ति विधि से व्यवहार और आचरण को प्रकट करना मूलतः परिवार का तात्पर्य है** । ऐसे परिवार में उक्त तीनों प्रकार की आवश्यकताएँ बनी ही रहती है । इसके निर्वाह क्रम में उत्पादन कार्य की आवश्यकता बना ही रहता है । इसका तात्पर्य यह हुआ परिवार गति और समाज गति के लिए उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय तत्व है । अस्तु, **सम्बंध–मूल्य–मूल्यांकन और उभय तृप्ति विधि से परिवार और समाज सूत्र और आवश्यकता से अधिक उत्पादन–कार्य में परिवार के हर सदस्य का उपयोगिता–पूरकता विधि से भागीदारी परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था के सूत्र में प्रमाणित हो पाता है** । इसीलिये प्रत्येक परिवार में, से, के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता, स्वास्थ्य–संयम सुलभता नित्य सार्थक होना सहज है । जिसका स्रोत रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार और स्वास्थ्य–संयम कार्यकलापों के रूप में होना पाया जाता है । इस प्रकार व्यवस्था सार्वभौमता के दिशा में प्रशस्त होता है और अखण्ड समाज का सूत्र भी नित्य प्रभावी होना पाया जाता है । इसमें मूलसूत्र सह–अस्तित्व सूत्र ही है । यह अथ से इति तक अनुभवमूलक विधि से ही समझ में आता है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन होता है फलतः हर व्यक्ति स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होता है । यही अनुभव परंपरा की गरिमा और महिमा है । इसी का फलन मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा परिपूर्ति और तृप्ति व उसकी निरंतरता बन पाती है । (अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 180–181)

- ...जीवन प्रतिष्ठा सदा–सदा पीढ़ी रहते हुए मानव परंपरा में वैभवित होने के लिये ही संयोगित होना देखा गया है क्योंकि–
    1. मानव परंपरा में जागृति और उसका प्रमाण ही तृप्ति का स्त्रोत है । तृप्ति में मानवापेक्षा–जीवनापेक्षा का संतुलन ही है ।
    2. मानव परंपरा में सर्वतोमुखी समाधान का प्रयोजन, कार्य और प्रमाणों की आवश्यकता बना ही रहता है। फलस्वरूप हर व्यक्ति के लिये भागीदारी का स्थान इसमें बना ही रहता है ।
    3. जागृति पूर्णता और प्रामाणिकता सहित ही अखण्ड–समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वमानव में, से, के लिए समीचीन है ।
    4. सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव प्रतिष्ठा प्रमाणित होता है ।
    5. जागृति पूर्वक ही अज्ञात का ज्ञात, अप्राप्ति का प्राप्ति समीचीन रहता है ।
    6. जागृति पूर्वक ही मानव अस्तित्व में अनुभूत होता है अथवा अस्तित्व में अनुभूत होना ही जागृति है ।

उक्त क्रम से बौद्धिक रूप में समाधानित होना स्वभाविक है यह तथ्य स्पष्ट हो गया । यह तथ्य भी जागृति का ही द्योतक है । जागृति के अनन्तर हर व्यक्ति स्वाभाविक रूप में असंग्रह प्रतिष्ठा को समृद्धि पूर्वक, स्नेह प्रतिष्ठा को पूरकता पूर्वक, विद्या प्रतिष्ठा को जीवन विद्या पूर्वक, सरलता प्रतिष्ठा को सह–अस्तित्व दर्शन पूर्वक, अभय प्रतिष्ठा को मानवीयता पूर्ण आचरण पूर्वक वैभवित होने के लिए सूझ–बूझ पूर्वक कार्य करता हुआ देखने को मिलता है । यही मुख्यत: बौद्धिक नियम है। ऐसे बौद्धिक नियम सम्पन्न मानव स्वाभाविक रूप में मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न होता है जो मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य वैभव है। जिसमें से मानवीयतापूर्ण चरित्र जो स्वधन, स्वनारी/पुरुष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार है । जो अखण्ड सामाजिक नियम के रूप में प्रभावित होता है । **संबंधो में मूल्यों को पहचानना, निर्वाह करना, मूल्यांकन करना फलस्वरूप उभय तृप्ति ही मानवीय मूल्य का स्वरूप है ।** तन, मन, धन का सदुपयोग एवं सुरक्षा नैतिकता है। यद्यपि पहले भी सामाजिक नियम और प्राकृतिक नियम का विस्तृत व्याख्या कर चुके हैं । यहाँ जागृति और प्रामाणिकता पूर्वक उक्त तथ्यों को स्मरण में लाना उचित समझा गया है । यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यही है अस्तित्व स्वयं सह–अस्तित्व के रूप में नियमित है फलत: अस्तित्व में व्यवस्था अक्षुण्ण है । मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य है । अतएव नियम त्रय पूर्वक ही मानव मानवापेक्षा और जीवन अपेक्षा को सार्थक बना सकता है । **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 185–187)**

****

संदर्भ: व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(संस्करण : 2009)

- **व्यवहारवादी समाजशास्त्र की परिभाषा**

  परिभाषा – वर्तमान में विश्वास, मौलिक अधिकार पूर्ण विधि से मानव, मानव के साथ पहचाना गया। **संबंध** में मूल्य मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, मूल्य, चरित्र नैतिकतापूर्ण आचरणपूर्वक, व्यवस्था सहज प्रमाण को प्रस्तुत करते हुये समग्र व्यवस्था में भागीदारी व भागीदारी के प्रति सम्मति का सहज स्वरूप में प्रमाणित होना ही व्यवहारवादी समाज है; और शास्त्र का तात्पर्य शिक्षा–संस्कारपूर्वक ग्रहण योग्य सभी उपक्रम और कार्यप्रणाली है। इस प्रकार व्यवहारवादी समाज व शास्त्र का धारक, वाहक मानव ही होना स्पष्ट है।....(**अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 27**)

- मानव परम्परा का संतुलन अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रामाणिक होना सहज है। यह दोनों अविभाज्य रूप में प्रतिष्ठा और गरिमा है। मानव कुल का संतुलन सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक ही सम्पादित होना पाया जाता है क्योंकि सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न परिवार संतुलित रहना पाया गया है। हर परिवार में एक से अधिक व्यक्तियों का होना सर्वविदित है अथवा सम्मिलित कार्य–व्यवहार का होना पाया जाता है। परिवार की परिभाषा भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है यथा परिवार में प्रस्तुत अथवा सम्मिलित सभी व्यक्ति एक दूसरे के साथ **संबंध** को पहचानते हैं एवं मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभय तृप्ति पाते हैं और परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में सभी पूरक होते हैं। इन्हीं आधारों पर समाधान और समृद्धि का प्रमाण प्रस्तुत हो पाता है। मानव का परिभाषा समाहित रहता ही है यथा मनाकार को साकार करने वाला मन: स्वस्थता सहज प्रमाण प्रस्तुत करने वालों के रूप में होना देखा गया है। (**अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 28–29**)

- न्याय शब्द का प्रयोग, उसी के साथ–साथ अन्याय शब्द का प्रयोग होता आया है। सार्वभौम रूप में न्यायापेक्षा सर्वमानव में रहे आया। न्याय का ध्रुवीकरण अर्थात् निश्चयन और उसकी व्यवहारीकरण अभी भी मानव कुल में प्रतीक्षित है। न्याय को सर्वथा आचरण रूप में सदा–सदा के लिये इस प्रकार पहचानना संभव हो गया है कि अस्तित्व में सदा से ही सम्बन्ध समीचीन रही है। ऐसा सम्बन्ध दो प्रकार से होना देखा गया है।

  (अ) मानव–मानव **संबंध** – परिवार–समाज–व्यवस्था के रूप में न्याय, धर्म सत्य सहज प्रमाण।

  (ब) मानव–प्रकृति **संबंध** – नियम, नियंत्रण, संतुलन रूप में।

  मानव भी चैतन्य प्रकृति सूत्र से सूत्रित है ही इस प्रकार मानव और मानवेत्तर प्रकृति के रूप में मानव ही देख पाता है। मानवेत्तर प्रकृति में जीवावस्था, प्राणावस्था और पदार्थावस्था की सम्पूर्ण वस्तुएँ, गण्य है। इसी में धरती, जलवायु व वन खनिज समायी है। इस सबके साथ सम्बन्ध सदा–सदा से बनी हुई है। इसे हमें जानने, मानने,

पहचानने और निर्वाह करने की संभावना है ही, आवश्यकता भी है। इसी क्रम में मानव संबंध भी स्थापित रहता ही है। इन सभी **संबंधों** का सार्थक, आवश्यक, अतिवांछनीय जैसा विचार स्वीकृति और आशा के रूप में भी स्वीकृतियाँ मानव में रहता ही है। ऐसा सम्बन्ध और सम्बन्धों का प्रयोजन निम्न प्रकार से पहचाना जाता है।

प्राकृतिक संबंधों का प्रयोजन

धरती का संतुलन, जल का संतुलन, वायु का संतुलन, वन–खनिज का संतुलन, इनके संतुलन के फलस्वरूप ऋतु संतुलित रहना पाया जाता है। धरती के संतुलित होने के उपरान्त ही अन्य सभी संतुलन साकार होना स्वाभाविक रहा है। उसके उपरान्त मानव प्रकृति का धरती पर अवतरित होना स्वाभाविक रहा है। मानव ने अभी तक इन चारों विधाओं में असंतुलन न्यूनातिरेक रूप में पैदा कर चुका है। इसका मूल कारण अनानुपाती वन खनिज का शोषण। जलवायु का प्रदूषण, धरती में ताप व प्रदूषण प्रधान रहा है। यह सर्वविदित हो चुकी है ऐसे प्रदूषणों के आधार पर मानव का इस धरती पर जीना दूभर होता जा रहा है। इससे छूटना अति आवश्यक मुद्दा है। इसीलिये कि धरती ही असंतुलित होने के उपरान्त मानव का इस धरती पर रहने का प्रश्न ही नहीं रहता। इसी कारणवश सर्वमानव को अपेक्षा सहज जागृति सम्पन्न होना आवश्यक है। ऐसी जागृति के लिए तीन महत्वपूर्ण अध्ययन कार्य सम्मुख है।

1. जीवन ज्ञान,
2. सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान,
3. इन दोनों मुद्दे में पारंगत होने का फल–परिणाम मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान देखा गया है।

तीनों मुद्दे पर पारंगत होने के लिये सर्वमानव में जीवन सहज रूप में अर्हता है ही। अस्तु सर्वमानव जीवन ज्ञान रूपी परमज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन रूपी परम दर्शनज्ञान मानवीयता पूर्ण आचरण रूपी परम आचरण ज्ञान में सहज पारंगत हो सकता है। इसके मूल में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही प्रधान वस्तु है। अस्तित्व में दृष्टा केवल मानव होने के कारण ही बहुमुखी बहुआयामी प्रतिभा व्यक्तित्व, व्यवहार और व्यवसाय (उत्पादन) सम्पन्न होने का आधार सर्वमानव में प्रकारान्तर से रहता ही है। इन्हीं प्रवृत्तियों प्रमाणों के आधार पर मानव संतुलन और प्राकृतिक संतुलन को हर व्यक्ति के ध्यान में लाना, आवश्यकता के रूप में स्वीकारना, अनिवार्यता के रूप में मूल्यांकित करना फलस्वरूप कार्य–व्यवहार में प्रमाणित करना सहज है।... **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 44–47)**

- स्वायत्त मानव का व्याख्या प्रत्येक मानव ही होना पाया जाता है। इसके बावजूद भाषा और शब्द के माध्यम से सच्चाई को इंगित कराने की प्रक्रिया, इसकी सार्थकता की अपेक्षा है।वांगमय सार्थकता का तात्पर्य सच्चाइयाँ अपने स्वरूप में इंगित होने से है। यह इंगित होना भी एक प्रक्रिया है। अतएव स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलनपूर्वक ही मानव व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होना पाया जाता है। व्यवहार में सामाजिक होने का तात्पर्य व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना ही है। इस प्रकार मानव ही प्रमाण का आधार है न कि वांगमय। वांगमय का स्मरण यहाँ इसलिये किया गया है कि वांगमय प्रमाण के आधार पर मानव जाति विविध परंपरा में क्षत–विक्षत हो चुका है। अर्थात् स्वयं पर विश्वास हो पाने का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता। प्रत्येक मानव स्वयं पर विश्वास नहीं करेगा, तब तक अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का अंगभूत होना प्रमाणित नहीं करेगा। मानव अपने को प्रमाणित किये बिना परंपरा होना संभव नहीं है। इसीलिये स्वायत्त मानव को पहचानने के उपरान्त ही स्वायत्त परिवार प्रमाणित होना देखा गया है। स्वायत्त मानव के परीक्षण, मूल्यांकन और प्रस्ताव क्रम में व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन एक अनिवार्यतम अधिकार और अभिव्यक्ति है। व्यवहार में सामाजिक होने का मूल रूप आचरण ही है। मानवीयतापूर्ण आचरण में ही मूल्य, चरित्र, नैतिकता का प्रकाशन–संप्रेषणा होना पाया जाता है। मूल्यों का प्रमाण **संबंधों** को पहचानने के उपरान्त ही होता है। यह सर्वमानव विदित है अथवा सर्वमानव इसे परीक्षण कर सकता है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि से सम्बन्ध नित्य वर्तमान है। **संबंध** का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित होने से है। अनुबंध का तात्पर्य निष्ठा से है। वह भी स्वीकृतिपूर्वक स्वयं स्फूर्त निष्ठा से है। यह निष्ठा स्वायत्त मानव में ही प्रतिपादित और प्रमाणित होता है। (**अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर:** 81–82)
- मूल्य, चरित्र, नैतिकताएं अविभाज्य रूप में स्वायत्त मानव में प्रमाणित होने का क्रम ही आचरण है। मानव अपने स्वायत्त आचरण सहित ही कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित रूप में सामाजिक होना प्रमाणित करता है। **संबंधों** के आधार पर जैसा मानव **संबंधों** को प्रयोजनों और व्यवस्था के सूत्रों के रूप में देखा गया है कि सम्मान **संबंध** जिसमें सम्मानित होने वाला और सम्मान करने वाले का परस्परता में होने वाले कार्यव्यवहार सम्मान **संबंध** का साक्ष्य है। सम्मान **संबंध** में स्पष्ट हो चुका है कि स्वयं से अधिक जागृत प्रमाणित व्यक्तियों के प्रति, स्वयं के प्रति विश्वास के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से मुखरित और आचरित होने वाला क्रियाकलाप जिसका प्रयोजन सम्मानित होने वाले व्यक्ति में सम्मान किया या स्वीकृति होना आवश्यक है। सम्मान परस्परता में मूल्यांकन है। ऐसा सम्मान करने और सम्मानित होने का मूल्यांकन उभयतृप्ति का स्रोत होना पाया जाता है। सम्मान करने, सम्मान स्वीकृत करने का क्रियाकलाप ही जागृति सहज व्यवहार कहलाता है। **संबंध** स्वयं से, स्वयं के लिये, स्वयं में जाना, माना, पहचाना हुआ, निर्वाह करने के लिये आधार है। स्वयं में तृप्ति पाने का उद्देश्य अथवा तृप्त होने का उद्देश्य और तृप्त रहने का उद्देश्य बना ही रहता है। **संबंधों** को पहचानने के उपरान्त उसका प्रयोजन केवल भय मुक्ति ही है। भय मूलतः भ्रम के रूप में होना विदित है। भ्रम; अधिक, कम, अथवा विपरीत

पहचान और मान्यता है। यही भय प्रलोभन का कारण और स्वरूप है। इसी क्रियाकलाप को भ्रम नाम हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मानव ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है। विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है। भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है। भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतिपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है। आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना–परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है। नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पाया अर्थात् समाज परंपरा में शिक्षा, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है। इसका विकल्प में ही जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है। यह अध्ययनगम्य है। ऐसा जागृत मानव का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना पाया जाता है। इसी के पुष्टि में सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है। फलतः मानव में स्वायत्तता की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है। हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है। इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही स्वायत्तता का प्रमाण है। स्वायत्त मानव रूप प्रदान करने की शिक्षा–संस्कार ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है। (**अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 82–84**)

- **संबंधों** के क्रम में मानव ऊपर कहे विधि से अपने जीवन सहज जागृति को प्रमाणित करता है। ऐसे सम्पूर्ण मूल्यांकन जीवन तृप्ति, व्यवहार प्रयोजन के ध्रुवों पर समीकृत होना पाया जाता है। जीवन तृप्ति का स्वरूप प्रामाणिकता के रूप में देखने को मिलता है। प्रामाणिकता अपने सम्पूर्णता में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। जीवन तृप्ति और उसका प्रमाण में, से, के लिये इससे अधिक या कम कुछ होता नहीं है। क्योंकि अस्तित्व स्वयं कम–ज्यादा से मुक्त है। जीवन ज्ञान भी कम और ज्यादा से मुक्त है। जीवन ही जागृतिपूर्वक अस्तित्व दर्शन करता है। अस्तित्व में जीवन भी अविभाज्य वर्तमान है। इसी परम सत्यतावश मानव में प्रमाणित होने की आवश्यकता, अवसर सहज ही नित्य समीचीन है क्योंकि अस्तित्व और अस्तित्व में जीवन नित्य वर्तमान रहा आया है। हर मानव शरीर श्रेष्ठ रचना रूपी प्रकृति, विकासपूर्ण रूपी जीवन का संयुक्त साकार रूप में मानव तथा मानव परंपरा है। जीवन अपने जागृति को प्रमाणित करना ही मानव परंपरा में प्रधान कार्य है। जागृति को प्रमाणित करने के क्रम में सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज ही साक्ष्य है। यही जागृति लोकव्यापीकरण होने का भी साक्ष्य है। (**अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 84–85**)

- मानव **संबंध** के अतिरिक्त नैसर्गिक एवं ब्रह्माण्डीय **संबंध** भी बना ही रहता है। ब्रह्माण्डीय **संबंध** क्रम में मानव का स्वभावगति सम्पन्न कार्यकलापों के पोषक होना पाया जाता है क्योंकि मानव के इस धरती पर प्रकट होने के पहले भी और बाद भी इस धरती के संतुलन में ब्रह्माण्डीय किरणों का अथवा तरंगों का पूरकता सिद्ध हो चुकी है क्योंकि यह धरती समृद्ध हो चुका है। इस धरती में जब से मानव धातु युग को पार कर आस्था, राज्य युग को झेलता हुआ वैज्ञानिक युग में प्रवेश होते ही इस धरती के साथ असंतुलनकारी कार्यकलापों को सर्वाधिक अपनाया। जिसका विचार प्रसव स्वरूप उपभोक्ता विधि में मूल्यांकित हो चुका है। उपभोक्ता विधि समाज विरोधी है यह भी मूल्यांकित हो चुका है। अखण्ड समाज की अभीप्सा सर्वमानव में विद्यमान है। यह अभयता के अपेक्षा पर निर्भर है। इसलिये मानव संस्कृतिपूर्वक ही अखण्ड समाज की ओर मार्ग प्रशस्त होना पाया जाता है। अतएव ब्रह्माण्डीय किरणों से लाभान्वित यह धरती संतुलित रहने के क्रम में ही मानव को संतुलित रहने की आवश्यकता और अनिवार्यता है।

  नैसर्गिक **संबंध** सहज प्रक्रिया मानव में, से, के लिये अविभाज्य है। धरती, वायु, जल के साथ ही मानव शरीर परंपरा का होना पाया जाता है। ऐसी शरीर परंपरा स्वस्थ रहने की आवश्यकता है ही। शरीर स्वस्थता की परिभाषा पहले की जा चुकी है। जीवन जागृति पूर्वक परंपरा में व्यक्त होने योग्य शरीर ही स्वस्थ शरीर है। यह शरीर संतुलन का तात्पर्य है। नैसर्गिकता की पवित्रता इसके लिये एक अनिवार्य विधि है। इसी के साथ ऋतु संतुलन इस धरती पर उष्मा वितरण–विनियोजन कार्यक्रम में सशक्त भूमिका है। वातावरणिक और भूमिगत उष्मा धरती के ऊपरी सतह में संतुलन को बनाए रखने के लिये ऋतु संतुलित कार्यकलाप ही महत्वपूर्ण भूमिका है। ऋतु वातावरिणक उष्मा को भूमिगत करने और उसे आवश्यकतानुसार धरती अपने सतह में उपयोग करने के क्रम को बनाए रखता है। यथा आप हम सब इस बात को देखे हैं जैसे ही ठंडी ऋतु प्रभावित होता है वैसे ही धरती से उष्मा बर्हिगत होता हुआ दिखाई पड़ती है जिससे धरती के ऊपरी सतह में जो चारों अवस्था है उन्हें संतुलन प्रदान करता है। ग्रीष्म ऋतु में धरती अपने ऊपरी सतह के श्वसन द्वारा उष्मा सहित विरल द्रव्यों को अपने में समा लेता है। इसका विधि बाह्य वातावरण में उष्मा का दबाव अधिक होने, और धरती के ऊपरी सतह के कुछ नीचे तक कम होने के आधार पर क्रिया सम्पन्न होती है। इसे हर देश काल में परीक्षण किया जा सकता है, स्वीकारा जा सकता है। वर्षाकाल में धरती के सतहगत उष्मा और वातावरणिक उष्मा संतुलन स्थापित करने और उसे संरक्षित कर रखने का क्रियाकलाप दिखाई देता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण फल, वृक्ष, पौधे फलवती होने का कार्य दिखाई पड़ती है। इससे स्पष्ट हो गया है कि धरती की ऊपरी सतह में संतुलन विधि से वर्षाकालीन, शीतकालीन और उष्णकालीन अन्न–वनस्पतियों को पहचाना जाता है। इसे संतुलित बनाए रखना, इसके लिये मानव स्वयं पूरक होना ही नैसर्गिक संतुलन का तात्पर्य है। ये सब अर्थात् मानव **संबंध**, नैसर्गिक **संबंध**, ब्रह्माण्डीय **संबंध** निरन्तर वर्तमान है ही। इनके प्रति जागृत होना ही **संबंधों** को पहचानना–मूल्यों को निर्वाह करने का तात्पर्य है। मूल्यांकन विधि से उभयतृप्ति का प्रमाण होता है। जैसे – स्वयं पर विश्वास सम्पन्न हर मानव के परस्परता में होने वाली पोषण और पोषित होने की क्रिया; संरक्षित होने, संरक्षित करने की क्रिया; शिक्षित होने और शिक्षा प्रदान करने की क्रिया; समाधानपूर्ण कार्य

करने, कराने और करने के लिये मत देने की क्रिया; न्याय प्रदान करने और न्याय पाने की क्रिया; संस्कार ग्रहण करने–कराने की क्रिया; सह–अस्तित्व सहज सम्पूर्णता को निर्देशित करने, निर्देशित होने की क्रिया; अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व को स्वीकार करने योग्य संस्कारों को स्थापित करने और स्वीकारने की क्रिया; अस्तित्व में विकास और जागृति को बोध कराने एवं बोध सम्पन्न होने की क्रिया। इसी प्रकार जीवन और जागृति को बोध कराने, बोध होने की क्रिया; व्यवस्था में जीने की स्वीकृति रूपी संस्कार प्रदान और स्वीकार क्रिया; अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता को बोध कराने एवं बोध होने की क्रिया। समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्वपूर्ण जीने की कला में दृढ़ता को स्थापित करने और दृढ़ता से सम्पन्न होने की क्रियाकलापों में मूल्यांकन सहज तृप्ति को पाया जाता है। यही कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्यों में विधिवत् तृप्ति पाने का स्रोत है। यह समीचीन है। यह एक आवश्यकता भी है। इन्हीं तृप्तियों को पाने के क्रम में मूल्यों का निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार व्यवहार में सामाजिक होने का सम्पूर्ण अर्हता स्वायत्त मानव में शिक्षा–संस्कारपूर्वक समाहित होता है और प्रमाणित होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 85–88)**

- मानव परिवार और कार्य

स्वायत्त मानव ही अर्थात् स्वायत्त नर–नारी ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होते हैं। परिवार का परिभाषा में वर्तमान होना ही स्वायत्त मानव का प्रमाण है। मानवीय शिक्षा–संस्कारपूर्वक ही हर विद्यार्थी स्वायत्तता सम्पन्न होता है। मानवीय शिक्षा का परिभाषा भी यही है। जब यह परिवार परिभाषा में प्रमाणित होते हैं तब सहज ही एक–दूसरे के साथ **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं और श्रम मूल्य का भी मूल्यांकन करते हैं। **सम्बन्ध** निर्वाह, मूल्य निर्वाह का मूल्यांकन करते हैं, उभयतृप्ति पाते हैं। यही परिवार मानव का प्रमाण है। यही परिवार मानव के रूप में अनेक परिवार सभा यथा परिवार समूह सभा, ग्राम परिवार सभा के रूप में संतुलन निर्वाचन विधि से कार्यरत होना पाया जाता है। परिवार मानव, परिवार समूह, ग्राम परिवार और विश्व परिवारों तक सभी परिवार सभा क्रम से, (क्रम से का तात्पर्य विशालता और समग्रता की ओर) परिवार समृद्धि सम्पन्नता का व सभा विधि व्यवस्था का धारक–वाहक रूप में समाज और व्यवस्था को अभिव्यक्त करते हैं। हर परिवार, परिवार समूह, ग्राम परिवार, ग्राम परिवार समूह विधि से विश्व परिवार तक संतुलन का स्वरूप मानवीय शिक्षा–संस्कार न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम, मानवीय शिक्षा सुलभता पूर्वक **संबंध** में सहज स्वायत्त रहना पाया जाता है। हर सुलभता में उभयता एक अनिवार्य स्थिति है। उभयता का तात्पर्य मानव की परस्परता; नैसर्गिक अर्थात् जल, वायु, धरती और सूर्य उष्मा का परस्परता सदा रहता ही है। मानव के परस्परता में **संबंधों** के साथ ही नैसर्गिक उपलब्धियों अर्थात् उत्पादन होता है। क्योंकि नैसर्गिक संयोग से ही हर उत्पादन होना देखा जाता है। ऐसा उत्पादन, विनिमय के लिये वस्तु होना पाया जाता है। और व्यवहार के लिये हर स्वायत्त मानव; **संबंध** दृष्टा, मूल्य दृष्टा होना पाया जाता है। जानने, मानने, पहचानने की विधि से **संबंधों** का

पहचान होना पाया जाता है। उसकी स्वीकृति के फलन में जीवन सहज अक्षय शक्ति, अक्षय बल रूपी ऐश्वर्य; मूल्यों के रूप में एक दूसरे के लिये स्वीकार्य योग्य रूप में आदान–प्रदान होता है। यही मानव **संबंध** और मूल्यों का तात्पर्य है। ऐसे **संबंधों** को सात रूप में पहचाना गया है। और मूल्यों को क्रम से जीवन मूल्य को चार स्वरूप में, मानव मूल्य छह स्वरूप में, स्थापित मूल्य नौ स्वरूप में, शिष्ट मूल्य नौ स्वरूप में और वस्तु मूल्य दो स्वरूप में समझ सकते हैं। (**अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 91–92**)

- इस मुद्दे को अर्थात् प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता को और भी विधियों से समझा जा सकता है कि अभी तक जितने भी लोग जागृत हुए हैं उनमें देखा गया प्रमाण भी इसी की पुष्टि करता है और प्रेरणा देता है कि जागृतिपूर्वक ही मानव सुखी होता है। हर मानव सुखी होना चाहता भी है। जागृत होने की संभावना सदा बना रहता है। मानव परंपरा अभी तक जागृति क्रम में होने के कारण आदर्शों को मानते हुए और जागृति की अपेक्षा को बलवती बनाता ही आया। इसी क्रम में जागृति पद तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्ति का पृष्ठभूमि होना मूल्यांकित होता है। पुनश्च जागृति क्रम और जागृति पद में पहुँचने का पृष्ठ भूमि है। इस क्रम में जागृति की इच्छा सर्वाधिक बलवती होने की आवश्यकता रहते आया। इसी क्रम में आज स्थिति ऐसी बनी है सर्वाधिक संख्या में मानव जागृत होना अनिवार्यता में बदल चुकी है। क्योंकि जागृति पूर्वक ही व्यवस्था में जीना बन पाता है। व्यवस्था में भागीदारी स्वयंस्फूर्त विधि से स्पष्ट हो जाता है, सार्थक होता है। समझदारी के साथ ही ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी सहज अभिव्यक्ति है। समझदारी का मूल रूप जीवन ज्ञान सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान का अविभाज्य अनुभूति और प्रमाण ही मानवीयता पूर्ण आचरण है। इसी के आधार पर जिम्मेदारी निर्वाह होना देखा गया। जिम्मेदारी का सम्पूर्ण स्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। मानवीयतापूर्ण आचरण समझदारी का ही फलन है। अखण्ड समाज विधि से ही मानवीयतापूर्ण आचरण का मूल्यांकन हो पाता है। मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से समस्त मूल्य, मानवीय चरित्र और नैतिकता का अविभाज्यता प्रमाणित होता है। दूसरे विधि से मूल्य, चरित्र, नैतिकता में, से, के लिये हर व्यक्ति प्यासा है। इसलिये समझदारी का फलन रूपी मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से मानव जाति का एकता, अखण्डता, व्यवस्था विधि से सार्वभौमता प्रमाणित होती है। इसी विधि से प्राकृतिक, नैसर्गिक और **मानवीय संबंधों** में समझदारी, ईमानदारी पूर्वक निर्वाह करने की संभावना समीचीन हो गई है, आवश्यकता तो है ही। (**अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 104– 105**)
- सर्वमानव सहज रूप में ही समान है। इसीलिये मानव धर्म सर्वमानव में समान है। यह तथ्य समझ में आता है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य ही है स्वयं व्यवस्था मेंः और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना। इसी विधि से मानव अपने में चिरआशित स्वराज्य को पाकर सुख, शांति, संतोष और आनन्द को पाकर; समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करता है। यही मुख्य रूप में मानव का चाहत भी है। मूलतः धर्म एक शब्द है। हर शब्द किसी का नाम है। धर्म शब्द से इंगित वस्तु मानव जागृति और उसका प्रमाण रूपी प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान ही है। इसका स्वीकृत स्वरूप ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। इसका दृष्टा पद में भी

सुख, शांति, संतोष आनन्द है। इसका दृश्य रूप ही व्यवस्था है। वह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक गुँथे हुए स्वरूप में दिखाई पड़ती है। व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति ही अथवा फलन ही समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व है। इस प्रकार जीवन सहज लक्ष्य, मानव सहज अर्थात् अखण्ड समाज सहज लक्ष्य, संगीत, विन्यास है, यही समाधान के रूप में निरूपित होती है। सह–अस्तित्व और अनुभव में संगीत है। यही आनन्द के नाम से विख्यात होता है। न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य–संयम, शिक्षा–संस्कार में होने वाला अनुभव ही सर्वतोमुखी समाधान है। यह मानव सहज जागृति की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा है। सम्पूर्ण मानव अपने परिवार सहज आवश्यकता से अधिक कार्य करता है इसके फलन में समृद्धि का अनुभव होता है। यह भी समाधान है। हर परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक **सम्बन्धों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभयतृप्ति पाने की विधि जागृतिपूर्वक सम्पन्न होता है। यह निरन्तर समाधान है। लाभ–हानि मुक्त विनिमय प्रणाली जागृति सहज मानव की अपेक्षा है। इस विधि से विनिमय कार्य का क्रियान्वयन स्वयं समाधान है। स्वास्थ्य संयम, स्वाभाविक रूप में जीवन जागृति को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में प्रमाणित करने योग्य शरीर है। यही स्वास्थ्य का निश्चित स्वरूप है। जागृतिपूर्ण परंपरा में सर्वमानव अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाये रखने का उपाय और स्रोत बना ही रहता है। यह स्वयं में समाधान है। प्रत्येक मानव मानवीय शिक्षा–संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। यह सर्वतोमुखी समाधान है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 114–115)**

- लक्ष्य सहज प्रमाणों का

मूल्यांकन विधि – 1. स्वयं में, एक दूसरे के परस्परता में यथा प्रत्येक मानव स्वयं में, परस्पर मानव **संबंधों** में और नैसर्गिक **संबंधों** में। 2. समझदारी, समझदारी के अनुरूप निष्ठा (कर्तव्य, दायित्व के रूप में किया गया निर्वहन और उसका फल–परिणाम) सहज विधि। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 123)**

- संतुलन

जागृत शिक्षा–संस्कार विधि से प्रत्येक मानव जागृत होना पाया जाता है। शिक्षा ग्रहण करने की अर्हता सम्पूर्ण मानव में विद्यमान है। जीवन अनेक बार अथवा मानव बारंबार, मानव परंपरा में जागृत होने का प्रयत्न करता है। इसे हम सब देखे हुए हैं। मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार उपलब्ध होने के उपरान्त ही हर मानव में, से, के लिये संतुलन एक नित्य उत्सव का आधार बिन्दु है। संतुलन का मूल रूप सम्पूर्ण मानव में संतुलन, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करता हुआ दसों सीढ़ियों में परस्पर पूरकता पूर्वक मानव सहज जीने की कला को प्रमाणित करने के रूप में है। ऐसे संतुलन का स्वरूप –

1. शिक्षा–संस्कार–व्यवस्था और संविधान में सामरस्यता
2. मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में सामरस्यता

3. मानवीय व्यवस्था सहज पाँचों आयामों में सामरस्यता

4. **सम्बन्ध**–मूल्य–मूल्यांकन और उभयतृप्ति में सामरस्यता

5. नैसर्गिक **सम्बन्ध** और मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला में सामरस्यता

6. दसों सीढ़ियों में परस्पर उपयोगिता, पूरकता और सामरस्यता

7. व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता

यही संतुलन का प्रमाण है। **(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 128–129)**

- मौलिक अधिकार

मानवीयता सहज जागृति व जागृतिपूर्ण अखण्ड समाज–

सार्वभौम व्यवस्थापूर्वक परम्परा के रूप में अर्थात् पीढ़ी से पीढ़ी के रूप में निरंतरता को प्रमाणित करता है। यह करना, कराना एवं करने के लिये मत देना मानव में, से, के लिये मौलिक विधान है।

व्याख्या – यह अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन बीज रूप में हर परिवार में प्रमाणित होना स्वाभाविक है। परिवार में हर सदस्य स्वायत्त होना ही उनके वयस्कता का प्रमाण है। ऐसे प्रमाण सम्पन्न परिवार के रूप में स्थिति परस्परता में ही **संबंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति जिसका नाम विश्वास है, प्रमाणित होती है एवं निरन्तरता बनी रहती है। और परिवार सहज आवश्यकता के आधार पर अपनाया/स्वीकारा गया उत्पादन कार्य में एक–दूसरे के लिये पूरक होते हैं। यह समृद्धि का स्रोत होना पाया जाता है। यह प्रत्येक परिवार में, से, के लिये संभावी है। समृद्धि का अनुभव सामान्य आकांक्षा, संबंधी वस्तुओं से होना पाया जाता है। महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएं समृद्धि के लिये सहायक हैैं।

इस विधि से हर परिवार सहज **संबंधों** में विश्वास, समाधान और समृद्धि प्रमाणित होना ही 'मानवीयतापूर्ण' परिवार संज्ञा है। यह पीढ़ी से पीढ़ी में स्वीकार पूर्वक प्रवाहित होती है क्योंकि हर मानव संतान न्याय का याचक, सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक और सत्यवक्ता होता है। परिवार में वयस्क सभी सदस्य जीवन विद्या, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण में परिपक्व रहते हैं। इसलिये परंपरा में सत्यबोध होना, सही और न्यायपूर्ण कार्य–व्यवहार प्रमाणित होता है। यही गति का आधार है।

परिवार सभा सभ्यता – **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन विधियों से सम्पन्न अनुभव ही सभ्यता की प्रतिष्ठा है। परिवार ही अपने परिपक्वता विधि से सभा के स्वरूप में प्रमाणित होता है। इस प्रकार सभा ही सभ्यता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन स्रोत है। सभा स्वरूप क्रम से दस सीढ़ियों में स्पष्ट है। मूलत: परिवार सभा ही अन्य स्तरीय सभाओं की रचना–कार्य और प्रवृत्तियों को प्रवर्तित करता है। परिवार में समाधान, समृद्धि और परस्परता में

विश्वास, प्रतिष्ठा के रूप में अनुभव होना ही, उसकी विशालता की आवश्यकता स्फूर्त होती है। इसी क्रम में परिवार के अन्य कार्य सूत्र भी आशय के रूप में सूत्रित रहता ही है। धरती में अकेले व्यक्ति या परिवार नाम की स्वरूप की व्यवस्था नहीं है। अनेक व्यक्ति, अनेक परिवार के रूप में मानव प्रकाशित है। इसलिये परस्पर परिवार में विश्वास का सूत्र फैलना एक आवश्यकता रहता ही है। इसी क्रम में परिवार समूह, ग्राम मुहल्ला परिवार होना एक साधारण विधि है। इसमें परिवार का आशित विनिमय, न्याय, स्वास्थ्य–संयम, शिक्षा–संस्कार अपेक्षा के रूप में ही रहता है। क्योंकि परिवार आवश्यकीय सभी सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं को निर्मित नहीं करता। आवश्यकता से अधिक एक–दो वस्तुओं को अवश्य ही उत्पादित करता है एवं विनिमय पूर्वक अन्य वस्तुओं में बदलने की आवश्यकता बनी रहती है। यह एक आवश्यकीय प्रक्रिया है। इसे दूर–दूर तक सूत्रित करना एक आवश्यकता है। मानव जागृतिपूर्वक ही सामाजिक होना पाया जाता है। यह शिक्षा–संस्कारपूर्वक ही होता है। इसका परीक्षण, सर्वमानव के साथ होना सहज है। इस विधि से **संबंधों** को विशाल और विशालतम रूप देना आवश्यकता है। इसी विधि से ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्ध रचना मानव का चिर कामना नैसर्गिकता सहज विधि से स्पष्ट हुआ है। इस विधि से धरती के मानव न्याय, जो अखण्ड समाज के अर्थ को ध्वनित करता है, के साथ समाधान जो सार्वभौम व्यवस्था को ध्वनित करता है, के साथ जागृति जो इन दोनों को संतुलित रूप में प्रमाणित है, के साथ निरन्तर जीने की कला को, अनुभव बल को, विचार शैली को सर्वथा परिपूर्ण रूप में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना संभव है। जागृत परंपरा ही शिक्षा–संस्कार, न्याय–सुरक्षा, विनिमय–कोष, उत्पादन–कार्य और स्वास्थ्य–संयम के रूपों में हर सभा के परस्परता में, हर सभा में प्रमाणित होता है और उसका मूल्यांकन होना एवं उसकी तृप्ति सर्वसुलभ होना ही मानवीयतापूर्ण आचार संहिता का परम लक्ष्य है। .... (अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 132–135)

- परिवार की पहचान, उसकी विशालतमता ही समाज का स्वरूप है। व्यवस्था अपने में न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य– संयम और शिक्षा–संस्कार सुलभता ही है और समाज अपने– आप में **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि ही जागृति का साक्ष्य है। इसी उभय तृप्ति का नामकरण ही 'न्याय' है। यह सभी परिवार में हो सकता है, आवश्यकता है, यह सर्वविदित है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 136)**
- मानव अपने मूल्यों के रूप में स्थिति, **सम्बन्ध** और व्यवहार के रूप में गति का होना पाया जाता है। समाधान के रूप में स्थिति एवं व्यवस्था के रूप में गति है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 143)**
- 1.4 मानव, मानवीयतापूर्ण आचरण जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार, **संबंधों** की पहचान व मूल्यों का निर्वाह; तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा के रूप में मानवीयता की व्याख्या है। यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 142)**

- **स्वनारी/स्वपुरूष की परिभाषा –** विधिवत् विवाह पूर्वक प्राप्त नारी या पुरूष।

व्याख्या :– इस मुद्दे पर अनेक समुदाय परम्पराएँ विविध प्रकार से विवाह कार्य को सम्पन्न करते हैं। इसका पार्थिव या दैहिक प्रयोजन शरीर **सम्बन्ध** ही होना, ऐसे विवाह **सम्बन्ध** में जुड़े हुए नर–नारियों में प्राप्त, धन का उपभोग करने में समानाधिकार अथवा न्यूनातिरेक अधिकार के रूप में स्वीकृत रहा है। इससे अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का आधारभूत सूत्र व्याख्या नहीं हो पाया। इसका साक्ष्य अनेक और विविध समुदाय परंपरा ही है।

विवाह सम्बन्ध मूलत : –

1. परिवार व्यवस्था में जीने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने की प्रतिज्ञा है।
2. विवाह **संबंध** 'परिवार मानव' रूप में व्यवस्था विधि से जीने की कला को स्वीकारने की प्रतिज्ञा है।
3. विवाह **सम्बन्ध** परिवार में, से, के लिये आवश्यकीय वस्तुओं के लिये अपनाया गया उत्पादन–कार्य में भागीदारी करने की प्रतिज्ञा है।
4. परिवार मानवता सम्पन्न व्यक्ति में ही सम्पूर्ण अथवा मानवीयतापूर्ण प्रतिज्ञाएँ निर्वाह होते हैं। इस विधि से विवाह के पहले हर नर–नारी परिवार मानव के रूप में प्रतिज्ञा स्वीकार करने के लिये 'स्वायत्त मानव' के रूप में प्रतिष्ठित रहना, विवाहाधिकार तन, मन, धन का सदुपयोग–सुरक्षा करने में प्रतिज्ञा का आधार है।
5. किसी भी मानव परिवार में, से विवाह **सम्बन्ध** का योजना मानव कुल के लिये उपयुक्त है। विवाह **सम्बन्ध** नस्ल या रंग की सीमाओं से विशालता के लिये सहायक होना देखा गया है। इसीलिये विवाह–बेला में नस्ल–रंग से संबंधित विचारों व आग्रहों से मुक्त होने की प्रतिज्ञा है।
6. न्यायपूर्ण व्यवहार को निर्वाह करने में प्रतिज्ञा है विवाह संबंध।
7. विवाह **सम्बन्ध** मानवीयतापूर्ण व्यवहार करने के लिए प्रतिज्ञा है।
8. **विवाह सम्बन्ध, सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन एवं उभयतृप्ति के लिये कार्य करने में प्रतिज्ञा है।
9. प्रत्येक नर–नारी जो विवाहपूर्वक जीने की कला को प्रमाणित करने के लिये उद्देश्य बना लिये हैं। वे दोनों जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्न होने में पारंगत होने में और मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रमाणिक होने का घोषणा करते हुए तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा करने के लिये प्रतिज्ञा करेंगे।

संबंधों के विशालता विधि को ध्यान में रखते हुए विवाह **सम्बन्ध** में किसी भी मानवीयतापूर्ण परिवार में पले हुए स्वायत्त मानवाधिकार सम्पन्न नर–नारी का विवाह **सम्बन्ध** घटित होना मानव कुल सहज नैसर्गिक है। इसकी स्वीकृति हर नर–नारी में अवधारणा के रूप में होना आवश्यक है।

ऊपर कहे प्रतिज्ञा कार्यों में यह तथ्य उद्घाटित हुआ ही है कि स्वायत्त मानवाधिकारोपरान्त ही विवाह घटना का उपयोगी और सार्थक होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव का पहचान स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन सहज प्रमाण के आधार पर सम्पन्न होना व्यवहारिक है। ऐसी अर्हता को शिक्षा–संस्कार परंपरा में प्रावधानित रहना मानव सहज वैभव में से एक प्रधान आयाम है। इस प्रकार चेतना विकास मूल्य शिक्षा सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति ही अध्ययनपूर्वक अपने में स्वायत्तता का अनुभव करने और सत्यापित करता है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा, मानवीयतापूर्ण ज्ञान, दर्शन और आचरण सम्पूर्ण अध्ययनोपरांत किये जाने वाले हर सत्यापन को वाचिक प्रमाण के रूप में स्वीकारना नैसर्गिक व्यवहारिक आवश्यक मानव परंपरा में से प्रयोजनशील होना देखा गया है क्योंकि परस्पर **सम्बोधन** सत्यापन के साथ ही **सम्बंध**, कर्तव्य व दायित्वों की अपेक्षाएँ और प्रवृत्तियाँ परस्परता में अथवा हरेक पक्ष में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है।

विवाह **सम्बन्ध** समय में आयु की परिकल्पना का होना पाया जाता है। आयु के साथ स्वास्थ्य, समझदारी, ईमानदारी, कारीगरी की अर्हता जिम्मेदारी, भागीदारी सहित दाम्पत्य सम्बन्ध में प्रवृत्ति यह प्रधान बिन्दुएं हैं। इसका परिशीलन विवाह **संबंध**के लिये उत्सवित नर–नारियाँ का सत्यापन, अभिभावकों की सम्मति, शिक्षा–संस्कार जिनसे ग्रहण किये और उसे अध्ययनपूर्वक जिन अभिभावकों और आचार्यों के सम्मुख प्रमाणित किया, उनकी सम्मति यह प्रधान रूप में जाँच पूर्वक एकत्रित कर लेना आवश्यक है। इस संयोजन कार्य को करने वाला व्यक्ति प्रधानतः विवाह **सम्बन्ध** में प्रवेश करने वाले हर नर–नारी का पहला अभिभावक होंगे, दूसरा शिक्षक या आचार्य रहेंगे, तीसरे स्थिति में भाई–बहन और मित्र रहेंगे।

स्वायत्त मानवाधिकार के लिए 18 वर्ष की आयु तक सम्पन्न होने की व्यवस्था है। इसके उपरान्त परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने के लिए चार वर्ष न्यूनतम रूप में होना आवश्यक है। इसमें हर अभिभावक, आचार्य, भाई–बहन, मित्र सबको प्रमाण देखने को मिलेंगे। इस अवधि के उपरान्त प्रधानतः अभिभावक, प्रौढ़, भाई–बहन, मित्रों की सम्मति विवाह में प्रयोजित होने वाले नर–नारी की प्रवृत्तियों का संगीत अथवा एक मानसिकता के आधार पर आचार्यों की सम्मति सहित विवाह संस्कार सम्पन्न होगा। यही मानव परंपरा में मानवीयतापूर्ण पद्धत्ति से मानव संचेतना सहित सम्पन्न होने वाला विवाह संस्कार उत्सव है। इसके लिये आयु विचार स्पष्ट हो गया। बाईस वर्ष के उपरान्त ही विवाह सम्पन्न होना अध्ययन विधि से स्पष्ट हो चुका है। इसी अवधि के साथ दायित्व, कर्तव्य और परिवार मानव का सम्पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता और अवधियाँ स्पष्ट हो चुकी है। दूसरी विधि से स्वास्थ्य संबंध में सोचने पर भी शरीर–अंग–अवयव पुष्टि भी इसी आयु तक सहज ही सम्पन्न होना देखा गया है।

तीसरी प्रवृत्ति यह भी देखा गया है कि मानव अपने सार्थकता के साथ आवश्यकताओं की व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी सजाने अर्थात् अवधारणाओं में सजाने, पारंगत होने, प्रमाणित करने की अनिवार्यता प्रधान विधि से

विवाह मानसिकता ऐसे अर्हता के उपरान्त ही उद्मित होना स्वाभाविक है। इस क्रम में प्रचार–प्रदर्शन, प्रकाशन कार्य–प्रणालियाँ स्वाभाविक रूप में ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था एवं व्यवस्था में भागीदारी के लिए अनुकूल कार्य प्रणाली, प्रवृत्ति, पद्धति, नीतिपूर्ण रहना होता ही है। अक्षय बल–शक्ति सम्पन्नता में समान रहता है। अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत–प्रमाणित होने के क्रम में सर्वाधिक व्यक्तियों में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी की प्रवृत्ति, सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभय तृप्ति की प्रवृत्ति, तन–मन–धन रूपी अर्थ के सदुपयोग–सुरक्षा सहज प्रवृत्ति स्वयं–स्फूर्त होता हुआ देखा गया है। इसी आधार पर मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान, सार्वभौम व्यवस्था चरित्र के रूप में पहचानना, प्रमाणित होना संभव हो गया है। मानव परंपरा में मौलिक अधिकार हर नर–नारी में समान होने से मानवीयतापूर्ण प्रवृत्तियाँ देश, आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्षों में समान होने की अपेक्षा नैसर्गिक व्यवहारिक और व्यवस्था सूत्र है।

मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में विवाह–**सम्बंध** हर नर–नारी के लिए अप्रत्याशित घटना नहीं है। अपितु प्रत्याशित घटना ही है। इसी के साथ अनिवार्य घटना नहीं है अपितु स्वयंस्फूर्त सम्मत योजना, सम्मत स्वीकृति और प्रवृत्ति, व्यवस्था प्रधान सार्थकता और उसकी अखण्डता सहज वैभव सुख में निरन्तरता को स्वीकारा हुआ निष्ठान्वित मानसिकता में दाम्पत्य सम्बंध की अनिवार्यता स्वाभाविक रूप से गौण होना देखा गया है।

मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में मानव कुल के रूप में शरीर निर्माण गर्भाशय में होने एवं उसका पोषण–सरंक्षण–संवर्धन एक आवश्यकीय भूमिका है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही विवाह सम्बन्ध का सर्वोपरि प्रयोजन है। इसी के साथ–साथ यौवन और यौन विचार संयोग की आपूर्ति स्वाभाविक रूप में होना पाया जाता है। इसमें यह भी देखा गया है मानवीयतापूर्ण मानसिकता, विचार, चिन्तन (मानवीयता के प्रति दायित्व–कर्तव्य मानसिकता की सुदृढ़ता) समुन्नत और परिष्कृत होते–होते यौन–यौवन संबंधी आकर्षण अथवा सम्मोहन क्षय होता है। यह भी मानवीयता के प्रति निष्ठान्वित हर नर–नारी में परीक्षण और सत्यापन संगीत का पाया जाना नैसर्गिक है।

आयु विचार के साथ–साथ विवाहोत्सव के लिए तैयार नर–नारी के आयु समान होना चाहिये, या ज्यादा कम होना चाहिये, किसका ज्यादा और किसका कम होना चाहिए एवं विवाह की अधिकतम आयु सीमा क्या होना चाहिये इन सब पर मानव सहज विचार और प्रवृत्ति प्रयोजन सहित आवश्यकता को पहचानना चाहते हैं। मानवीयतापूर्ण मानव मानस में मानव **सम्बंध** समाज, नैसर्गिक **सम्बंध** मूल्य का निर्वाह मूल्यांकन प्रक्रिया सहित तृप्ति पाने का स्रोत सहित जुड़ा रहना पाया जाता है। इसी क्रम में सभी **सम्बन्धों** की सार्थकता व्याख्यायित है।

हर स्वायत्त मानव, परिवार मानव अपने आप में व्यवस्था कार्य विधियों के लिए तत्पर रहना अपेक्षित है ही। इसी आधार पर प्रयोजन का स्वरूप पुनश्च समीचीन सम्बंध–मूल्य–मूल्यांकन और परिवार व्यवस्था ग्राम परिवार व्यवस्था में भागीदारी से विश्व परिवार में भागीदरी है। यही प्रधान रूप में ध्यान में रहने की आवश्यकता है।

इस क्रम में आयु विचार का मुद्दा समान रहना चाहिये, अधिकतम रहना चाहिए, नर–नारियों में किसको अधिक और किसका कम रहना चाहिये। इस विचार क्रम में सुस्पष्ट है कि नर–नारियों का आयु सीमा ज्यादा से ज्यादा 3 वर्ष तक अधिकतम दूरी हो सकती है। मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज ही इस आयु अर्थात् 3 वर्ष न्यूनाधिक सीमा में ही हर नर–नारी को विवाह **संबंध** का संभावना बना ही रहता है। नर–नारियों में से कोई भी 3 वर्ष ज्यादा–कम हो सकते हैं, समान भी हो सकते है।

नर–नारी के बीच विवाह **संबंध** का मूल–मुद्दा मानवत्व से प्रमाण सिद्धि, व्यवस्था एवं व्यवस्था में भागीदारी में दक्षता, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान में पारंगत अधिकार यही तीन आधार रहेगा।

स्वायत्ततापूर्ण परिवार मानव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सूत्र से जीता–जागता हुआ परम्परा में नर–नारी का समानाधिकार, मानवत्व पर समानाधिकार होना स्पष्ट हो चुकी है। ऐसा अधिकार अर्थात् मानवीयता रूपी अधिकार, कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु रूपी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में और कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु के प्रमाण रूप में प्रामाणिकता पूर्वक स्वानुशासित होना, प्रमाणित करना ही है। इस मूल उद्देश्य को पीढ़ी से पीढ़ी में अर्पित करने के क्रम में **सम्बन्ध**– मूल्य–मूल्यांकन, उभयतृप्ति, तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा; स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार करना ही सम्पूर्ण व्यवहार है। जिसके फलस्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व हर परिवार में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा है। इसी में हर नर–नारी भागीदारी को निर्वाह करना है। समानाधिकार का प्रयोजन यही है। इन प्रयोजनों का परम्परा में होना स्वाभाविक है हर व्यक्ति स्वायत्त होने के फलस्वरूप पराधीनता, परतंत्रता दोनों का उन्मूलन हुआ रहता है। इसके विपरीत परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रूप में नित्य योजना हर नर–नारी के सम्मुख स्पष्ट रहता है। इसलिये विवाहोत्सव समय में पारितोष रूप में वस्तुओं का आदान–प्रदान स्वयं स्फूर्त विधि से जो कुछ भी मात्रा के रूप में हो पाता है, वही अधिकाधिक होना स्वाभाविक है। इस प्रकार विवाहोत्सव समय में आडम्बर के लिये किये जाने वाले व्यय अपने–आप संयमित होता है। सार्थक कार्यो में सदुपयोगी विधि से प्रयोजित हो पाता है। अतएव मानव परंपरा में विवाहोत्सव समय में लेन–देन की प्रतिज्ञा–प्रतिबद्धता की आवश्यकता नहीं है।

मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में इस बात की भी कल्पना किया जा सकता है कि स्वास्थ्य इसका एक आयाम होने के कारण, दूसरा हर गति मार्ग यान–वाहनों के प्रति जन जागरण पर्याप्त रहना स्वाभाविक है। इन आधारों पर यही परिणाम अपेक्षित है कि दुर्घटनाएँ न्यूनतम होगी। अल्पायु और मध्यायु में शरीर विरचना घटना न्यूनतम होगी। यह अपेक्षित रहते हुए भी कोई ऐसी घटना घटित हो जाए उस समय क्या किया जाय? इसका सहज उत्तर है जिस आयु–सीमा के पुरुष का वियोग हो गया हो अथवा स्त्री का वियोग हो गया हो ऐसी स्थिति में तीनवर्ष वर्षतक के अन्तराल में आयु वर्ग को पहचानते हुए एक स्त्री को एक पुरुष की आवश्यकता और एक पुरूष को एक स्त्री की आवश्यकता रूपी मानसिकता और प्रवृत्ति को पहचानते हुए उनके अभिभावक, प्रौढ़–आचार्य, मित्र, भाई–बहन,

स्थानीय व्यवस्था के कर्णधारों का प्रयास संयोजन विधियों से पुनः विवाह संबंध को स्थापित कर लेना मानव परंपरा के लिए उचित होगा।

वक्तव्यः– मानवीयतापूर्ण अर्थात् मानव चेतना सम्पन्न मानव परंपरा में समानाधिकार सम्पन्न दाम्पत्य **संबंध** में **सम्बंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति और उसकी निरंतरता स्वाभाविक है। अतएव इसमें मतभेद का आधार ही नहीं रह गया। **(अध्यायः 6, पृष्ठ नंबरः 148–157)**

- पद के साथ न्याय – न्यायापेक्षा सर्वमानव में है ही। न्याय प्रदायी क्षमता सहित धारक–वाहकता ही न्याय प्रदायिता को प्रमाणित करता है। न्याय प्रदायिता मूलतः एक समझदारी का ही स्वरूप है यही जागृति है। समझदारी में **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन और उभय तृप्ति का प्रमाण समाया रहता है। समझदारी सहज विधि से हर व्यक्ति एक–दूसरे के साथ न्याय प्रदायिता को प्रमाणों के साथ संतुष्टि बिन्दु में पहुँचना सहज हो जाता है। इसीलिये न्याय प्रदायिता का नाम है। ऐसे न्याय प्रदायिता के रोशनी में हर व्यक्ति में प्रमाण रूपी तृप्ति बिन्दु पाने की उत्कंठा रहती है। इसलिये हर व्यक्ति न्याय प्रदायिता के साथ पूरक होना देखा गया। परस्पर पूरकता के साथ उदात्तीकरण समीचीन होना, फलस्वरूप प्रमाण रूपी तृप्ति बिन्दु पर पहुँचना कम से कम दो व्यक्ति में तृप्ति सहज साक्ष्य सत्यापित होता है। यही उभयतृप्ति का साक्ष्य है। इस प्रकार सुख और सुख की निरंतरता मानव में, से, के लिये समीचीन है। **(अध्यायः6, पृष्ठ नंबरः 169–170)**
- **सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन** :– **सम्बन्ध** शब्द का परिभाषा स्वयं पूर्णता के अर्थ में अनुबन्ध है। पूर्णता सदा ही अपने में निरंतरता को ध्वनित करता है। निरंतरता ही दूसरे भाषा में अक्षुण्णता है। सदा–सदा से ही मानव अपने परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहता है।

  जागृत मानव **संबंधों** में निहित मूल्य निरंतर निर्वाह होता है। समझदारी पूर्वक मूल्यांकन में उभयतृप्ति सदा–सदा ही रहता है। यह स्वायत्त मानव पूर्वक परिवार मानव सहज विधि से सहज होना पाया जाता है। सदा–सदा के लिये परिवार में **सम्बन्ध**–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति होती है। परिवार की परिभाषा भी है परस्पर **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते हैं। यही परिवार का आधार बिन्दु है। अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्रपात "परिवार मानव" पद ही है। परिवार व्यवस्था सार्वभौम व्यवस्था के लिये सूत्र है। परिवार रचना स्वयं अखण्ड समाज रचना का सूत्र है। जागृत परिवार मानव परिवार सहज आवश्यकता के लिये समझदारी से अपनाया उत्पादन–कार्य के लिये एक–दूसरे के पूरक होना पाया जाता है। इस विधि से हर परिवार में समाधान, समृद्धि प्रमाणित होती है, अभय सह–अस्तित्व का सूत्र समाया रहता है। इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता क्रम में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का ताना–बाना, इसलिये बना है कि समाज ही व्यवस्था और व्यवस्था ही समाज को संतुलित बनाये रखता है। परिवार क्रम विधि से समाज रचना, सभा क्रम में व्यवस्था गति स्पष्ट हो जाता है। जैसे परिवार ही स्वायत्त मानवों का संयुक्त अभिव्यक्ति होना स्पष्ट

किया जा चुका है। हर नर–नारी स्वायत्त पद में ही परिवार मानव अर्हता, स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को प्रमाणित करते हैं। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 171–172)**

- स्वायत्त मानव पंरपरा में सभा क्रम, परिवार क्रम, 10–10 की संख्या में सहज ही पहचाना जाता है। सर्वमानव स्वायत्त मानव रूप में अपने प्रतिष्ठा को जानने–मानने, पहचानने–निर्वाह करने का सौभाग्य मानवीयतापूर्ण शिक्षा परंपरा में, से नित्य गति के रूप में समीचीन रहता है। सह–अस्तित्व विधि से व्यवस्था को, जागृति विधि से परिवार को पहचानना, निर्वाह करना मानव सहज आवश्यकता व वैभव है। अस्तित्व सहज रूप में ही सह–अस्तित्व वर्तमान है। यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था, इसी धरती पर नियति क्रम विधि से प्रमाणित है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जागृति का धारक–वाहकता प्रत्येक मानव का जागृति सहज स्वत्व है; और सह–अस्तित्व सहज वैभव है। इस प्रकार अस्तित्व सहज व्यवस्था को जानना–मानना–पहचानना, निर्वाह करना ज्ञानावस्था सहज जागृत मानव से ही प्रमाणित होती है। जागृति सहज विधि से ही समाज रचना स्वाभाविक होता है अथवा होने वाला स्वरूप है। होना वर्तमान ही है। वर्तमान की निरंतरता है। इसलिये व्यवस्था एवं समाज की निरंतरता है। सभा क्रम में निर्वाचन विधि से सम्पन्न होता है। परिवार रचना अर्थात् अखण्ड समाज रचना विधि **सम्बन्धों** की पहचान विधि से सम्पन्न हो जाता है। यथा एक परिवार में दस स्वायत्त मानवों के सहभागिता को पहचाना जाता है। जो परस्परता में **सम्बन्ध** मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति पूर्वक रहते हैं, परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं यह सर्ववांछित स्वरूप स्वायत्त मानव जागृत सहज वैभव के रूप में पाया जाता है। सह–अस्तित्व सहज प्रमाण के रूप में एक से अधिक व्यक्तियों का होना भी प्रमाणित होता है। इसीलिये दस व्यक्तियों का होना संख्या के रूप में बतायी जाती है, घटना के रूप में यह संख्या ज्यादा कम हो सकता है। क्योंकि मानव संख्या के अर्थ में सीमित नहीं है किंवा कोई भी वस्तु संख्या के रूप में सीमित नहीं है क्योंकि हरेक–एक रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज वैभव है, अविभाज्य है। गणित केवल रूप सीमावर्ती गणना है। आंशिक रूप में गुण (गति) का भी गणना सम्पन्न होता है। धर्म, स्वभाव और मध्यस्थ गुण (गति) का गणना संभव ही नहीं है। अतएव गणित विधि के साथ गुण और कारण विधि से मानव अपने भाषा को इनके अविभाज्य विधि से समृद्ध बनाने की आवश्यकता है। इन तीनों विधि से ही हर वस्तु को, उन–उनके सम्पूर्णता को समझना सहज है। हर वस्तु अपने सम्पूर्णता में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का वैभव है। ऐसे सम्पूर्णता का महिमा ही है प्रत्येक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 173–174)**

- **सम्बन्धों** के साथ ही शिष्टता विधि स्वाभाविक है। सम्बन्धों का सम्बोधन मानव संबंधों के आधार पर ही निश्चित मूल्य और शिष्टता का द्योतक होता है। यह परिवार (अखण्ड समाज) क्रम में और सभा–विधि में जैसे परिवार सभा और विश्व परिवार सभा में भी परस्पर सम्बोधन मानव संबंधों का सम्बोधन विधि से ही शिष्टता का निश्चयन है।

परिवार विधि में हर सम्बोधन प्रयोजन से लक्षित होना पाया जाता है। और हर प्रयोजन हर व्यक्ति के अपेक्षा सहित सम्बोधन का वस्तु है।

परिवार क्रम में

सम्बोधन **प्रयोजन**

1. पिता – संरक्षण
2. माता – पोषण
3. पति–पत्नी – यतित्व–सतीत्व
4. पुत्र–पुत्री – अनुराग
5. स्वामी (साथी) – दायित्व
6. सेवक (सहयोगी) – कर्तव्य
7. गुरू – प्रामाणिकता
8. शिष्य – जिज्ञासु
9. भाई–बहन–मित्र – जागृति (समाधान–समृद्धि)

सभा क्रम में

सम्बोधन **प्रयोजन**

सभा में – जागृति में

भाई–मित्र–बन्धु–बहन –समानता के अर्थ में

समितियों में सम्बोधन

गुरू–शिष्य	–	शिक्षा–संस्कार विधा में
आचार्य–आवेदक	–	न्याय–सुरक्षा विधा में
पितामह, पिता–माता, पुत्र–पुत्री	–	उत्पादन–कार्य सम्बन्ध
आयु के अनुसार	–	विनिमय–कोष सम्बन्ध
सहयोगी – साथी	–	स्वास्थ्य–संयम विधा में।

परिवार विधि विहित सम्बोधन, परिवार विधि का तात्पर्य परिवार सम्बन्ध से है। जैसे एक ही व्यक्ति किसी का माता, किसी का पुत्री, किसी का बहिन, किसी का पत्नी, किसी का गुरू, किसी का शिष्य, किसी का मित्र, किसी का बंधु सम्बन्धों में पाया जाता है। संबंध की परिभाषा ही पूर्णता के अर्थ में अनुबंध है। अनुबंध का तात्पर्य बोध सहित निष्ठा सहज किसी के प्रति प्रयोजन कार्य और निष्ठा सहित स्वीकृति का सत्यापन ही प्रतिज्ञा होता है। सत्यापन का तात्पर्य सम्बन्ध मूल्य–मूल्यांकन, चरित्र और नैतिकता सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान सहज सह–अस्तित्व को प्रमाणों में अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति का स्वरूप अभ्युदय के अर्थ में होना स्पष्ट है। अभ्युदय स्वयं में सर्वतोमुखी समाधन है जिसका कार्य–व्यवहार रूप अखण्ड समाज–सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी है।

अखण्ड समाज का अर्थ–जागृत मानव परंपरा में वैर–विहीन परिवार ही है। दूसरी भाषा में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व पूर्ण परिवार। अभयता स्वयं में एवं वर्तमान में विश्वास ही है। वर्तमान में विश्वास स्वायत्त मानव का स्वत्व, स्वतंत्रता अधिकार में होना पाया गया है। यह स्पष्ट हो चुका है कि स्वायत्त मानव ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को भले प्रकार से निभाता है।

परिवार में ही सम्बन्ध और प्रयोजन का अपेक्षा–आशय एवं विश्वास के आधार पर सम्बोधन सम्पन्न होता है। हर प्रयोजन मूल्य, चरित्र, नैतिकता, समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व सूत्र से सूत्रित रहता ही है। इन्हीं अपेक्षाओं का केन्द्र प्रयोजनों का स्वरूप आवश्यकताओं का कारण है। इनमें सफल हो जाना ही जागृति का प्रमाण है।

व्यवस्था सम्बन्ध मूलतः सर्वतोमुखी समाधान मूलक होना पाया जाता है। समाधान का तात्पर्य पूर्णता और उसकी निरंतरता के अर्थ में सम्पूर्ण बोध सहित कार्यप्रणाली में प्रमाणित करने का सामर्थ्य है। यही संप्रेषणा विधि में क्यों, कैसे व कितना रूपी प्रश्नों का उत्तर के रूप में प्रस्तुत होता है। इसी के साथ कहाँ, कब, कैसा यह भी एक प्रश्न

वाचिकता क्रम मानव परंपरा में होना देखा जाता है। इसका उत्तर समाधान मूलक विधि से प्रसवित होना, दूसरे भाषा में हर समाधानपूर्ण मानव से इन सभी का उत्तर प्रसवित–प्रवाहित होता है। यही दो प्रकार के प्रश्नोत्तर प्रणाली मानव सहज सम्भाषण का स्रोत है। जीवन जागृतिपूर्वक समाधानित होता है। भ्रम पर्यन्त अथवा बंधन पर्यन्त प्रश्न विधि में अथवा उसी क्रम में ज्यादा से ज्यादा वाङ्ग्मय कार्य सम्पन्न करता है। भ्रम विधि में वाङ्ग्मय सदा–सदा ही विपुल होता जाता है क्योंकि प्रश्न का पुर्नप्रश्न प्रतिप्रश्न ही वाङ्ग्मय का आधार बनता है। भ्रम–विधि से प्रत्येक तर्क प्रश्न में ही अन्त होता है इसलिये इसमें कोई निर्देश संदेश स्पष्ट नहीं हो पाता है। जबकि हर संदेश ज्ञान क्रिया, दर्शन क्रिया विधि से समाधान के रूप में प्रमाणित होता है। यही देश, क्रिया और काल विधि से हर निर्देश समाधानित होता है। देश, काल, क्रियाएँ एक दूसरे से गुँथे हुए, सधे हुए विधि से प्रवाहित रहना पाया जाता है। सम्पूर्ण देश काल क्रियाएं सह–अस्तित्व सहज विन्यास है। देश का तात्पर्य, यह धरती अपने में एक देश है । इस धरती में अनेक देशों को विभिन्न आकार प्रकार से पहचाना गया है। ऐसे विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुएं न्यूनाधिक होना पाया जाता है। जैसे किसी देश में लोहा (अयस्क) अधिक होता है, किसी देश में न्यूनतम होता है। इसी प्रकार सभी प्रकार के धातुओं को देश काल विधि से पहचाना जाता है। इसी क्रम में वन, वनस्पति, अन्न वस्तुओं का उपज किसी देश में कुछ अधिक होता है और कुछ देश में कम होता है, कम से कम भी होता है। जैसे नीम का पेड़ किसी देश में अधिक होता है किसी देश में कम होता है या नहीं होता है। जीव–जानवरों की परंपरा भी किसी देश में कुछ प्रजाति के अधिक एवं कुछ प्रजाति की कम होता है। मानव जनसंख्या किसी देश में अधिक है, किसी देश में कम है। ये सब गणना कार्य के लिये आधार रूप में देखा जाता है। सम्पूर्ण गणनाएँ सह–अस्तित्व सहज पदों अवस्था और उसके अन्तर अवस्थाओं के साथ ही सम्पन्न होता है। और गणनाएँ, यह धरती जैसा अनंत धरती, अनंत सौर व्यूह के रूप में मानव मानस में स्वीकृत हो पाते हैं। इसी के साथ लंबाई, चौड़ाई, उँचाई भी गणना का एक आधार है। ये सभी गणनाएँ मूलत: निर्देश और संदेश कार्य को सम्पन्न करता है। इन्हीं दो प्रणाली में जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करने में सम्पूर्ण समझदारी, निष्ठा सहित कार्य–व्यवहार निर्देशित–संदेशित हो जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 181–186)**

- मानव परंपरा में जीवन जागृति का प्रमाण व्यवहार में ही सुलभ होना पाया गया है। फलस्वरूप परंपरा में जागृति का प्रभाव वैभवित रहना सहज है। यह सर्वमानव सहज अपेक्षा, आवश्यकता है। जागृत मानव ही जागृति परम्परा को अनुप्राणित करने में समर्थ और सार्थक हो पाता है और जागृत मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार सम्पन्न हर व्यक्ति स्वायत्त होना और ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना स्पष्ट हो चुका है। परिवार मानव अपने में समाधान समृद्धि सम्पन्न होना भी स्पष्ट हुआ है। इस आशय की स्वीकृति सर्वमानव में होना पाया जाता है। ऐसा परिवार अर्थात् मानवीयतापूर्ण परिवार में हर स्वायत्त मानव **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, उभय तृप्ति पाते हैं। **सम्बन्धों** को सामान्य रूप में सम्बोधन सहज परंपरा, प्रत्येक भाषा

में प्रकारान्तर से स्पष्ट हुई है। पहले से यह बात भी स्पष्ट हुई है कि प्रत्येक सम्बन्ध का आशय फलस्वरूप में उसका वैभव भी अभिहित हुआ है।

सम्बन्ध की परिभाषा अपने स्वरूप में पूर्णता के अर्थ में अनुबंध है। पूर्णता का अर्थ क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता ही है। क्योंकि अस्तित्व में तीन चरणों में पूर्णता और उसकी निरंतरता का होना देखा गया है। यह गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता और उसकी निरंतरता है। गठनपूर्णता के अनन्तर जीवन और उसकी निरंतरता, क्रियापूर्णता के अनन्तर समाज और उसकी निरन्तरता और आचरण पूर्णता के अनन्तर प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता होती है। इसे भली प्रकार से अस्तित्व में समझा गया है। इन्हीं मूल ध्रुवों के आधार पर "व्यवहारवादी समाज शास्त्र" प्रस्तुत हुआ है। अनुबंध का तात्पर्य अनुक्रम से प्रतिबद्धित स्थिरता निश्चयता रहने से है। प्रतिबद्धता का तात्पर्य निष्ठा केन्द्र। निष्ठा का तात्पर्य हर विधाओं में न्यायपूर्ण व्यवहार, नियमपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने से है।

मानव सहज सभी सम्बन्ध पूर्णता को प्रतिपादित करने के लिये अनुबंधित रहने के कारण ही है। हर सम्बन्धों का पहचान के साथ ही मूल्यों का उद्गमन जीवन सहज रूप में व्यक्त होता है। इसका मूल स्रोत जीवन अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न रहना ही है। यह भी हम समझ चुके हैं कि जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है और जीवन अपने आशयों को शरीर के द्वारा मानव परम्परा में, से, के लिये अर्पित करता है। पहला–समझदारी को प्रमाणों के रूप में अर्पित करता है और प्रबोधनों के रूप में अर्पित करता है। प्रबोधन किसी को बोध के लिए अर्पित होता है और प्रमाण स्वतृप्ति और तृप्तिपूर्ण परम्परा के आशय में घटित होती है। यह जीवन जागृति की स्वाभाविक क्रिया है। जागृत मानव ही व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना पाया जाता है। व्यवस्था स्वयं में न्याय, उत्पादन और विनिमय सुलभता ही है। इन्हीं की निरन्तरता के लिये स्वास्थ्य–संयम और मानवीय शिक्षा–संस्कार एक अनिवार्य स्थिति है। इस प्रकार व्यवस्था का पाँच आयाम होता है। इन्हीं आयामों में भागीदारी, व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। इस प्रकार हर जागृत मानव (परिवार मानव) सहज रूप में व्यवस्था को प्रमाणित करता है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का आधार और अभिव्यक्ति है।

सम्बन्धों को मानव के सम्पूर्ण कार्य–व्यवहार के आधार पर सम्बोधन रूप में पहचाना जाता है। जिसकी सूची पहले प्रस्तुत किया गया है। हर सम्बन्धों का प्रयोजन भी उसी के साथ स्पष्ट है।

मानव सम्बन्धों का प्रकार

1. माता – पुत्र – पुत्री
2. पिता – पुत्र – पुत्री
3. भाई – बहिन
4. मित्र – मित्र
5. गुरू – शिष्य

6. पति – पत्नी
7. स्वामी (साथी) – सेवक (सहयोगी)
8. व्यवस्था संबंध (व्यवस्था – कार्यप्रणाली)।

हर सम्बन्धों में पूरकता प्रधान ज्ञान प्रणाली व्यवस्था के रूप में कार्यप्रणाली गति के रूप में सह–अस्तित्व सहज रूप में ही स्पष्ट होता है। हर संबंध एक–दूसरे के पूरक होने के अर्थ में नित्य प्रतिपादन है। अस्तित्व सहज व्यवस्था क्रम में पूरकता विधि प्रभावशील है। इसके मूल में अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व ही है।

हर सम्बोधन में अपेक्षाएँ समाहित रहना पाया जाता है। हर सम्बन्धों के सम्बोधन प्रक्रिया में जागृति की अपेक्षा रहता ही है। उसके साथ तीन सम्बन्ध ही देखने को मिला। ये तीन सम्बन्ध मानव सम्बन्ध, नैसर्गिक सम्बन्ध, और व्यवस्था सम्बन्ध हैं। मानव सम्बन्ध में अपेक्षाएं शरीर पोषण–संरक्षण, समाजगति की अपेक्षाएँ प्रकारान्तर से समायी रहती है। पोषणापेक्षा–पोषण प्रवृत्तियाँ तन, मन (जीवन) और धन, के सम्बन्धों में अथवा तन, मन (जीवन) और धन रूपी तथ्यों का पोषण, संरक्षण अपेक्षा और प्रवृत्ति मानव सहज गति होना पाया जाता है। यथा–

1. जागृत मानव अन्य की जागृति के लिये प्रवृत्त रहता है।
2. स्वस्थ मानव अन्य के स्वस्थता के लिए प्रयत्नशील रहता है।
3. समृद्धिशील मानव अन्य के समृद्धि सम्पन्नता में सहायक होने के लिये प्रवृत्तशील रहता है।
4. न्याय प्रदायी क्षमता सम्पन्न मानव, अन्य को न्याय सुलभ होने के लिये प्रवृत्तिशील रहता है।
5. किसी उत्पादन–कार्य में पारंगत मानव अन्य को पारंगत बनाने के लिये प्रवृत्तिशील रहता है।
6. मानव स्वयं व्यवस्था में जीता हुआ समग्र व्यवस्था में भागीदारी करते हुए अन्य को व्यवस्था में भागीदारी के लिये प्रेरित करने में प्रवृत्तिशील रहता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 188–193)**

- अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिये जागृति ही प्रधान आधार है। जागृति केवल मानव में ही होना पाया जाता है। इसलिये मानव में ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की संभावना बनी हुई है। दूसरे विधि से हर–मानव स्व जागृति को वरता ही है। अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की अपेक्षा करता ही है। यही ज्ञानावस्था सहज मौलिक अपेक्षा है। जागृति जीवन सहज अधिकार है। यही जीवन क्षमता के रूप में विद्यमान रहता है। यही योग्यता पात्रता के रूप में अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होते हैं। इसी विधि से कायिक–वाचिक, मानसिक, कृत–कारित, अनुमोदित भेदों से सम्पूर्ण मानव **सम्बन्ध** बनाम समाज **सम्बन्ध** दूसरा व्यवस्था सम्बन्ध, तीसरा नैसर्गिक **सम्बन्धों** को जानते, मानते, पहचानते और निर्वाह करते हैं।

परिवार सम्बन्ध, मानव **सम्बन्ध**, समाज **सम्बन्ध** ये सब आवश्यकतानुसार उपयोग करने का नाम है। सबका निर्देशित अर्थ, चिन्हित अर्थ अखण्ड समाज ही है। अखण्ड समाज का पहचान, लक्ष्य, प्रयोजन, प्रणाली, पद्धति,

नीतियों के समानता से है। मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व होना ही है। प्रयोजन व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी है। मानवीयतापूर्ण पद्धति न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य–संयम और शिक्षा–संस्कार में पूरकता प्रणाली परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रणाली और नीति तन, मन, धन रूपी अर्थ के सुरक्षा हैं, यही मानव का मौलिक अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन है। अस्तित्व नित्य प्रकाशमान होने के कारण अस्तित्व में हर वस्तु का प्रकाशित रहना स्वाभाविक है। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन अस्तित्व सहज ही है। अस्तित्व स्वयं ही नित्य अभिव्यक्ति व संप्रेषणा है। मानव अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान व अभिव्यक्ति है। सभी अभिव्यक्तियाँ सभी अवस्थाओं में अभ्युदय के अर्थ में ही व्यक्त हैं। इस प्रकार अस्तित्व स्वयं में ही प्रकाशित, अभिव्यक्त व सम्प्रेषित है। इस क्रम में यह समझ में आता है कि अस्तित्व निरंतर स्पष्ट व प्रकाशमान है। अस्तित्व ही नित्य संप्रेषणा है जो नित्य समाधान नित्य व्यवस्था है। अस्तित्व ही नित्य व्यक्त अभिव्यक्त हैं क्योंकि अस्तित्व सदा–सदा स्थिर, शाश्वत है, नित्य वैभव है। इन्हीं तथ्यों से यह भी ज्ञात होता है कि अस्तित्व में, से, के लिये कोई रहस्य व कोई अवरोध एवं संघर्ष नहीं है। विरोध नहीं है, विद्रोह नहीं है, विपन्नता नहीं है। बड़े–छोटे के रूप में कुंठा–निराशा नहीं है। युद्ध व शोषण नहीं है। ये सभी नकारात्मक पक्ष मानव के द्वारा अपनाया हुआ भ्रमित परम्परा का देन है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 193–195)**

- इस विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो गया कि जीवन जागृतिपूर्वक ही हर मानव स्वायत्तता पूर्वक परिवार मानव होने का प्रमाण सहित स्वयं में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करता है। जीने की कला दूसरे विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण विधि मानव सहज परिभाषा क्रम से ही मानवीयता का व्याख्या सहज ही सार्थक हो जाता है। सार्थक होने का तात्पर्य अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था क्रम में भागीदारी है। अखण्ड समाज सूत्र परिवार विधि से सार्थक होना पाया जाता है। परिवारों का स्वरूप और विशालता को दश सोपानों में स्पष्ट किया गया है। इसी के साथ–साथ दश सोपानों में सभा–स्वरूप व्यवस्था कार्य, कर्तव्य, दायित्व को स्पष्ट किया है। परिवार क्रम में मूल्य, चरित्र, नैतिकता अविभाज्यता को सहज ही स्पष्ट किया जा चुका है। दश सोपानीय समाज रचना और व्यवस्था गति अपने–आप में एक दूसरे को संतुलित करने के अर्थ से हम अभिहित होते हैं। जैसेः:– परिवार– जिसका सूत्र **सम्बन्ध** मूल्य, मूल्यांकन, उभय–तृप्ति और परिवारगत उत्पादन–कार्य में पूरकता फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन है। परस्पर परिवार व्यवस्था में विनिमय एक अनिवार्य कार्य है। इसी के साथ सीखा हुआ को सिखाने, किया हुआ को कराने, समझा हुआ को समझाने का कार्य प्रणाली सदा–सदा जागृत मानव पंरपरा में वर्तमान रहता ही है। इसी क्रम में सर्वमानव सुख, सर्वमानव शुभ और सर्वमानव समाधान सर्वसुलभ होता ही रहता है। इस स्थिति को पाना सर्वमानव का अभीप्सा है। अतएव सुलभ होने का मार्ग सुस्पष्ट है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 196–197)**

- जागृतिपूर्वक ही सम्बन्ध स्वीकृति अवधारणा में हो पाता है यही एक संस्कार है। ऐसी अवधारणा ही **सम्बन्धों** का प्रयोजन सहज सत्य के रूप में स्वीकृत होना देखा गया। यह क्रिया जागृत जीवन शक्तियों का दर्शन क्रियाकलाप के फलस्वरूप घटित होना देखा गया है। जागृत जीवन बल ही मूल्य और मूल्यांकन में प्रस्तुत होता है। फलस्वरूप समाधान समीकृत (फलित) होता है। यही मानव धर्म सहज सुख का स्रोत है। यह स्रोत प्रत्येक मानव में जागृत जीवन के रूप में वैभवित होना पाया जाता है। जीवन जागृत होने में कोई भी, कितना भी भ्रमित परिकल्पनाएं बाधा का कारण नहीं हो पाता है, जैसे–विविध रंग, जाति, वर्ग, देश, भाषा, लिंग, नस्ल। यह सभी मिलकर अथवा किसी एक जो मानव में विविधता का कल्पना समा लिया वह सब जागृति के सम्मुख होने के स्थिति में अपने आप विलय हो जाता है। एक सूत्र में सभी व्यर्थ–अनर्थ, पाश्वीय–राक्षसी कल्पनायें मानवीयता सहज जागृति के प्रभाव के साथ साथ ही सभी भ्रम, निभ्रम (जागृति) में विलय हो जाते हैं। जैसे एक गणित का प्रश्न का, सही उत्तर पाने के लिये प्रक्रिया–प्रयास तब तक किया जाता है जब तक सही उत्तर पाया नहीं गया। जब सही उत्तर समझ में आ जाती है उसी के साथ–साथ गलती करने वाला विविध भ्रम अपने–आप उत्तर ज्ञान में विलय हो जाता है। विलय होने का तात्पर्य इतना ही है जिसका प्रभाव शेष नहीं निशेष हो जाता है। (**अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 197–198**)
- **सम्बन्ध** का स्वीकृति अथवा अवधारणा अपने स्वरूप में समाधान और उसकी निरंतरता ही है। यह विज्ञान और विवेक सम्मत तर्क विधि से बोध होता है। ऐसा बोध सम्पन्न होने का अधिकार, प्रत्येक जीवन में समाहित रहता ही है। यहाँ यह भी स्मरण में रहना आवश्यक है कि जीवन ही दृष्टा, कर्ता और भोक्ता होता है। यह जागृतिपूर्वक ही अनुभव गम्य होता है क्योंकि बोध के अनन्तर अनुभव ही एकमात्र जागृति के लिये सोपान है। अध्ययनपूर्वक अस्तित्व बोध जीवन बोध और संबंध बोध होना देखा गया है। इन्हीं सम्बन्ध बोध में प्रयोजन रूपी समाधान को व्यक्त करना ही अथवा प्रमाणित करना ही मूल्यों का निर्वाह है। समाधान अपने स्वरूप में सुख ही है। यही समाधान सम्पूर्ण आयाम, कोण, परिप्रेक्ष्य, देश, कालों में प्रमाणित होने के क्रम में ही सर्वतोमुखी समाधान कहलाता है। हर विधाओं में प्रमाण सहज अभिव्यक्ति अनुभवमूलक विधि से ही सम्पन्न होना पाया जाता है। इसलिये सम्बन्ध अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में अनुभव होना स्वाभाविक है और जागृति का साक्ष्य है। (**अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 198**)
- 3. अभ्यास विधि से जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना ही सम्पूर्णता है। दूसरे भाषा में अनुभव और अभिव्यक्ति ही सम्पूर्णता है। स्वीकारा गया सम्पूर्ण अवधारणाएँ प्रमाणित होने के लिये उत्सवित रहता ही है। ऐसी बोध सहज उत्सव क्रियाकलाप को प्रखर प्रज्ञा के नाम से इंगित कराया गया। सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास का प्रयोजन प्रज्ञा प्रखर होना ही है। जागृति क्रम में जानना, मानना, पहचानना अध्ययन विधि से अध्ययनपूर्वक निर्देशन सहित बोध होना पाया जाता है। इसी क्रम में जागृत परंपरा प्रदत्त विधि से **सम्बन्धों** का पहचान, प्रयोजनों का बोध स्वाभाविक रूप में होना पाया जाता है। यह हर मानव **संबंध**, नैसर्गिक **सम्बन्धों** में निहित मूल्यों, मूल्यांकन, प्रयोजन के रूप में समझ में आता है। यही **सम्बन्ध** और मूल्य बोध होने की विधि है।

सम्बन्ध और मूल्य अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में ही होना स्पष्ट हो चुका है। शरीर और जीवन का संयोग भी सह–अस्तित्व सहज सूत्र से ही सूत्रित है। सर्वमानव भी सह–अस्तित्व में ही जीवन जागृति को प्रमाणित करने का कार्य करता है, या करना चाहता है या करने के लिये बाध्य है। सह–अस्तित्व स्वयं मानव में होने वाले अनुभव सहज स्वीकृति है। इन स्वीकृति के साथ ही प्रमाणित होने के क्रम में **सम्बन्ध** मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति प्रमाणित होना पाया जाता है। यही चरित्र का चरमोत्कर्ष प्रयोजन है। ऐसे चरित्र के आधार पर ही नैतिकता स्वाभाविक रूप में सार्थक होता है। इसे भली प्रकार से परखा गया है, जीकर देखा गया है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 198–199)**

- माता–पिता :– **सम्बन्धों** का क्रम पहले सूची में प्रस्तुत किया जा चुका है। उसमें से पहला सम्बन्ध माता–पिता और पुत्र–पुत्री **संबंध** है। हर शिशु, हर वृद्ध जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही होना देखा गया है। शरीर विधा से मानव परंपरा की निरंतरता के लिये एक शरीर रचना वह भी वंशानुगत विधि से सम्पन्न होना पाया जाता है। हर संतान के लिए माता–पिता का सम्बन्ध इसी आधार पर होना पाया जाता है। इसके अनंतर शरीर संरक्षण, पोषण के आधार पर माता–पिता के सम्बन्धों को पहचाना गया है। यह पोषण और संरक्षण रूपी अपेक्षा शिशुकालीन संबोधन में ही निहित रहना पाया जाता है। जैसे ही शिशुकाल से कौमार्य अवस्था शरीर के आयु के अनुसार गणना हो पाता है ऐसी स्थिति में पुत्र–पुत्री के सम्बोधन में भी अपेक्षाएँ आरंभ होते हैं। ये अपेक्षाएं मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, भाषा के आधार पर होना पाया जाता है। माता–पिता शिशुकाल में शिशु से कोई अपेक्षा नहीं करते। यह सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है। जैसे ही शिशु काल से यौवन काल आता है, (शरीर के आधार पर ही इस समय को पहचाना जाता है), तब तक माता–पिता की अपेक्षाएँ और बढ़ जाती हैं विशेषकर जीवन जागृति सहज संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के अनुरूप देखना चाहते हैं। यह घटित होना सफलता का द्योतक है। इसी के साथ मानवीय शिक्षा–संस्कार जुड़ा ही रहता है। फलस्वरूप हर अभिभावकों से अपेक्षित अपेक्षाएँ सभी संतानों में सफल होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। इसका कार्यसूत्र मानवीय शिक्षा–संस्कार सुलभ होना और उसका मूल्यांकन, परामर्श, प्रोत्साहन परिवार में हो पाना, मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज हो जाता है। इसका स्वरूप अर्थात् हर विद्यार्थी का स्वरूप शिक्षा–संस्कार काल में ही स्वायत्त मानव के रूप में परिणित और परिवार में प्रमाणित हो जाता है। इसलिये परिवार में स्वायत्तता का अनुभव सहज हो जाता है।

जागृत मानव परंपरा में हर अभिभावक स्वायत्त रहता ही है। ऐसा जागृत अभिभावक अपने संतान में जागृति को अथवा जागृति सहज कार्य–व्यवहार को प्रमाणित करता हुआ देखना चाहते हैं। यह स्वाभाविक है। यही परम संगीतमय कार्यक्रम का आधार होता है और सर्वशुभ कार्यों में भागीदारी निर्वाह करने में सहज होता है। इसी क्रम में शरीर पोषण–संरक्षण का फलन समाज गति रूप में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने में सहज होता है।

शिक्षा ही संस्कार रूप में जब प्रतिष्ठित होता है उसी मुहूर्त से जीवन जागृत होना स्वाभाविक होता है। जागृति पूर्ण मानव परिवार का वातावरण पाकर प्रमाणित होने की आवश्यकता–संभावना बलवती होती है। यही समाज गति का मूलसूत्र है।

सम्बन्धों का पहचान सदा–सदा ही अनुभव महिमा और गरिमा होना पाया जाता है। महिमा का तात्पर्य स्वीकृत और अपेक्षित लक्ष्य की ओर गति और लक्ष्य प्राप्ति के रूप में होना देखा गया है। सर्वशुभ ही मानव परंपरा में, से, के लिये समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व ही है। यही जीवन जागृति है। जीवन में, से, के लिये सुख–शांति, संतोष–आनन्द है। सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द यह जीवन सहज शक्तियों और बलों में पूरकता का ही फलन है। सर्वशुभ का प्रमाण जागृत जीवन शक्ति और बलों की सम्मिलित अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन है। इस विधि से हर परिवार मानव अपने सफलता और समग्र मानव के सफलता को मूल्यांकित कर पाता है। यही गरिमा का तात्पर्य है।

हर जागृत, स्वायत्त परिवार मानव ही अभिभावक के रूप में होना स्वाभाविक है अथवा माता–पिता के रूप में होना स्वाभाविक है। ऐसे अभिभावकों में उदारता और दयापूर्ण कार्य–व्यवहार स्वाभाविक रूप में बना रहता है। मानव अपने स्वायत्तता के साथ ही ऐसी अर्हता से सम्पन्न हुआ रहता है। परिवार में समाधान और समृद्धि वैभव के रूप में रहता ही है। ऐसा वैभव हर परिवार में मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति से सर्वसुलभ हो जाता है। इस क्रम और विधि से मानव परम्परा में कोई विपन्नता का कारण शेष नहीं रह जाता। परिवार मानव के स्वरूप में यह वैभव सदा–सदा प्रमाणित रहता ही है। न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता हर परिवार मानव का प्रमाण अथवा अभिव्यक्ति है। समृद्धि, समाधान के योगफल में ही मानव परंपरा का वैभव प्रमाणित होता है। इससे कम में सम्भावना ही नहीं, इससे अधिक की आवश्यकता ही नहीं। समाधान–समृद्धि सहज हर अनुभव, के अनुरूप हर अभिभावक अपने संतानों में संस्कार डालने में समर्थ होते ही हैं। क्योंकि समाधान–समृद्धि, दिशा और प्रक्रिया से हर अभिभावक गुजरे रहते हैं फलस्वरूप उसी दिशा में संस्कार आरोपण सम्बोधन नाम से चलकर अवधारणा पर्यन्त सूत्रित होना, रहना, करना जागृति सहज गति है। यही प्रमुख स्रोत है जो पीढ़ी से पीढ़ी तृप्त होने का संधान है। संधान का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अवधारणाओं को स्थापित करने और होने से है। यही पीढ़ी से पीढ़ी के मध्य तृप्ति स्रोत है। इसी स्रोत का धारक वाहक हर अभिभावक होना जागृत परंपरा का वैभव है।

जागृत पंरपरा में पीढ़ी से पीढ़ी संगीतमयता का प्रवाह होना समीचीन रहता ही है। जागृति पंरपरा में ही अभय और सह–अस्तित्व का प्रमाण, ग्राम परिवार और विश्व परिवार रूपी अखण्ड समाज में, ग्राम सभा परिवार और विश्व परिवार सभा रूपी व्यवस्था और व्यवस्था क्रम में सदा–सदा के लिये वर्तमान में विश्वास और सह–अस्तित्व प्रमाणित होना समीचीन रहता ही है। इस प्रकार परंपरा के निरंतरता की संभावना स्पष्ट है।

व्यवस्था सहज विधि से नियमपूर्ण कार्य और समाज विधि से न्यायपूर्ण व्यवहार प्रमाणित होता है। यह परस्पर पूरक होने के आधार पर समाधान सहज ही वर्तमान वैभव सम्पन्न होता है। इसी क्रम में मानव सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होने, करने–कराने योग्य होता है। नियमपूर्ण कार्यकलाप नैसर्गिकता के साथ संयोजित रहना देखा गया है और न्यायपूर्ण व्यवहार परस्पर मानव में सार्थक होना देखा गया है। नियम का संतुलन न्याय से, न्याय का संतुलन नियम से वैभवित होना ही समाधान और उसकी निरंतरता है। समाधान मानव सहज अनुभव है। नियम और न्याय भी अनुभव गम्य तथ्य है। इस प्रकार अनुभव मूलक विधि से ही मानव पंरपरा समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व रूपी वैभव से वैभवित रहना सहज है। यही जागृत मानव परंपरा का सम्पूर्णता है। इस क्रम में प्रमुख मुद्दा और प्रमाण परिवार में समाधान, समृद्धि समस्त परिवार के परस्परता में अभय, सह–अस्तित्व सार्थक होने का, वर्तमान में चरितार्थ होने की स्थिति और गति ही जागृत मानव पंरपरा है। इस प्रकार सम्मिलित रूप में सम्पूर्ण मानव में सर्वशुभ उक्त चारों वैभव जागृति के साथ सूत्रित रहता है। अतएव उदारता और दयापूर्ण कार्य–व्यवहार हर मानव में, हर सम्बन्धों में और हर पदों में व्यवहृत होना स्वाभाविक है। इसलिये हर संतान के साथ उदारता और दयापूर्ण कार्य सम्पन्न होना स्वयं स्फूर्त होता ही है। यही माता–पिता के साथ प्रौढ़ संतान का कार्य–व्यवहार कृतज्ञता पूर्वक, उदारता सहित सम्पन्न होना स्वाभाविक है। इस प्रकार जागृत परंपरा सहज संगीत और स्वर समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में वैभवित होना पाया जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 199–204)**

2. भाई–बहन – भाई–भाई, भाई–बहन, बहन–बहनों के बीच उनके सम्बन्ध और परस्पर परीक्षण कार्यकलाप जागृतिगामी दिशा, व्यवहार और कार्यप्रणाली के साथ गतिशील होता है। यही परस्पर पूरकता विधि को प्रमाणित करता है। इसका स्रोत मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार परंपरा ही है। बाल्यावस्था से ही घर परिवार, शिक्षण संस्थाओं में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार सुलभ होना सहज रहता ही है। इसके फलस्वरूप प्राप्त शिक्षा–संस्कार और कल्पनाशीलता–कर्म स्वतंत्रता के योगफल में मुखरण होना स्वाभाविक क्रिया है। मुखरण होने का तात्पर्य हर विद्यार्थी अपने–अपने ढंग से प्रकाशित–संप्रेषित होना ही है।

प्रत्येक जीवन, मानव पंरपरा में जागृति और जागृतिपूर्ण होने और प्रमाणित होने के उद्देश्य से ही इस शरीर को जीवन्त बनाए रखने, शरीर संवेदना का दृष्टा होने के अर्हता सहित शरीर यात्रा को आरंभ करता है। परंपरा जागृत रहने के आधार पर ही जीवन जागृति पंरपरा बनना सहज संभव है। जागृत परंपरा का स्वरूप पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। पुनश्च यहाँ स्मरण के लिये अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन फलत: अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में अनुभव सम्पन्नता के प्रामाणिकता सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में, से, के लिये प्रयोजन और प्रक्रिया विधि से बोधगम्य कराने वाली अध्ययन, अध्यापन, शिक्षण, प्रशिक्षण (पारंगत हुआ को सिखाना, किया हुआ को कराना) विधि से अस्तित्व सहज व्यवस्था रूपी वैभव की

अवधारणाओं को स्थापित करना ही शिक्षा–संस्कार का प्रधान प्रभाव और परंपरा है। यही सर्वप्रथम मानवकृत वातावरण का महिमा है। यह जागृति का द्योतक है। इस क्रम में हर व्यक्ति सह–अस्तित्व में, से, के लिये आश्वस्त, विश्वस्त होना एक आवश्यकता रहता ही है। इसके आधार पर समग्र अस्तित्व का अवधारणा हर मानव जीवन में स्थापित होता है। प्रत्येक मानव स्वयं को समझने के क्रम में मैं अपने में क्या हूँ ? कैसा हूँ ? क्या चाहता हूँ ? इस प्रकार के प्रश्न चिन्ह विद्यार्थियों में लुप्त–सुप्त–प्रकट कार्य होना पाया जाता है। इसका उत्तर स्वयं में सह–अस्तित्व सहज अवधारणा के रूप में स्थापित होना पाया जाता है जैसा –

1. मैं मानव हूँ – मैं मनाकार को साकार करने वाला व मन: स्वस्थता का आशावादी व प्रमाणित करने वाला हूँ।
2. मैं ज्ञानावस्था की इकाई हूँ।
3. मैं शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप हूँ।
4. मैं जीवन सहज रूप में जानने–मानने–पहचानने–निर्वाह करने का क्रिया कलाप हूँ। शरीर रूप में पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों व उसके क्रियाकलाप का दृष्टा हूँ।
5. मैं मानवत्व सहित व्यवस्था हूँ।
6. मैं बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि सम्पन्न हूँ अथवा सम्पन्न होना चाहता हूँ।
7. मैं जीवन जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता चाहता हूँ, साथ ही भ्रम, भय व समस्याओं से मुक्त होना चाहता हूँ।
8. मैं सार्वभौम व्यवस्था व अखण्ड समाज में भागीदार होने का अधिकारी होना चाहता हूँ, स्वानुशासित होना चाहता हूँ एवं प्रत्येक मानव को ऐसा होता हुआ देखना चाहता हूँ।

उक्त सभी आशय प्रत्येक भाई–बहनों में गतिशीलता सहज विधि से विशेषकर विचार शैली और वांङ्मय गति के लिये प्रधान बिन्दु है। इन बिन्दुओं के आधार पर एक–दूसरे के साथ वार्तालाप, विश्लेषण पूर्वक सम्पन्न होना एक आवश्यकता है। इसका उत्तर पाना भी परमावश्यक है। इसी के साथ–साथ विश्लेषणों को प्रयोजन सम्बद्ध होना महत्वपूर्ण बिन्दु है। ऊपर कहे आठ बिन्दुओं में से प्रयोजन भी इंगित होता है। प्रयोजनों को जानना, मानना ही विवेचना का तात्पर्य है। विश्लेषण से संगतीकरण प्रयोजन, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हर विश्लेषण–सूत्र, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज क्रियाकलापों को वर्णित, व्याख्यायित करना ही प्रयोजन है। ऐसे प्रयोजनों के साथ ही सम्पूर्ण विज्ञान सहज अध्ययन सार्थक होना पाया जाता है। जीवन सहज विधि से मानव विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली, पद्धति, नीति सम्पन्न होना पाया जाता है। सह–अस्तित्व विधि से ही सम्पूर्ण प्रयोजन पूरकता, विकास, संक्रमण, जीवन, जीवनीक्रम, जीवन का कार्यक्रम, जागृति और जागृति का निरंतरता स्वाभाविक रूप में प्रयोजनों के अर्थ में ही स्पष्ट हो जाता है। जैसे – एक परमाणु में एक से अधिक

अंश निश्चित दूरी में रहकर कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। फलस्वरूप परमाणु एक व्यवस्था के स्वरूप में मौलिक प्रस्तुति है। इसी प्रकार विभिन्न संख्यात्मक अंशों से गठित परमाणुओं का; रचना कार्य के योगफल में व्यवस्था के रूप में वर्तमान रहना स्पष्ट हुआ है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में अथ से इति तक, सह–अस्तित्व ही सम्बन्धों का मूल सूत्र है। परमाणु अंशों का संबंध और उसका निर्वाह के समानता में परमाणु व्यवस्था, परमाणुओं के परस्पर संबंध और उसका निर्वाह बराबर अणु व्यवस्था; अणु–अणु के साथ परस्पर सम्बन्ध और उसका निर्वाह बराबर रचना व्यवस्था। हर रचनाएँ विरचित होते हुए पुन:रचना के लिये पूरक होना पाया जाता है।

जीवन और शरीर सम्बन्ध उसका निर्वाह वंशानुषंगीयता और व्यवस्था; जीवन और शरीर का परस्पर संबंध + जीवन जागृति सहज निर्वाह = संस्कारनुषंगीय अभिव्यक्ति एवं मानवीय व्यवस्था है।

मानवीयता सहज सभी सम्बन्धों का प्रधान प्रमाण व्यवस्था के रूप में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना ही है। इस परम लक्ष्य को सदा–सदा परंपरा निर्वाह करने के क्रम में ही सभी प्रकार के सम्बन्धों को पहचानना मानव में, से, के लिये अनिवार्य है। इससे स्पष्ट हुआ है कि अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में व्यवस्था में ं भागीदारी को प्रकाशित करता है। अस्तित्व में मानव अविभाज्य होने के कारण मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना ही जागृति, समाधान, सर्वतोमुखी समाधान, व्यवस्था उसकी निरंतरता ही मानव परंपरा में परम प्रयोजन है। यही महिमा सर्वमानव शुभ के रूप में प्रमाणित हो जाती है। यही सह–अस्तित्व पूर्ण परिवार, समाज पुन: अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था स्वरूप में स्पष्ट होना पाया जाता है। इन्हीं उद्वेश्यों विधियों में जागृत होना ही शिक्षा–संस्कार, सम्बन्ध, सम्बन्धों में परस्पर अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, कार्य–व्यवहार का प्रकाशन ही प्रधान रूप में मित्र, भाई–बहिन सम्बन्धों में आचरण, परीक्षण, मूल्यांकन के लिये तथ्य है।

उक्त तथ्यों का हृदयंगम और पारंगत विधियों से परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना स्वाभाविक है। यही मानव परंपरा का अनिवार्य आवश्यकता, सार्थकता है। इस प्रकार हर मित्र, हर भाई, हर बहिन समृद्धिपूर्वक व्यवस्था में जीना ही उद्वेश्य है। इस विधि से भाई–बहन सम्बन्धों में शिशु कौमार्य अवस्था से ही पूरकता को पहचानने का क्रम बना हुआ है। अन्य सम्बन्धों में कुछ आयु के बाद ही पूरकता संबंध बन पाता है। यथा गुरू–शिष्य सम्बन्ध कुछ आयु के बाद आरंभ होता है। पति–पत्नी संबंध कुछ आयु के बाद आरंभ होता है। भाई–बहन संबध शिशुकाल से ही इंगित–निर्देशित हुआ रहता है। इनमें संस्कारों का समावेश रहना सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज सहज मानसिकता के लिए अर्पित होता ही रहता है। जैसा – हर लड़कियों को बहन के रूप में सम्बोधन करने का क्रम चाहे अपने परिवार की हो चाहे अड़ोस–पड़ोस, गाँव की क्यों न हो और भाई का सम्बोधन से सम्बन्धों का प्राथमिक अथवा आरंभिक परिचय इंगित होना पाया जाता है फलस्वरूप क्रम से विचार, इच्छा, चिन्तन, बोध और अनुभव में प्रमाणित होना पाया जाता है। सम्बोधन आरंभिक संस्कार है, इसका प्रधान क्रिया उच्चारण है। उच्चारण के अनन्तर रूप, कार्य, व्यवहार, आचरणों के आधार पर गुण स्वभावों को पहचानना संभव हो जाता है। यह हर

शिशु में कार्यरत जीवन सहज महिमा है। धर्म बोध अध्ययन विधि से सम्पन्न हुआ रहता ही है। गुण, स्वभाव, कार्य–व्यवहार में निहित रहता है। उसके प्रमाणों, साक्ष्यों के आधार पर व्यवस्था अथवा समाधान कारक होना मूल्यांकित होता है। यही मूल्य और मूल्यांकन का महिमा है। उभय तृप्ति पाने का विधि भी यही है। अतएव शिशु, बाल्य, किशोर अवस्थाओं से ही भाई–बहनों और मित्रों का नैसर्गिकता और उसकी निरंतरता होने के आधार पर परस्पर मूल्यांकन अति सहज है। मूल्यांकन वास्तविक और सहायतापूर्ण होना स्वाभाविक है। यही पूरकता का परम उद्देश्य भी है। इस विधि से सुस्पष्ट है मित्र एवं भाई–बहन का सम्बन्ध सदा–सदा ही मूल्यांकन प्रणाली में गतित होना पाया जाता है। उभय जागृति के लिये यही सर्वोत्तम प्रणाली है। स्वाभाविक रूप में मानव परंपरा में एक भाई को एक बहन, एक मित्र को एक मित्र समीचीन रहता ही है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 204–211)**

- 3. **मित्र–मित्र सम्बन्ध** – जीवन ज्ञान सम्पन्नता के अनन्तर सुस्पष्ट हो जाता है कि सभी सम्बन्ध जीवन जागृति और उसका प्रमाणीकरण प्रणाली का ही पहचान है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान सम्पन्न होने के उपरान्त सम्पूर्ण प्रकार के सम्बन्धों, मूल्यों, मूल्यांकनों और उभयतृप्ति का पहचान, स्वीकृति मानसिकता, गति, प्रयोजन पुन: पहचान, मूल्यांकन क्रम आवर्तित रहता ही है। यह अनुस्यूत प्रक्रिया है। जीवन ही दृष्टा–कर्ता–भोक्ता होने का तथ्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान में पारंगत होने के फलन में सह–अस्तित्व में वर्तमानित रहता है। इसी आधार पर मित्र सम्बन्ध परस्पर अभ्युदय के लिये कामना, कार्य, मूल्यांकन करने में समर्थ रहता ही है। मित्र सम्बन्ध में भाई–भाई, बहन–बहन सम्बन्ध के सदृश जाँच, पड़ताल, विश्लेषण, निष्कर्ष, मूल्यांकन सहायक होना पाया जाता है। दूसरे भाषा में सहायक होना ही सार्थकता है। हर सम्बन्ध कम से कम दो व्यक्तियों के बीच होना पाया जाता है। भाई और मित्र सम्बन्ध में समानता है। इसको आमूलत: विश्लेषण करने पर लड़कों के साथ लड़कों की मित्रता, लड़कियों की मित्रता लड़कियों से हो पाता है। क्योंकि आशय बहिन–बहिन और भाई–भाई का ही सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का पावन रूप उभय जागृति, कर्तव्य, दायित्व उसकी गति प्रयोजन और उसका मूल्यांकन विधि से ही मित्रता और भाई–बहन सम्बन्ध सदा–सदा ही मानव परंपरा में पावन रूप में उपकार विधि और उसका शोध, निष्कर्ष को प्रस्तुत करते ही रहेंगे। पावन का तात्पर्य व्यवस्था के अर्थ में है। यही उपकार का स्वरूप है। यद्यपि सभी सम्बन्धों में आशित, इच्छित, लक्षित और वांछित तथ्य समाधान, समृद्धि अभय, सह–अस्तित्व ही है। इस आशय अथवा आवश्यकता की आपूर्ति और इसके सर्वसुलभ होने के लिये समझना–समझाना, करना–कराना, सीखना–सीखाना स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसी क्रम में समाज गति, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी, स्वाभाविक रूप में मूल्यांकित होता है। ऐसे मूल्यांकन प्रणाली से ही मानव परंपरा में मानवीयतापूर्ण प्रणाली, पद्धति, नीति का दृढ़ता सुखद, सुन्दर, समाधान, समृद्धिपूर्वक प्रमाणित होना नित्य समीचीन रहता है। ऐसे सर्ववांछित उपलब्धि के लिये मित्र संबंध अतिवांछनीय होना पाया जाता है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 211–212)**

- 4. **गुरू–शिष्य सम्बन्ध** – इस सम्बन्ध में सम्बोधन का आशय सुस्पष्ट है। एक समझा हुआ, सीखा हुआ, जीया हुआ का पद है दूसरा समझने, सीखने, करके जीने का इच्छा, प्रवृत्ति जिज्ञासा का प्रस्तुति, ऐसे जिज्ञासु को शिष्य अथवा विद्यार्थी कहा जाता है, नाम रखा जाता है, सम्बोधन भी किया जाता है। दूसरे को गुरू आचार्य नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रकार गुरू का तात्पर्य प्रामाणिकता पूर्ण व्यक्ति का सम्बोधन। प्रामाणिकता का स्वरूप, समझदारी को समझाने व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में जीते हुए रहते हैं, दिखते हैं। फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण, मानव का परिभाषा हर करनी में, कथनी में व्याख्यायित रहता है। यही गुरू के स्वरूप को पहचानने की विधि है। समझदारी का तात्पर्य सुस्पष्ट हो चुका है जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत रहना। उसका प्रमाण अध्ययन प्रणाली से बोधगम्य करा देना ही समझाने का तात्पर्य है। मानव सहज जागृति परंपरा में स्वाभाविक ही हर अभिभावक जागृत रहना पाया जाता है। घर, परिवार, बंधु–बान्धवों से भी सम्बोधन पहचान सहित कितने भी भाषा बोलने के लिए सीखाए रहते हैं उन सबमें मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार सूत्रों से अनुप्राणित सार्थक विधि रहेगा ही। विद्यार्थी विद्यालय में पहुँचने के पहले से ही मानवीयतापूर्ण संस्कारों का बीजारोपण होना स्वाभाविक है। यही जागृत परंपरा का मूल प्रमाण है।

शिक्षा–संस्कार में अथ से इति तक मानव का अध्ययन प्रधान विधि से अध्यापन कार्य सम्पन्न होना सहज है। अध्ययन मानव का, मानव में, से, के लिये ही होना दृढ़ता से स्वीकार रहेगा। प्रत्येक मानव के अध्ययन में शरीर और जीवन का सुस्पष्ट बोध सुलभ होना पाया गया है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन निबद्ध विधि से अध्ययन सुलभ होने के कारण अस्तित्व मूलक मानव का पहचान, मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति समेत पारंगत होने की विधि रहेगी। इसी विधि से हर आचार्य विद्यार्थियों को शिक्षण–शिक्षा पूर्वक अध्ययन कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ रहते हैं। जिसमें उनका कर्तव्य और दायित्व प्रभावशील रहना स्वाभाविक है। क्योंकि हर आचार्य शिक्षा, शिक्षण, अध्ययन का प्रमाण स्वरूप में स्वयं प्रस्तुत रहते हैं इसलिये यह सार्थक होने की संभावना अथवा निश्चित संभावना समीचीन रहता है।

हर आचार्य स्वायत्तता विधि से परिवार में प्रमाणित रहते ही हैं। यही सर्वमानव का वांछित, आवश्यक और नित्य गति रूप जो अपने–आप में सुख–सुन्दर–समाधान है जिसका फलन समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है। जिन प्रमाणों के आधार पर जीवन तृप्ति ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द के नाम से ख्यात है। यही भ्रम–मुक्ति गतिविधि प्रमाण के रूप में हर विद्यार्थी के रूप में समीचीन रहता है। इस प्रकार भ्रम–मुक्त परंपरा का स्वरूप, कार्य, महिमा, प्रयोजन प्रमाण के रूप में रहना ही शिक्षा–संस्कार परंपरा का वैभव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में गतिशील रहता है।

प्रत्येक स्वायत्त आचार्य व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना देखा जाता है। फलस्वरूप हर विद्यार्थी ऐसे सुखद स्वरूप में जीने के लिये प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। जागृत मानव

सार्वभौमिकता के अर्थ में स्वायत्त मानव के रूप में ही होना देखा गया। स्वायत्त मानव का शिक्षा–संस्कार विधि से प्रमाणित होना और स्वायत्त मानव का प्रमाण परिवार में होना, परिवार मानव का प्रमाण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो चुका है कि सार्वभौम व्यवस्था का संतुलन अखण्ड समाज रचना से और अखण्ड समाज का संतुलन सार्वभौम व्यवस्था से है। इस विधि से शिक्षण संस्था (अध्ययन केन्द्रों) का स्वरूप अभिभावकों से नियंत्रित रहना और अध्ययन केन्द्र (शिक्षण संस्थाओं) का प्रयोजन कार्यकलाप जागृतिपूर्ण आचार्यों से नियंत्रित रहना देखा गया है। इसका तात्पर्य यही है हर अध्ययन केन्द्र में आचार्यों को व्यवसाय में स्वावलंबी रहने के लिये मानवीय आवश्यकता संबंधी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये योग्य व्यवस्था बनी रहेगी। उसे सदा–सदा बनाये रखना ही अभिभावकों से नियंत्रित अध्ययन केन्द्रों का स्वरूप है। अध्ययन केन्द्र में स्वाभाविक ही आवश्यकतानुसार भवन, अध्ययन और अध्यापन के लिये आवश्यकीय साधन और आचार्यों को व्यवसाय में स्वालंबन को प्रमाणित करने योग्य कृषि संबंधी, अलंकार संबंधी, गृह निर्माण संबंधी, पशुपालन संबंधी, ईंधन नियंत्रण संबंधी, ईंधन सम्पादन संबंधी, ईंधन नियोजन संबंधी, दूरश्रवण संबंधी, दूरगमन संबंधी और दूरदर्शन संबंधी यंत्र–उपकरणों को निर्मित करने योग्य साधनों को बनाये रखना ही व्यवसाय में स्वालंबन का प्रमाणस्थली के रूप में उपयोगी रहेगा।

अध्यापन कार्य के लिये धन–वस्तु को विद्यार्थियों को शिक्षित, प्रशिक्षित, अध्ययनपूर्ण कराने के लिए एकत्रित की जाएगी। इसे अभिभावक समुदाय तय करेंगे, एकत्रित करेंगे। भवन, प्रयोग सामग्री, साधनों को संजोए रखेंगे। इसका नियंत्रण, परिवर्धन, परिवर्तन, नवीनीकरण आदि कार्यों में स्वतंत्र रहेंगे। आचार्य कुल विद्यार्थियों को परिवार–मानव और व्यवस्था–मानव में प्रमाणित होने योग्य स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करेंगे जो स्वयं अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ हो जायेगा एवं दूसरों को कराएगा, करने के लिये सम्मति देगा।

अध्ययन संस्थाओं की अभीप्सा, स्वरूप, लक्ष्य, सामान्य क्रिया प्रणाली स्पष्ट हो चुकी है। मानव कुल में समर्पित संतानों को शिक्षा–संस्कार की अनिवार्यता होना पहले से स्पष्ट है। इसे सार्थक और सुलभ बनाने के क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को दस सोपानों में स्पष्ट किया जा चुका है। व्यवस्था की निरंतरता में प्रधान आयाम मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार, पद्धति, प्रणाली, नीति ही है। शिक्षित हर व्यक्ति स्वायत्त होना सहज है। स्वायत्तता ही शिक्षित और संस्कारित व्यक्ति का प्रमाण है। ऐसी स्वायत्तता सर्वमानव स्वीकृत तथ्य है। इसलिये सार्वभौम नाम प्रदान किये हैं। सार्वभौम का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृत है, स्वीकृति योग्य है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव का स्वीकृति परिवार और व्यवस्था में भागीदारी करने के लक्ष्य से स्वीकृत होता ही है। ऐसे सार्वभौम रूप में स्वीकृत मानव ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने को समाधानित और वातावरण को समाधानित करने में निष्ठान्वित रहना स्वाभाविक है। उसके लिये दायित्व और कर्तव्यशील रहना स्वाभाविक है।

इन्हीं तथ्यों के आधार पर हर परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व वर्तमान में प्रमाणित होता है। व्यवस्था, परिवार और समाज सदा ही वर्तमान में, से, के लिये अपने त्व सहित वैभवित होना है।

मानवत्व सहित, मानवत्व के लक्ष्य में, स्वायत्त मानव शिक्षापूर्वक स्वरूपित होता है। जिसका प्रमाण परिवार, ग्राम परिवार, विश्व परिवार में भागीदारी के रूप में और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार मूलक स्वराज्य गति का स्वरूप है।

जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज अध्ययन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित करने योग्य क्षमता, पात्रता को स्थापित करता है। अस्तित्व दर्शन स्वयं विज्ञान का सम्पूर्ण आधार है। अस्तित्व में ही समग्र व्यवस्था सूत्र और कार्य देखने को मिलता है। यही अस्तित्व दर्शन का जीवन जागृति क्रम में होने वाला उपकार है। विज्ञान का काल, क्रिया, निर्णयों की अविभाज्यता और सार्थकता की दिशावाही होना पाया जाता है। घटनाओं के अवधि के साथ काल को एक इकाई के रूप में स्वीकारने की बात मानव की एक आवश्यकता है। जैसे सूर्योदय से पुर्नसूर्योदय तक एक घटना है। यह घटना निरंतर है। निरंतर घटित होने वाला घटना नाम देने के फलस्वरूप उस घटना से घटना तक निश्चित दूरी धरती तय किया रहता है। इसे हम मानव ने एक दिन नाम दिया। अब इस एक दिन को भाग–विभाग विधि से 60 घड़ी, 24घंटा आदि नाम से विखंडन किया। मूलतः एक दिन को धरती की गति से पहचानी गई थी, खंड–विखंडन विधि से छोटे–से–छोटे खंड में हम पहुँच जाते हैं और पहुँच गये हैं। फलस्वरूप वर्तमान की अवधि शून्य सी होती गई। धरती की क्रिया यथावत् अनुस्यूत विधि से आवर्तित हो ही रही है। इससे पता लगता है मानव के कल्पनाशीलता क्रम से किया गया विखंडन यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता से भिन्न स्थिति में अथवा भिन्न स्थिति को स्वीकारने के लिये बाध्य करता गया। यह भ्रम, भ्रमित आदमी को और भ्रमित होने के लिये सहायक हो गया। इसका सार तथ्य विखण्डन विधि से किसी तथ्य को पहचानना संभव नहीं है। अथक कल्पनाशीलता मानव के पास, दूसरे नाम से विज्ञानियों के पास हैं ही और कल्पनाशीलता वश ही विखण्डन प्रवृत्ति के रूप में सत्य का खोज के लिए, जो कुछ भी यांत्रिक, सांकरिक विधि (संकर विधि) प्रयोग किया गया। उन प्रयोगों को काल्पनिक मंजिल मान लिया गया। उस मंजिल को अंतिम सत्य न मानने का प्रतिज्ञा भी करते आया। इन दोनों उपलब्धियों को विखण्डन विधि से पा गये ऐसा विज्ञान का सोचना है। गणित का मूल गति तत्व मानव का कल्पना है। गणित का प्रयोजन यंत्र प्रमाण है और उसके लिये विघटन आवश्यक है। यही मान्यताएँ है। जबकि देखने को यह मिलता है कि किसी यंत्र का संरचना अथवा संकरित पौधा, संकरित जीव–जानवर का शरीर संकरित बीज इन क्रियाकलापों को करते हुए विधिवत् संयोजन होना पाया जाता है अथवा किया जाना पाया जाता है।

अध्ययन क्रम में विश्लेषण एक आवश्यकीय भाग है। हर विश्लेषण प्रयोजनों का मंजिल बन जाना ही विश्लेषण का सार्थकता है। सार्थकताओं का प्रमाण स्वयं मानव होने की आवश्यकता सदा–सदा ही बना रहता है। इसका स्रोत

अस्तित्व में ही है। मानव का प्रयोजन स्रोत भी सह–अस्तित्व ही है। अस्तित्व में प्रयोजन का स्वरूप व्यवस्था के रूप में वर्तमान है। और विश्लेषण का स्वरूप सह–अस्तित्व के रूप में वर्तमान है। सह–अस्तित्व व्यवस्था के लिये सूत्र है व्यवस्था वर्तमान सहज सूत्र है। वर्तमान में ही मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को व्यवस्था के फलस्वरूप पाता है। मानव इस शुभ प्रयोजन के लिये अपेक्षित, प्रतीक्षित रहता ही है। मानव कुल में सर्वमानव का दृष्ट प्रयोजन यही है। यह सह–अस्तित्व विधि से सार्थक होता है। अस्तु विश्लेषण का आधार और सूत्र सह–अस्तित्व विधि ही है। जैसे सह–अस्तित्व विधि से एक परमाणु एक से अधिक परमाणु अंशों की गति और निश्चित चरित्र सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करता है। यह सह–अस्तित्व प्रवृत्ति परमाणु अंशों में ही होना प्रमाणित होता है। क्योंकि परमाणु अंशों की प्रवृत्ति परमाणु गठन का एकमात्र सूत्र होना पाया जाता है। इस प्रकार हर परमाणु अंश व्यवस्था में वर्तमानित रहना उसमें व्यवस्था स्वीकृत होने का द्योतक है। मूलतः सूक्ष्मतम इकाई का स्वरूप परमाणु अंशों के रूप में होना पाया गया। परमाणु अंश स्वयं स्फूर्त विधि से ही परमाणु के रूप में गठित रहना होना अस्तित्व में स्पष्ट है। अतएव व्यवस्था का मूल सूत्र मानव के कल्पना प्रयास के पहले से ही विद्यमान है क्योंकि ऐसी अनंतानंत परमाणुओं के गठन में मानव का कोई योगदान नहीं है। यहाँ इसे उल्लेख करने का तात्पर्य इतना ही है कि जागृत मानव परंपरा में मानव सही करने, कराने एवं करने के लिये सम्मति देने योग्य होता है। जागृति का प्रमाण गुरू होना पाया जाता है। जागृत होने की जिज्ञासा शिष्य में होना पाया जाता है।

इसके लिये सार्थक विधि, विज्ञान एवं विवेक सम्मत प्रणाली होना है। भाषा के रूप में विज्ञान और विवेक का प्रचलन है ही। किन्तु प्रचलित विज्ञान विधि से चिन्हित सोपान प्रयोजन के लिये स्पष्ट नहीं हुआ। और विवेक विधि से चिन्हित, रहस्य मुक्त प्रयोजन पूर्ववर्ती दोनों विचारधारा से स्पष्ट नहीं हुई। सर्वसंकटकारी घटना का निराकरण हेतु सह–अस्तित्व रूपी अस्तित्व, व्यवस्था रूपी प्रयोजन चिन्हित रूप में सुलभ होता है। यही शिक्षा–संस्कार का सारभूत अवधारणा और बोध है।

हर अध्यापन कार्य सम्पन्न करने वाला गुरू अपने में पूर्णतया जागृत रहना, जागृत रहने के प्रमाणों को निरंतर व्यक्त करने योग्य रहना आवश्यक है। यही अध्यापन कार्य सम्पन्न करने योग्य व्यक्ति को पहचानने–मूल्यांकन करने का आधार है। अस्तित्व अपने में चारों अवस्थाओं में वैभवित रहना इसी पृथ्वी पर दृष्टव्य है। यह चारों अवस्था परस्परता में सह–अस्तित्व सूत्र में, से, के लिये सूत्रित है। इसी सूत्र सहज महिमा को परमाणु गठन से रासायनिक–भौतिक रचना और विरचनाओं को विश्लेषण करना ही काल–क्रिया–निर्णय और उसके प्रयोजनों का स्रोत है। यह काल–क्रिया–निर्णय सहित प्रयोजन संबद्ध होने की आवश्यकता ज्ञानावस्था कि इकाई रूपी मानव का ही प्यास है। यही जिज्ञासा का स्वरूप है। इसी विश्लेषण अवधि में या क्रम में परमाणु में विकास, जीवन, जीवनी क्रम जीवावस्था में, मानव परंपरा में जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता उसकी निरंतरता की भी पूरकता एवं संक्रमण विधियों का विश्लेषण स्पष्ट हो जाता है। ऐसा जागृत जीवन ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में कर्ता–भोक्ता

होना प्रमाणित हो जाता है। फलस्वरूप मानव में व्यवस्था सहज रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता–अर्हता का संयोगपूर्वक उत्साहित होने का, प्रवृत्त होने का, प्रमाणित होने का कार्य सम्पादित होता है। यही जागृति घटना और उसकी निरंतरता ही विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली, पद्धति, नीति का वैभव है। इसकी आवश्यकता सर्वमानव में है। इसकी आपूर्ति मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार विधि से ही सम्पन्न होता है।

जागृति पूर्णता एवं उसकी निरंतरता ही गुरूता का तात्पर्य है। यह जागृतिपूर्णता का धारक वाहकता और उसकी महिमा है। इसी के साथ हर मानव में जीवन सहज रूप में जागृति स्वीकृत रहता ही है। जागृति सहज ही अभिव्यक्ति क्रम में आरूढ़ रहता है। आरूढ़ता का तात्पर्य स्वजागृति के प्रति निष्ठान्वित रहने से है। और स्व–जागृति के प्रति निष्ठा स्वयं के प्रति विश्वास का द्योतक है। स्वयं के प्रति विश्वास मूलत: स्वायत्त मानव में प्रमाणित रहता ही है। स्वायत्त मानव का स्वरूप और मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार का द्योतक होना पाया जाता है। दूसरे भाषा में प्रमाण होना पाया जाता है। यही सफल, सार्थक, वांछित और अभ्युदयशील शिक्षा है। शिक्षा का परिभाषा भी इसी के समर्थन में ध्वनित होता है। शिक्षा का परिभाषा अपने में शिष्टतापूर्ण दृष्टि का संकेत करता है।

शिष्टता और सुशीलता ये अपेक्षाएँ सर्वमानव में विद्यमान है। शिष्टता का परिभाषा मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में विश्वास और उसकी अभिव्यक्ति है। सुशीलता का तात्पर्य मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य रूप में सभी स्थिति – गतियों में व्यक्त होना ही है। ऐसी शिष्टता हर मानव में, हर मानव से, हर मानव के लिये अपेक्षित रहना पाया जाता है। ऐसी शिष्टता ही सभ्यता का सूत्र है और संस्कृति सहज गति है। इस प्रकार सभ्यता हर स्थिति में मूल्यांकित होता है और संस्कृति हर गति में चिन्हित और मूल्यांकित होता है। इसी महिमावश अथवा फलवश हर मानव, मानव का परिभाषा सहज विधि से सोचने, सोचवाने, बोलने, बोलवाने और करने–कराने योग्य स्वरूप में प्रमाणित हो जाता है। यह शिष्टता, सुशीलता और परिभाषा एक दूसरे के पूरक होना पाया जाता है। यही समाज गति है। समाज गति का ही दूसरा नाम सार्वभौम व्यवस्था है। इस प्रकार परिवार क्रम में शिष्टता, सुशीलता और परिवार व्यवस्था क्रम में मानव का परिभाषा प्रमाणित होता ही रहता है। इससे पूर्णतया स्पष्ट होता है कि व्यवस्था क्रम और परिवार क्रम अविभाज्य वर्तमान है।

शिक्षा–संस्कार का परस्पर पूरकता प्रबोधन पूर्वक शिष्टता, सुशीलता और मानवीय परिभाषा सहज मुखरण विधि को बोधगम्य करा देना शिक्षा और उसकी विधि की प्रामाणिकता है। जिसका फलन अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था और उसकी निरंतर गति है। यही सर्वमानव सर्वशुभ सहज विधि से जीने देने का और जीने का सहज गति है। समाधान और सुख के रूप में पहचानना बनता है।

सुख ही मानव धर्म होना पाया जाता है और ख्यात भी है। ख्यात का तात्पर्य सर्वस्वीकृत है। यह समाधानपूर्वक ही सर्वसुलभ होना होता है। समाधान सहज नित्य गति सर्वदेशकाल में सम्पूर्ण दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में और आयामों में जागृति सहज मानव में, मानव से, मानव के लिये दृष्टव्य है। अर्थात् हर जागृत मानव समाधान को देखने योग्य

होता ही है। देखने का तात्पर्य समझने से ही है। समाधान का गति रूप सदा–सदा मानव परंपरा में ही नियम और न्याय सहज तृप्ति बिन्दु के रूप में पहचाना जाता है। नियम अथवा सम्पूर्ण नियम नैसर्गिकता और वातावरण के साथ प्रभावशील रहना पाया जाता है। न्याय मानव सहज संबंध/मूल्यों के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। सम्पूर्ण मूल्यों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जीवन जागृति का ही महिमा है। दूसरे भाषा से जीवन तृप्ति का ही महिमा है। जीवन तृप्ति; जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता में ही देखने को मिलता है। यह सर्वमानव का अपेक्षा है। हर परिवार में जागृत अभिभावक जागृति पूर्ण शिक्षा संपन्न युवा पीढ़ी में सामरस्यता अपने–आप परिवार मानव सहज विधि से प्रमाणित होता है। ऐसे सफल परिवार का पहचान, मूल्यांकन सहित गतित रहना ही मानव परंपरा की आवश्यकता, गरिमा, महिमा सहित प्रतिष्ठा है। जागृति पूर्ण मानव ही गुरू पद में वैभवित होना स्वाभाविक है। जागृति पूर्ण परंपरा में ही हर मानव संतान में जागृत पद प्रतिष्ठा को स्थापित करना सहज है। इस विधि से जागृति परंपरा के अर्थ में शिक्षा–संस्कार सार्थक होना पाया जाता है जिसकी अपेक्षा भी सर्वमानव में होना भी सहज है। शिक्षा–संस्कार, उसकी सफलता का मूल्यांकन स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में शिक्षा अवधि में ही मूल्यांकित हो जाता है। मूल्यांकन का आधार भी यही दो मापदण्ड है। **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 212– 224)**

- **5. पति–पत्नी संबंध –** (विवाह संबंध)– मानव परंपरा में विवाह संबंध अधिकांश लोगों में वांछित है। यह संबंध अपने–आप में परस्पर सर्वतोमुखी समाधान सहित विश्वास वहन करने की प्रतिज्ञा पूर्वक आरंभ होने वाला संबंध है। हर संबंधों में विश्वास वहन होना एक अनिवार्य और सामान्य स्थिति है। विवाह सम्बन्ध में भी विश्वास निर्वाह आवश्यक है ही। विवाह संबंध में होने वाले शरीर संबंध और उसकी अपेक्षा परस्परता में आयु के अनुसार विदित रहता है। इतना ही नहीं सर्वविदित रहता है। सभी संबंधों में जीवन सहज भागीदारी समान रूप में विद्यमान रहता है। विश्वास सभी संबंधों में जीवन सहज अपेक्षा है। क्रम से व्यवहार संबंध, व्यवस्था संबंध और शरीर संबंधों को विश्वासपूर्वक ही नियंत्रित किया रहना देखने को मिलता है।

शरीर संबंध माता–पिता के सम्बन्ध में गर्भाशय और उसमें निर्मित होने वाले शरीर के रूप में गण्य होता है। भाई–बहन के साथ एकोदर अर्थात् एक गर्भाशय में निर्मित शरीरों के रूप में संबंध होना दिखता है। इसी क्रम में प्रत्येक मानव संतान की शरीर रचना में, उसके वैभव में स्वीकृतियाँ बना ही रहता है। हर मित्र संबंध, हर भाई–बहन के सम्बन्ध में शरीर संबंध का स्वरूप कहे गये स्वरूप में ही स्वीकृत रहता है। पति–पत्नी संबंध प्रधानत: गर्भाशय में शरीर रचना कार्य प्रवृत्ति ही होना पाया जाता है। इसी के साथ यौवन सम्पन्नता सहित यौन विचार से होने वाली आवेश मुक्ति के क्रियाकलाप को भी शरीर सम्बन्ध में पहचाना गया है। इस प्रकार शरीर सम्बन्ध का अर्थ विवाह सम्बन्ध से इंगित होने वाला बात स्पष्ट है। यह सामान्य रूप में मानवेत्तर प्रकृति और मानव से निर्मित वातावरणों का निरीक्षण विधि से भी शरीर सम्बन्ध विवाह विधि से होने वाला तथ्य इंगित रहता ही है। इसीलिये इसके लिये अलग से कोई शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता नहीं रह जाता।

विवाह सम्बन्ध में प्रधान मुद्दा अन्य सम्बन्धों के सदृश्य ही विश्वास निर्वाह करना ही है। विश्वास वर्तमान में ही निर्वाह होता है। व्यवस्था पूर्वक ही परस्पर विश्वास होना स्वाभाविक है। व्यक्तित्व और सामाजिकता सूत्र अपने आप में, वर्तमान में, व्यवस्था के रूप में जीने के लिये पर्याप्त स्रोत है। व्यक्तित्व, कायिक–वाचिक, मानसिक, कृत–कारित, अनुमोदित विधियों से वर्तमान में संतुष्ट रहने, पाने का विधि है। हर मानव कायिक–वाचिक, मानसिक रूप में ही सम्पूर्ण कार्य–व्यवहारों को सम्पन्न करता है। कायिक, वाचिक, सम्पूर्ण क्रियाकलाप से मानसिक तृप्ति की आवश्यकता हर मानव में, से, के लिये अपेक्षित रहता है। तृप्त मानसिकता सहित हर मानव में कायिक–वाचिक–मानसिक क्रियाकलाप सम्पन्न होता हुआ देखा जाता है। कायिक–वाचिक–मानसिक क्रियाकलाप के मूल में विचार, इच्छा जिसके मूल में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन के रूप में अनुभवों का वैभव प्रभावित रहना हर मानव में अध्ययन गम्य है।

शिक्षा–संस्कार सम्पन्न होने के उपरान्त हर व्यक्ति को स्वायत्त और परिवार मानव के रूप में पहचानना स्वाभाविक होता है। परिवार मानव के रूप में ही हर सम्बन्धों का निर्वाह होना, प्रमाणित होना और प्रयोजित होना मूल्यांकित होता है। इसी आधार पर मौलिक अधिकारों को कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित करना ही परिवार मानव सहज सार्थकता है। परिवार मानव संबंधों में, से एक विवाह सम्बन्ध एक पत्नी, एक पति संबंध है। परिवार मानव का कार्य रूप अपने आप में व्यवस्था में जीना ही है। दूसरी भाषा में मानवीयतापूर्ण परिवार में ही व्यवस्था का प्रमाण सदा–सदा के लिये वर्तमानित रहता है। यही जागृत मानव परंपरा का भी साक्ष्य है। परम्परा में प्रधान आयाम परिवार और व्यवस्था का नित्य प्रेरणा स्रोत शिक्षा–संस्कार ही होना पाया जाता है। अतएव स्रोत और प्रमाण के संयुक्त रूप में ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र प्रतिपादित होता है। निष्कर्ष यही है परिवार में ही समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा का वैभव है। यही मानवीयता पूर्ण परिवार का तात्पर्य है। इसी में समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व का प्रमाण प्रसवित होता है। इस क्रम में हर परिवार में समाधान और समृद्धि का दायित्व, कर्तव्य, आवश्यकता और प्रयोजन परिवार के सभी सदस्यों में स्वीकृत होना और प्रभावशील रहना ही अथवा प्रमाणित रहना ही परिवार की महिमा और गरिमा है। मानवीयता पूर्ण परिवार का अपने परिभाषा में भी यही तथ्य इंगित होता है जैसा परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य एक दूसरे के संबंधों को पहचानते हैं; मूल्यों का निर्वाह करते हैं और मूल्यांकन करते हैं। फलस्वरूप उभयतृप्ति एक दूसरे के साथ विश्वास के रूप में जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है। यही परिवार सहज गतिविधि का प्रधान आयाम है। इसी के साथ दूसरा आयाम परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य परिवार गत उत्पादन–कार्य में भागीदारी का निर्वाह करते हैं। फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना पाया जाता है। जिससे समृद्धि का स्वरूप सदा–सदा परिवार में बना ही रहता है। इसीलिये परिवार और ग्राम परिवार, परिवार समूह और परिवार के रूप में जीने की कला अपने आप में प्रसवित होती है। समृद्धि समाधान, सम्बन्धों, मूल्य, मूल्यांकन के आधार पर

बनी ही रहती है। समाधान और समृद्धि सूत्र परिवार में विश्वास के रूप में प्रमाणित होता ही है। इसी आधार पर विशालता की ओर विश्वास के फैलाव की आवश्यकता निर्मित होता है। यही सह–अस्तित्व के लिये सूत्र है। इस प्रकार से परिवार और व्यवस्था का दूसरे भाषा में परिवार मूलक विधि से व्यवस्था का संप्रेषणा, प्रकाशन सर्वसुलभ हो जाता है। ऐसी सर्वसुलभता मानवीय शिक्षा–संस्कार स्वरूप से ही हो पाता है। यही शुभ, सुंदर, समाधानपूर्ण परिवार विधि है।

विवाह संबंध को स्वीकारा गया और प्रतिबद्धता पूर्वक अर्थात् संकल्प पूर्वक निर्वाह करने के लिये मानसिक तैयारी सहित घोषणा और सत्यापन कार्यक्रम विवाहोत्सव का स्वरूप है। इसी आशय को गाकर व्यक्त किया जाता है। सम्भाषण, संबोधन और सम्मति व्यक्त करने के रूप में उत्सव सम्पन्न होता है। इसी के साथ–साथ दांपत्य संबंध के साथ–साथ एक परिवार मानव सहज दायित्वों, कर्तव्यों सहित मानव सहज उद्देश्य, जीवन सहज उद्देश्य के लिये अर्हिनिशी समझने, सोचने, करने, कराने के लिये मत देने के लिये संकल्प किया जाता है। विवाहोत्सव में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर व्यक्ति दांपत्य जीवन सफल होने की कामना सहित सम्मतियों को व्यक्त करने के रूप में प्रस्तुत होना सहज होता है। दाम्पत्य संबंध में सत्यापित व्यक्ति से कम अवस्था वाले जो भागीदारी निर्वाह किये रहते हैं वे सब नव दंपतियों के जीने की कला, विचार शैली और अनुभवों से सदा–सदा प्रेरणा पाने के लिये कामना व्यक्त करने के रूप में उत्सव में भागीदारी को निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार उत्सव में सम्मिलित सभी आयु वर्ग के व्यक्तियों की भागीदारी अपने आप स्पष्ट होती है। यही विवाहोत्सव का तात्पर्य है।

मानव सहज जागृति प्रभाव विशालता की ओर गतिशील होना स्वाभाविक है। जैसा मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार एक परिवार में परिवार का विरासत न होकर सम्पूर्ण विश्व मानव का स्वत्व होना पाया जाता है। इसीलिये मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार सार्वभौम होना सहज है। इसी प्रकार न्याय–सुरक्षा, उत्पादन–कार्य, विनिमय–कोष, स्वास्थ्य–संयम क्रियाकलाप भी सार्वभौम होता ही है। इन पाँचों आयाम का सार्वभौम रूप में वर्तमान होना ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का द्योतक है। दाम्पत्य संबंध ऐसी व्यवस्था में भागीदारी का संकल्पोत्सव होना पाया जाता है, ऐसे संकल्प का प्रमाण समाधान और समृद्धि का स्वरूप ही है। यही परिवार मानव का लक्ष्य और आवश्यकता है।

सतर्कता सहज विधि से शिष्टतापूर्ण भाषा शैली, कार्यों को करने में दक्षता की घोषणा और स्वीकृतियाँ विवाहोत्सव में व्यक्त करने का, सत्यापित करने का कार्यक्रम है। विवाहोत्सव की अभिव्यक्ति में एक आयाम संबंधों को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने (परिवार सहज सभी संबंध) मूल्यांकन करने (उभय तृप्ति के लिये) में अपने पूर्णता और निष्ठा को सत्यापित करना है। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा करने में अपने परिपूर्णता की घोषणा और सुरक्षा करने में निष्ठा को सत्यापित करना विवाहोत्सव में एक आवश्यकता है। परिवार सहज संपूर्ण मर्यादा यथा सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि को बनाये रखने में अपने निष्ठा को सत्यापित करना विवाहोत्सव में

एक आवश्यकीय आयाम है। मानवीयतापूर्ण चरित्र में स्वयं को पारंगत होने उसमें निष्ठा को सत्यापित करना विवाहोत्सव का एक आयाम है।

विवाह संबंध स्वाभाविक रूप में विभिन्न परिवारों में से अर्पित मानव संतान के साथ घटित होना स्वाभाविक है। यह भी मानव परंपरा में एकता का एक आयाम है। मानव परंपरा में एकता का चार आधार देखने को मिलता है। राज्य, धर्म, रोटी, बेटी, बेटा का संबंध में स्वीकृति ही मानव में एकता का संपूर्ण स्वरूप है।

राज्य और धर्म अविभाज्य रूप में वर्तमान होना देखा गया है। स्वराज्य को मानव सहज मानवत्व केन्द्रित व्यवस्था के रूप में पहचाना गया। मानवत्व अपने आप में मानव का परिभाषा, आचरणों में जीवन जागृतिपूर्वक प्रमाणित होना देखा गया है। इसके मूल में अर्थात् जागृति के मूल में जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता रूप में होना पूर्णतया देखा गया, इसी कारणवश मानव अपने परिभाषा के रूप में, आचरण के रूप में होने के फलस्वरूप व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का कार्यकलाप परंपरा के रूप में सदा–सदा के लिये होना समीचीन है। मानव जागृति भी समीचीन तथ्यों में, से, के लिये होना स्पष्ट है। इसी विधि से व्यवस्था धर्म और राज्य का संयुक्त स्वरूप होना स्पष्ट है; क्योंकि व्यवस्था में भागीदारी क्रम में परिवार और व्यवस्था समाहित रहता ही है। परिवार विधि से विश्व परिवार तक समाज रचना स्वरूप, परिवार सभा व्यवस्था से विश्व परिवार सभा तक सभा रचना का होना सहज है। सभा और परिवार रचना का सार्थकता, आवश्यकता और प्रमाण केवल व्यवस्था ही है। इसको ऐसा भी कहा जा सकता है परिवार सहज रूप में भी व्यवस्था है। सभा सहज रूप में भी व्यवस्था प्रमाणित होता है। तीसरे विधि से हर परिवार व्यवस्था अपेक्षा और आवश्यकता से संपृक्त रहता है। हर सभा व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाणों को प्रस्तुत करना चाहता है। इस प्रकार सभा, परिवार–सभा व्यवस्था केन्द्रित होना अथवा व्यवस्था लक्षित होना पाया जाता है। इस प्रकार सभा ही परिवार, परिवार ही सभा के रूप में होना पाया जाता है। इन्हीं में भागीदारी क्रम में संपूर्ण संबंधों का विषद व्याख्या पहले हो चुका है। परिवार संबंधों में से एक संबंध के रूप में विवाह संबंध भी सफल होना अति आवश्यक है। यह हर परिवार मानव निर्वाह करता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने के लिए स्वायत्त मानव के रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार विधि से संपन्न होना देखा गया है। अतएव विवाह संबंध परिवार के रूप में प्रमाणित होना मौलिक आधार व अधिकार का एक आयाम है। जैसा अन्य संबंधों का निर्वाह भी मौलिक अधिकार के रूप में व्याख्यायित होता है। इस प्रकार हर विवाह संबंध मानवीयतापूर्ण परिवार के साथ आयोजित होना एक स्वाभाविक क्रिया है। यह क्रिया विधि भी मानव में एकता का सूत्र को विशालता की ओर गतित होता है।

विवाह संबंध के साथ–साथ स्वाभाविक रूप में रोटी की एकता अपने–आप स्पष्ट होती है। इसकी परम आवश्यकता है। हर मानवीयता पूर्ण परिवार में हर जागृत मानव परिवार सहज भोज में भागीदार होना अतिथि के रूप में स्वीकार्य जागृत मानव परंपरा में कोई व्यक्ति बिना आमंत्रित अथवा बिना प्रयोजन के किसी के परिवार में

जाने की आवश्यकता ही नहीं रह जाता है। हर मानव परिवार विधि से आमंत्रित अथवा संयोजित रहना बन पाता है और सभा विधि से संयोजित और प्रयोजित कार्यार्थ ही एक दूसरे के अतिथि होना पाया जाता है। अतिथि का तात्पर्य ही आमंत्रणपूर्वक सहभोज करना। इस प्रकार से रोटी और बेटी का संबंध विशालता क्रम में सार्थक होना दिखाई पड़ता है। यह सार्थकता परिवार मानव विधि से और व्यवस्था मानव विधि से सम्पन्न होना जागृत परंपरा सहज मानव में, से, के लिये एक शिष्टता पूर्ण गति है। इस प्रकार धर्म, राज्य व्यवस्था सभा और परिवार विधि से व्यवस्था के रूप में सं ंबंधित होने जिसके व्यवहारान्वयन क्रम में रोटी और बेटी का एकरूपता अथवा विशालता अपने–आप स्पष्ट हो चुका है। अतएव जागृत मानव परंपरा में उक्त चारों विधाओं में अर्थात् रोटी, बेटी में एकता और राज्य और धर्म में एकता का अनुभव होना हर व्यक्ति के लिये आवश्यक है। इसका अभिव्यक्ति हर मानव का, मानव परिवार का मौलिक अधिकार है। इन्हीं मौलिक अधिकारों को प्रमाणित करने के क्रम में ही सभी मानव अपने–आप को इन चारों विधाओं में स्वयं स्फूर्त विधि से अर्थात् जागृति पूर्वक गतिशील होने मानव सहज प्रवृत्ति है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 224–233)**

- 6. **व्यवस्था संबंध** – व्यवस्था में जीने का प्रमाण परिवार में होता है। समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज क्रम में व्यवस्था संबंध को पहचानने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। जैसा परिवार में न्याय–सुरक्षा का प्रमाण संबंध, मूल्य, मूल्यांकन तन, मन, धन का सद्ुपयोग–सुरक्षा विधि से प्रमाणित हो जाता है। यही परिवार मानव का मानवीयतापूर्ण परिवार का परिभाषा है। इसीलिये परिवार में परस्पर हुई पिता–पुत्र, भाई–बहन, मित्र, गुरू, शिष्य, पति–पत्नि, माता–पिता इन संबंधों में संबोधन सहज संबध चिन्हित होता है और उत्पादन–कार्य में भागीदारी प्रमाणित रहता ही है। हर परिवार में वस्तुओं का उपयोग, सदुपयोग भी साक्षित रहता है। विनिमय–कार्य के लिये और विशाल संबंध की आवश्यकता बनी रहती है। एक परिवार की आवश्यकता जितने प्रकार की वस्तुओं की बना रहता है उनमें से कुछ वस्तुओं को किसी भी परिवार में उत्पादित होना स्वाभाविक है विनिमयपूर्वक एक परिवार में उत्पन्न वस्तु को दूसरे परिवार प्राप्त कर लेना ही वस्तुओं का आदान–प्रदान का तात्पर्य है। इस विधि से विनिमय एक आवश्यकीय क्रियाकलाप है; यह स्पष्ट हो जाता है। व्यवस्था के आयामों में विनिमय एक आयाम है। व्यवस्था रूप में ही संपूर्ण आयाम सहित परंपरा स्पष्ट होती है यथा मानवीयतापूर्ण शिक्षा–संस्कार परंपरा अन्य सभी चार आयामों के लिये स्त्रोत और संतुलन सूत्र होना पाया जाता है। प्रत्येक आयाम में मानव अपने संतुलन पूर्वक कार्य–व्यवहार करने के क्रम में हर सूत्र व्याख्यायित हो जाता है। यथा मानवीय शिक्षा–संस्कार में ये देखने को मिलता है कि यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता रूप में समझा हुआ को संस्कारों के रूप में; किया हुआ को प्रमाणों के रूप में दूसरी भाषा में जिया हुआ को अथवा जीने की विधि को प्रमाण के रूप में देखा जाता है। समझने का जो कार्यक्रम है जिसमें समझाने वाली क्रिया समाहित रहती हैं यही संस्कार का कारण है यह अध्ययन पूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है।

शिक्षा–संस्कार ही परस्परता में संतुलन विधि से प्रमाणों का सूत्र और जीने की विधि में उसका व्याख्या स्वाभाविक रूप में संपन्न होता है। यही शिक्षा–शिक्षण और संस्कार में संतुलन का तात्पर्य है अर्थात् हर व्यक्ति में समझा हुआ सभी समझदारी जीने की कला में प्रमाणित होता है। समझदारी का संपूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का होना पाया जाता है। व्यवस्था क्रम में ही न्याय–सुरक्षा अपने में संतुलन को प्रमाणित होना एक अनिवार्यता है। न्याय का स्वरूप संबंध, मूल्य–मूल्याँकन उभय तृप्ति के रूप में देखने को मिलता है। सुरक्षा का स्वरूप जिसके साथ वस्तुओं का सदुपयोग हुआ रहता है वह उसका सुरक्षा को प्रमाणित किया रहता है। इस क्रिया का मूल स्त्रोत संबंधों में विश्वास ही है। यह अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व का वैभव है। इससे स्पष्ट है कि जागृत मानव तन, मन, धन सहित ही संपूर्ण संबंधों के साथ प्रमाणित होना पाया जाता है। जागृत मानसिकता का तात्पर्य अनुभव मूलक विधि से कार्य करने, अनुभवगामी विधि से फलित होने का क्रियाकलाप; क्योंकि संपूर्ण अनुभव मूलक क्रियाकलाप स्वाभाविक रूप में अनुभवगामी विधि से आर्वतित होना देखा गया है। अनुभव जीवन सहज परम जागृति का नाम है। इसका संपूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान में परिपूर्णता, अस्तित्व दर्शन ज्ञान में पूर्णता और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान में परिपूर्णता के स्वरूप में देखने को मिलता है और भले प्रकार से यह जी कर देखा गया है। अस्तु, मानव परंपरा में अनुभवमूलक प्रणाली से अनुभवगामी प्रणाली सहज आर्वतनशीलता वश ही न्याय सुलभता व तन, मन, धन का सुरक्षा अपने–आप में सदुपयोग सहित प्रमाणित हो जाता है। तन, मन, धन का सदुपयोग का तात्पर्य ही है सम्बन्धों का निर्वाह।.... **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 233–236)**

- व्यवस्था **संबंध** और संबोधन परस्पर अपेक्षा कार्य और मूल्यांकन के क्रम में सभा में निर्वाचित सदस्यों के परस्परता में भाई–बहन या मित्र संबोधन को अपनाना स्वाभाविक है। हर सभा भाई–बहन या मित्र परिवार के रूप में ही प्रतिष्ठित रहना भी एक आवश्यकता है। इसका मूल कारण भाई–बहन व मित्र **संबंध** में ही संपूर्ण सार्वभौमता सहज परस्परता में प्रमाणित होते हैं। इसीलिये सभा में निर्वाचित सदस्यों को संबोधन के रूप में भाई–बहन या मित्र संबोधन करना आवश्यक है। सभा का परिपूर्ण रूप अर्थात् व्यवस्था का परिपूर्ण रूप कम से कम सौ से डेढ़ सौ परिवार के बीच साकार होना समीचीन है, निर्वाचन क्रियाकलाप हर दस व्यक्ति के बीच में होना सहज है। एक परिवार (छोटे से छोटा) दस व्यक्ति का होना भी आवश्यक है, संभव है और उचित है। ऐसे दस व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को सभा प्रधान के रूप में स्वीकारा जाता है, पहचाना जाता है, यही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का तात्पर्य है। पुनश्च दस परिवार में से निर्वाचित एक–एक व्यक्ति दस व्यक्ति के रूप में होते हैं ये एक परिवार समूह सभा को गठित करते हैं। ऐसे दस परिवार समूह सभा एक व्यक्ति को सभा प्रधान के रूप में निर्वाचित कर ग्राम अथवा मोहल्ला परिवार सभा के लिये निर्वाचित किया जाता है। इस क्रम में निर्वाचित दस सदस्य एक ग्राम सभा अथवा मोहल्ला सभा के रूप में कार्य करना सहज है। ऐसे निर्वाचन पूर्वक से प्राप्त दस सदस्यीय सभा में से एक व्यक्ति को प्रधान के रूप में पहचाना जाता है और संबोधन के लिये परस्परता में सभी मित्र अथवा भाई–बहन

संबोधन से आप्लावित रहने का कार्यक्रम बनाया जाता है। यही ग्राम स्वायत्त अथवा मोहल्ला सभा का तात्पर्य है। ये पाँचों आयामों के प्रति जागृत रहते हैं। सभी आयामों में अखण्ड समाज – सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में सूत्रित रहते हैं। इसमें हर परिवार मानव भागीदारी निर्वाह करने के लिये स्वतंत्र है। यही कर्म स्वतंत्रता का तत्व बिन्दु भी है। कर्म स्वतंत्रता का परिभाषा भी इसी अर्थ को प्रतिपादित करता है। स्वयं स्फूर्त विधि से सूत्रित होकर संपूर्ण आयाम, कोणों में प्रमाणों को दिशा परिप्रेक्ष्यों में हर देशकाल में प्रमाणित होना, करना, कराना, करने के लिये सहमति देना स्वतंत्रता की संपूर्णता है यही जागृति पूर्णता भी है।....(**अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 247–249**)

- जानने–मानने का अधिकार जागृत मानव में ही प्रमाणित होता है। ऐसा जानने, मानने के आधार पर **सम्बन्धों** का पहचान होता है। हर **संबंध** में निश्चित प्रयोजन स्वीकृत रहता है। उन सम्बन्धों में लक्षित प्रयोजनों को निर्वाह करना ही समाज सूत्र का आधार है। इसीलिये पहचानना, निर्वाह करना एक आवश्यकता और विधि है। इसका मूल्यांकन हर स्थिति में होना ही समाज है। समाज का परिभाषा भी इसी तथ्य को इंगित कराता है कि पूर्णता के अर्थ में गतिशीलता ही समाज है। पूर्णता का स्वरूप मानव परंपरा में मानवत्व सहित अखण्ड समाज – सार्वभौम व्यवस्था सूत्र और व्याख्या स्वरूप ही है। सार्वभौम व्यवस्था स्वरूप स्वयं में परिवार मूलक स्वराज्य सभा विधि से पाँचों आयाम सहित गतिशील रहना स्पष्ट है। नैसर्गिक **सम्बन्ध** और मानव **सम्बन्ध** और उसमें निहित प्रयोजनों को सार्थक बनाने के क्रियाकलापों को निर्वाह नाम दिया गया है। इसका सार्थक गति मानव अपने जागृत संचेतना पूर्वक ही अपने स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकारों को अक्षुण्ण बनाए रखता है। इसकी स्वीकृति सर्व मानवों में होना पाया जाता है। इसे व्यवहार पूर्वक ही हर मानव प्रमाणित करता है। अतएव मानव में, से, के लिये स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार का स्वरूप जागृत संचेतना ही है। इसमें हर व्यक्ति पारंगत रहना ही परंपरा का वैभव है। (**अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 258–259**)
- दायित्व बोध और उसके अनुरूप कार्य प्रणालियाँ; **सम्बन्ध**, मूल्य–मूल्यांकन, उभयतृप्ति, संतुलन और उसकी निरंतरता के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। इसी के साथ तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा भी दायित्वों में समाहित रहता ही है। कर्तव्य का स्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन, लाभ–हानि मुक्त विनिमय कार्यों में भागीदारी के रूप में सम्पन्न होना देखा गया है। दायित्वों और कर्तव्यों को निर्वाह करने के क्रम में स्वास्थ्य–संयम एक अनिवार्य क्रियाकलाप है जिसको आगे अध्याय में स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार दायित्व बोध के लिये जानना, मानना और कर्तव्य बोध के लिये पहचानना, निर्वाह करना एक अनिवार्य स्थिति है। इस स्थिति में कार्यरत, व्यवहाररत रहना ही जागृत परंपरा सहज महिमा है। परंपरा सहज महिमा ही मानव संतान में, से, के लिये अत्यधिक प्रभावशाली होता है। (**अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 264–265**)

* समाज और विधि

पूर्णता के अर्थ में स्वत्व, स्वतंत्रता, उपकार संयुक्त रूप से वैभव संपन्न परंपरा है :–

विधि का कार्यरूप नियम और न्याय सम्मत विधि से किया गया कार्य–व्यवहार है। नियम और न्याय में नित्य संगीत ही समाधान के रूप में होना ख्यात है। मूलतः विधि अपने सूत्र रूप में नियम और न्याय ही है। नियमों को तीन प्रकार से पहले वर्णित कर चुके हैं। न्याय को **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति संतुलन के रूप में स्पष्ट किया गया है। **सम्बन्धों** को मानव **संबंध** और नैसर्गिक **सम्बन्ध** के विधि से प्रस्तुत किया जा चुका है। नियम और न्याय सूत्र में, से मानव **संबंधों** में न्याय प्रधान नियम और नैसर्गिक **सम्बन्धों** में नियम प्रधान न्याय का अनुभव मानव सहज रूप में किया जाना जागृति का द्योतक है।

मानव **संबंधों** को सात प्रकार से नाम सहित प्रयोजनों को इंगित कराया है। **संबंध** क्रम से पोषण, संरक्षण, अभ्युदय, जागृति, प्रामाणिकता, जिज्ञासा, यतित्व, सतीत्व, विकास–प्रगति, दायित्व–कर्तव्य प्रयोजनों का स्वरूप है। इन प्रयोजनों के अर्थ में हर **संबंधों** का कार्यकलाप साक्षित होना ही विधि है। दायित्व और कर्तव्य के **सम्बन्ध** में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी, परिवार और समाज में भागीदारी एक आवश्यकीय स्थिति और गति होना स्पष्ट किया जा चुका है। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि दायित्व और कर्तव्यों के साथ ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग सार्थक होता है। जितने भी प्रयोजन है वह सब मानव कुल में ही प्रमाणित होता है। वह 1. माता – पिता, 2. भाई – बहन, 3. गुरू – शिष्य, 4. मित्र, 5. पति – पत्नी, 6. स्वामी (साथी) – सेवक (सहयोगी), 7. पुत्र – पुत्री। इस प्रकार से 7 **संबंध**। इसमें से पति–पत्नी **संबंधों** को छोड़कर बाकी सभी **सम्बन्ध** पुत्र–पुत्रीवत्, माता–पितावत्ॢ, गुरूवत्, शिष्यवत्, मित्रवत्, भाई–बहिनवत्, स्वामी–सेवकवत् के रूप में पहचाना जाना सहज है। इसमें सर्वाधिक अथवा विशाल रूप में होने वाले प्रतिष्ठा को मित्र के रूप में पहचाना जाना स्वाभाविक है।

इन सभी **सम्बन्धों** के साथ सार्थकता अथवा प्रयोजनों की अपेक्षा परस्पर स्वीकृत रहा करता है जैसा – माता–पिता से अपेक्षा जागृति, प्रामाणिकता सहित समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व का होना प्रत्येक संतानों में अपेक्षित–प्रतीक्षित रूप में मिलता है। हर संतान के साथ माता–पिता की अपेक्षा जागृति, प्रामाणिकता सहित समाधान, कर्तव्य और दायित्व सहज निष्ठा का अपेक्षा, प्रतीक्षा, आवश्यकता के रूप में सर्वेक्षित होता है। हर शिष्य अपने गुरू से प्रामाणिकता, समाधान और वात्सल्य की अपेक्षा रखता है। हर विद्यार्थी से गुरू की अपेक्षाएं तीव्र जिज्ञासा, ग्राह्यता सहित अवधारणाओं के रूप में देखना बना ही रहता है।

भाई–बहनों के परस्परता में अभ्युदय अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान, वर्तमान में विश्वास सहित पूरकता का अपेक्षा बना ही रहता है। इसी प्रकार मित्र **सम्बन्धों** में भी होना पाया जाता है।

पति–पत्नी **सम्बन्धों** में परस्पर व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी परिवार मानव का सम्पूर्ण दायित्व–कर्तव्य, अपेक्षा, प्रतीक्षा बना ही रहता है।

स्वामी (साथी)–सेवक (सहयोगी) **सम्बन्ध** में स्वयं स्वीकृत प्रणाली, स्वयं स्वीकृत विधि से व्यवस्था में भागीदारी निर्वहन के आधार पर घोषणा कार्यप्रणाली है। इस क्रम में भाई सम्बोधन या बहन सम्बोधन समुचित रहता है। इसी की आवश्यकता है। व्यवस्था **सम्बन्ध** में परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक की समान सम्बोधन होना और कार्यों की समानता भी प्रमाणित होना पाया जाता है। यह स्वाभाविक विधि है हर सभा में एक प्रधान व्यक्ति को निर्वाचित कर लेना, पहचानना, अधिकार सम्पन्न रहना एक आवश्यकता बना रहता है। यह जनतांत्रिक प्रणाली, पद्धति, नीतियों को प्रमाणित करने का गठन कार्य है। अतएव सभा प्रणाली में भाई–बहन–मित्र सम्बोधन में समानता, दायित्वों, कर्तव्यों का वहन करने में स्वयं स्फूर्त स्वीकृत विधि से सम्पादित होता है। यही जनतांत्रिकता का तात्पर्य है। इसी विधि से विरोध विहीन, विवाद विहीन, सामरस्यता और समाधान पूर्ण अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में कार्यरत रहना पाया जाता है। इसकी आवश्यकता सर्वमानव में होना पाया जाता है। इसकी नित्य समीचीनता जागृति विधि पूर्वक स्पष्ट हुआ है।

यहाँ इस तथ्य पर ध्यान रहना आवश्यक है कि प्रत्येक सम्बोधन में प्रयोजनों का अभीष्ट बना ही रहता है। अभीष्ट का तात्पर्य अभ्युदय को अनिवार्यता के रूप में स्वीकारा गया अनुभव मूलक मानसिकता से है। इस प्रकार सम्बोधन के साथ प्रयोजन उभय पक्ष में स्वीकृत होना, इंगित होना ही सार्थकता है। सम्बोधन की सार्थकताएँ व्यवहार, कार्य, आचरण, प्रवृत्ति का मूल रूप होना देखा गया। क्योंकि हर मानव में विचारपूर्वक ही कार्य–व्यवहार सम्पन्न होना देखा जाता है।

सम्बन्ध का तात्पर्य स्वयं में पूर्णता सहित हर मानव में पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना स्वाभाविक है। यह मानव में ही प्रमाणित होने वाला मौलिक अभिव्यक्ति है। यही ज्ञानावस्था का परिचायक है। इसी के साथ मानव को, इसकी अपेक्षा, आवश्यकता नियति सहज विधि से देखने को मिलता है। अर्थात् मानव **संबंध** के अनुरूप प्रयोजनों को प्रमाणित करने में निष्ठा स्वयं स्फूर्त होता है। अपेक्षाओं के अनुसार सार्थक होना, चरितार्थ होना ही **सम्बन्धों** का सम्पूर्ण प्रयोजन है। प्रयोजनों का सूत्र अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, परिवार मानव और स्वायत्त मानव रूप में ही मानव परंपरा में देखने को मिलता है। यही प्रयोजनों का मूल रूप है। इसे ज्ञानावस्था का स्वरूप भी कहा जा सकता है। जागृत मानव परंपरा में यह सार्थकता का स्वरूप शिक्षा–संस्कारपूर्वक परंपरा में स्थापित होता ही रहेगा। जागृत शिक्षा–संस्कार के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। जागृतिपूर्ण परंपरा अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व विधि से अनुप्राणित रहने के आधार पर ही जागृत मानव परंपरा का अक्षुण्णता समीचीन रहना पाया जाता है। अतएव सम्पूर्ण **सम्बन्ध** और उसका सम्बोधन निश्चित प्रयोजन के अर्थ में अपेक्षित रहना ही सम्बोधन का तात्पर्य है। इसमें हर व्यक्ति जागृत रहना यह प्राथमिक दायित्व है। इन्हीं दायित्वों, मौलिक अधिकारों का प्रयोजन

सहज ही सफल हो पाता है। फलस्वरूप मानव परंपरा में जीने की कला विधि के रूप में प्रमाणित होता है। विधि का प्रमाण स्वयं सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति, मानव परिभाषा के अनुरूप हर मानव अपने मौलिक अधिकार रूपी स्वतंत्रता का प्रयोग करना, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा करना और स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार में निष्ठान्वित रहना विधि है। यही सम्पूर्ण उत्सवों का आधार होना पाया जाता है। (अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 267–271)

- 5. विवाह संस्कारोत्सव :– **सम्बन्धों** को पहचानना ही संस्कार है। ऐसे **सम्बन्ध** अस्तित्व **सम्बन्ध**, मानव **सम्बन्ध** और नैसर्गिक **सम्बन्ध** के रूप में जानना और पहचानना जागृत मानव में स्वाभाविक क्रिया है। अस्तित्व **सम्बन्ध** सह–अस्तित्व के रूप में, नैसर्गिक **सम्बन्ध** जल, वायु, वन, धरती के रूप में, मानव **सम्बन्ध** अखण्ड समाज–सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में **सम्बन्धों** को पहचानना एक आवश्यकता है। हर जागृत मानव में यह सार्थक होता है। मानव **सम्बन्ध** क्रम में पति–पत्नी **सम्बन्ध** एक सम्बन्ध है। ऐसे **सम्बन्ध** के स्वरूप कार्य के बारे में पहले ही सभी **सम्बन्धों** के साथ आवश्यकता, लक्ष्य, उपयोगिता के **सम्बन्ध** में विश्लेषण और विवेचना कर चुके हैं।

  यहाँ उत्सव के **सम्बन्ध** में स्वरूप प्रक्रिया को प्रस्तुत करना आवश्यक समझा गया है। विवाह **सम्बन्ध** में बंधु–बांधव, अभिभावक, मित्र, सु्हृदय मनीषियों की सम्मति, प्रसन्नता, उत्साह के साथ निश्चयन होना इस **संबंध** संस्कारोत्सव की पूर्व भूमि है। उभय पक्ष के अभिभावक उत्सवित रहना सहज है। ऐसे पृष्ठभूमि के साथ विवाहोत्सव सम्पन्न होना मानव परंपरा में एक आवश्यकता है। क्योंकि संयत जीवन प्रणाली के लिये **सम्बन्धों** का पहचान उसके निर्वाह के साथ उत्सवित रहना संस्कार का ही द्योतक है। संस्कार का परिभाषा भी यही ध्वनित करता है कि पूर्णता के अर्थ में सम्पूर्ण कृत–कारित–अनुमोदित, कायिक, वाचिक, मानसिक विधियों से सदा–सदा निर्वाह करने की स्वीकृति। यही **सम्बन्ध** की पहचान का तात्पर्य है। ऐसा **सम्बन्ध** निर्वाह सदा–सदा के लिये सुखद, सुन्दर, समाधानपूर्ण होना पाया जाता है। यही नित्य उत्सव का आधार और परिणाम है क्योंकि किसी **सम्बन्ध** को सुखपूर्वक निर्वाह करना आरंभ होता है उसी के साथ सुन्दरता और समाधान प्रभावित किया रहता है। समाधान सहित किसी **सम्बन्ध** को निर्वाह करना आरंभ करते हैं उसी समय से समाधान और सुख प्रभावित किया रहता है। इसी प्रकार सुन्दरतापूर्वक किसी **सम्बन्ध** को निर्वाह करना आरंभ करते हैं उसी के साथ समाधान और सुख प्रभावित किया रहता है। इसका प्रधान प्रक्रिया स्वरूप को हम देख पाते हैं कि अस्तित्व **सम्बन्ध** को समाधान पूर्वक निर्वाह करते हुए सुख, सुन्दरता को अनुभव किया जाता है। नैसर्गिकता के साथ सुन्दरतापूर्वक **सम्बन्ध** का निर्वाह करते हुए स्थिति–गति में सुख और समाधान का अनुभव करना सहज है। मानव **सम्बन्धों** में सुखपूर्वक सम्बन्ध निर्वाह करता हुआ गति–स्थिति में सुन्दरता और समाधान का अनुभूत होना देखा गया है। यही पूर्णता का स्वरूप है उसकी अक्षुण्णता स्पष्ट है।

सम्पूर्ण उत्सव में लक्ष्य सुख, सुन्दर, समाधान का अनुभव; विचारों में उज्ज्वलता, कार्य–व्यवहार में उदात्तीकरण ही उत्साह और प्रसन्नता का उत्कर्ष होना देखा गया है। यह जागृतिपूर्वक ही सम्पन्न होना पाया गया है।

विवाह संस्कारोत्सव मुहूर्त में स्वाभाविक रूप में कन्या वर पक्ष के बन्धु–बांधव, मित्रों का उपस्थित रहना वांछनीय कार्य है। वधु–वर स्वाभाविक रूप में स्वायत्त मानव के रूप में पारंगत परिवार मानव के रूप में प्रमाणित रहने के आधार पर ही उभय अर्हता का निश्चय होना पाया जाता है। जैसे ही किसी शोभनीय स्थली में उभय पक्ष के सभी लोग एकत्रित होते हैं उसमें सभी आयु–वर्ग के लोगों का रहना स्वाभाविक है। सभा स्थल के एक ओर कन्या पक्ष के माता–पिताओं से संबंधित बन्धु–बान्धवों का होना, उन्हें क्रम से मातृ पक्ष के लोगों को माता के तरफ कतार से, पिता पक्ष के सभी लोगों को पिता के साथ कतार से बैठाया जाना शोभनीय होता है। इसी प्रकार वर पक्ष का भी कतारीकरण विधि से आसनासीन कराना होता है। इस कार्य में वधु–वर सहित उनके सभी मित्रगण भी प्रवृत्त रहते हैं। तीसरे ओर वधु का मित्रों की ओर तथा चौथे ओर वर के मित्रों का कतारीकरण विधि से आसनासीन कराया जाता है। तदोपरान्त आसनासीन वधु के माता–पिता के मध्य में रिक्त आसन पर वधु का आसीन होना उसी प्रकार वर के माता–पिता के मध्य में वर का आसीन होना सभा स्थल का शोभा सम्पन्न होती है। उसके तुरंत बाद वधु के पिता अपने आशय को व्यक्त करते हैं कि “मैं अमुक नाम वाला अपने पत्नी का नाम सहित, हम आपकी सम्पूर्ण जागृति और प्रामाणिकता सहित मेरे पुत्री अमुक नाम वाली जो यहाँ आपके सम्मुख प्रस्तुत है इनको मानवीय संस्कारों को समय–समय पर प्रस्थापित करते आया हूँ। इनका पोषण–सुरक्षा और सुशीलता को हम दोनों पति–पत्नी प्रेरक–कारक रहे हैं। हमारा विश्वास है कि मेरी पुत्री परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने में समर्थ है। अतएव अब हम इस समारोह में अमुक नाम वाले जिनके माता–पिता का नाम सहित वर के साथ विवाह करने के लिए हम कृत संकल्पित हैं। मेरे इस संकल्प के साथ मेरे तथा मेरी पत्नी के सभी बंधुओं, मेरी पुत्री के सभी मित्रों की सम्मति है।” इसी के साथ हर्ष ध्वनियाँ सम्मत उच्चारण करता हुआ सम्पन्न होगा।

इसी प्रकार वर पक्ष का पिता अथवा अभिभावक ऐसा ही विश्वासपूर्वक प्रस्तुत होना स्वाभाविक है। इसके तुरंत बाद सभा को संबोधित करता हुआ विवाहोत्सव का मार्गदर्शन करने वाला व्यक्ति विवाह के मार्मिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता पर सम्बोधित करेगा। इसके तुरंत बाद जितने भी सभासद रहते हैं वधु–वर के, से उन–उनके साथ आत्मीयतापूर्वक विवाहोत्सव की औचित्यता पर अपने–अपने सम्मति व्यक्त करेंगे। पुनः हर्ष ध्वनि सम्पन्न होगी। इस बीच मंगलगीत, सौभाग्य गीत, परिवार मानव गीतों का सुस्वर गायन सम्पन्न होगा। इसमें हर नर–नारी का भाग लेना स्वाभाविक रहेगा। तदुपरांत वर–वधुओं के गले में उन–उनके माता–पिता फूल–माला पहनायेंगे।

सभा के मध्य में बनी हुई मण्डपाकार के समीप वधु–वर पहुँच कर एक–दूसरे को माला पहनायेंगे, पुनः हर्ष ध्वनि मंगल ध्वनि का होना स्वाभाविक है।

इसके उपरान्त विवाहोत्सव के मार्गदर्शक व्यक्ति के अनुसार सुखासन पर बैठे हुए वधु–वर दोनों पारी–पारी से बैठे हुए स्वयं को स्वायत्त मानव के रूप में होने का सत्यापन करेंगे और परिवार मानव के रूप में जीने के संकल्प को दृढ़ता से घोषित करेंगे। इसके उपरान्त

1. दोनों अपने–अपने माता–पिता का नाम सहित व्यवस्था मानव के रूप में जीने का संकल्प लेगें।
2. परिवार मानव के रूप में जीने का संकल्प करेंगे।
3. दोनों बारी–बारी से कायिक–वाचिक–मानसिक, कृत कारित, अनुमोदित सभी कार्य–व्यवहार विचारों में एक दूसरे के पूरक होने का संकल्प करेंगे।
4. परिवार तथा अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का दायित्व कर्तव्यों को निर्वाह करने का संकल्प करेंगे।
5. तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा करने का संकल्प करेंगे।
6. सम्बन्ध–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति को प्रमाणित करने का संकल्प करेंगे।
7. मानवीयतापूर्ण आचरण में पूर्ण निष्ठा बरतने का संकल्प करेंगे।

इस प्रकार किये जाने वाले हर संकल्प के साथ हर्ष ध्वनि पूरी सभा में होना स्वाभाविक है और उत्सव का मार्गदर्शक हर संकल्प के उपरान्त उसकी महिमा आवश्यकता और प्रयोजनों का प्रबोधन करेंगे। इसी क्रम में आवश्यकतानुसार संकल्पों के बीच–बीच आनुषंगीय गीत का भी प्रकाशन तथा प्रदर्शन किया जाना स्वाभाविक रहेगा। इस प्रकार संकल्प समारोह सम्पन्न होने के उपरान्त सर्वप्रथम उभय पक्ष के माता–पिता, वधु–वर को परिवार मानव के रूप में सफल होने की कामना करेंगे। पुष्प–वर्षा के साथ–साथ वधु–वर से अधिक आयु एवं समान–आयु वाले इसी प्रकार आशीष करेंगे। वधु–वर से छोटे आयु वाले सभी लोग आपके परिवार जीवन से हम सब प्रेरणा पाते रहेंगे ऐसी शुभकामना व्यक्त करेंगे और पुष्प वर्षा करेंगे।

अंत में हर्ष ध्वनि के साथ समारोह सम्पन्न होगा। इसी के साथ–साथ वधु–वर के माता–पिता सबको कृतज्ञता अभिनंदन प्रस्तुत करेंगे। इसके तुरंत बाद वधु–वर दोनों को पारितोष अर्पित करना चाहेंगे, करेंगे। इस प्रकार विवाहोत्सव कार्य को सम्पन्न करना एक अनिवार्य स्थिति है।

दिन, समय, बेला, मुहूर्त के सम्बन्ध में भी मानव परंपरा में विचार विधि कल्पना में आना स्वाभाविक है। इस मुद्दे पर प्रधान रूप में जागृति के उपरान्त, जागृत परंपरा में मानवीयतापूर्ण संचेतना अर्थात् जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने सहज कार्य–व्यवहार, विचार सम्पन्न करने की शुभ व सुन्दर समाधानपूर्ण स्थिति–गति रहेगी। मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में होने के कारण विवाह के लिये अनुकूल समय को ऋतु काल के अनुसार निर्णय लेना और ब्रह्माण्डीय किरण विधि से ग्रह–गोल–नक्षत्रों का स्थिति–गतियों को आवश्यकतानुसार पहचानना स्वाभाविक रहेगा। इसी के साथ दिन, वार, तिथियों को पहचानना रहेगा ही। ये सभी बिन्दुओं पर मानव सर्वतोमुखी प्रवृत्तियों

का द्योतक है। इस क्रम में स्वाभाविक है बसन्त और शीत ऋतुओं में मानव को सभी देश–काल में विवाहोत्सव का अनुकूलता बना ही रहता है। मानवीयता पूर्ण परंपरा के साथ सभी ब्रह्माण्डीय किरण अनुकूल रहना स्वाभाविक रहता है। क्योंकि मानवीयतापूर्ण परंपरा का अवतरण में भी ब्रह्माण्डीय किरणों का सानुकूलता बना ही रहता है। इसी सत्यतावश ब्रह्माण्डीय किरणों का सानुकूलता में विश्वास होना स्वाभाविक है। इसके उपरान्त भी हर देश जो अक्षांश–देशान्तर रेखा विधि से धरती पर देश का चिन्हित होना उस देश पर ब्रह्माण्डीय किरणों के प्रभावों को पहचानना मानव जागृति सहज कृत्य और परीक्षण है। इस विधि से भी शुभ–बेला को पहचान सकते हैं। सर्वसुलभ बेला यही है कि ऋतु–काल, परिस्थितियाँ उभय परिवार के लिये अनुकूल होना ही सार्वभौम औचित्यता है।....**(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 284–291)**

- **समारोह**

मानव परंपरा ज्ञानावस्था की अभिव्यक्ति संस्कारानुषंगीय विधि से जागृति पूर्णता को प्रमाणित करने वाला होने के कारण सभी उत्सवों में **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना समीचीन रहता ही है। जिसकी अक्षुण्णता होना देखने को मिलता है। अतएव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के लिये पूरक है, सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के लिये पूरक होना देखा गया है। इसी क्रम में अखण्ड समाज का अध्ययन और अवधारणा पूर्वक अनुभव सहज होना देखा गया है। इसके लिये अर्थात् संस्कार के लिये उत्सव के प्रकारों को स्पष्ट किया जा चुका है। सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप सभा विधि से अखण्ड समाज का स्वरूप परिवार विधि से चरितार्थ होना देखा गया है। सभी सभाओं में समारोह सम्पन्न होना एक आवश्यकता बना रहता है। इन समारोह की प्रधान अभिव्यक्ति सभा और सभा से अनुशासित पाँच–पाँच समितियों का कार्यकलाप उसकी स्थिति–गति का मूल्यांकन और सभा का उद्देश्य के आधार पर सफलताओं का आंकलन मूल्यांकन हर्ष–ध्वनियों के साथ समारोह का उत्साह और प्रसन्नता का मूल्यांकन किया जाता है। हर सभा का अपने उत्सव को व्यक्त करने का निश्चित उपलब्धियों के साथ होना ही देखा गया है जैसे परिवार में समाधान; समृद्धि; परिवार समूह में न्याय, उत्पादन में समारस्यता; ग्राम मुहल्ला परिवार सभा में न्याय, उत्पादन विनिमय कार्यों में संतुलन और सामरस्यता समाधान का आधार बना रहता है। यही नित्य उत्सव का स्वरूप है। हर समारोह में, कम से कम ग्राम परिवार सभा में समारोह का सभी सम्भावनाएँ समीचीन रहता ही है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 291–292)**

- व्यवहार कार्यों को मूल्य, चरित्र और नैतिकता का पूरक विधि से सम्पन्न होना देखा गया है। यही मानवीयतापूर्ण आचरण का वैभव है और प्रमाण है। व्यवहार में न्यायपूर्वक नियमों का, व्यवस्था में नियमपूर्वक न्याय का अनुबंधित रहना दिखाई पड़ता है। इसे हर मानव अनुभव करता ही है या करेगा ही। जैसे :– हर **सम्बन्धों** में मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति यह न्याय का स्वरूप है। इसके समर्थन में अथवा इसके पूरकता में नियम के रूप में तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग–सुरक्षा प्रमाणित होता है। इनके पूरकता में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार सम्पन्न होना देखा गया है। मूल्यांकन का यह आधार बिन्दु है। दूसरा आधार बिन्दु मानव अपने परिभाषा के अनुरूप 'त्व' सहित व्यवस्था में जीने की कला को प्रमाणित करता है। यही समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में तृप्ति का स्रोत और गति अनुस्यूत रूप में बना ही रहता है। यही व्यवस्था का वैभव होना पाया जाता है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 294–295)**
- (न्याय–सुरक्षा मूल्यांकन) – .....हर परिवार मानव **संबंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति पाने के कार्यक्रम में निष्णात रहता ही है। ऊपर कहे परिस्थितियाँ स्वाभाविक रूप में मानव **सम्बन्धों** के साथ वर्तमानित होने वाले संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का ही महिमा है। ऐसे कार्य–कलापों का मूल्यांकन उभय–पक्ष करता है। शैशवकालीन स्थितियों के अलावा अन्य सभी स्थितियों में परस्पर मूल्यांकन सम्पन्न होना सहज है। जैसे प्राकृतिक प्रकोप के लिये अर्पण–समर्पण, किया गया पूरकता कार्य विधि का मूल्यांकन उभय पक्ष करना स्वाभाविक है और इसमें उभय तृप्ति का होना भी स्वाभाविक है। इसी प्रकार रोगी और संतानों के साथ किया गया अर्पण समर्पण से उन–उन का सुरक्षा स्वाभाविक रूप से सम्पन्न हो पाता है। जिससे उभयतृप्ति होना देखा गया है। यही न्याय है। संतान जब कौमार्य और युवावस्था में होते हैं अभिभावकों से निर्वहन किया गया क्रियाकलाप अर्पण – समर्पण का मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में जीवन–जागृतिपूर्वक होता ही है। मानवीय शिक्षा पूर्वक जीवन जागृति समीचीन रहता ही है। इसी प्रकार **सभी सम्बन्धों** में किया गया पहचान मूल्यों का निर्वहन और उभयतृप्ति जागृत परंपरा में एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में उभयतृप्ति नित्यभावी रहता ही है। जागृत परंपरा में केवल किशोरावस्था तक मानव संतान जागृतिशील रहना देखा गया है। युवा और प्रौढ़ अवस्था में हर मानव, परिवार मानव के रूप में वैभवित रहता ही है। परिवार मानव का स्वरूप, कार्य और परिभाषा सदा–सदा ही न्याय और नियम सम्बन्ध विधि से ही सम्पन्न हुआ करता है। इसी के प्रमाण में हर परिवार मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व का धारक–वाहक होना जागृति सहज तथ्य है। जागृति मानव का वर होने के कारण जागृतिपूर्वक ही हर मानव मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है। यही न्याय का आद्यान्त स्वरूप है। शिशुकाल में केवल मूल्यांकन व्यक्त नहीं हो पाता है, तृप्ति अपने–आप प्रमाणित होती है। यह पोषण–संरक्षण का फलन होना पाया जाता है। मूल्यांकन पूर्वक तृप्त रहने के लिये उभय जागृत रहना आवश्यक रहता ही है। जागृत परंपरा में हर संतान जागृतशील होता ही है।

जागृति के अनन्तर मूल्यांकन भावी हो जाता है। मूल्यांकन में उभयतृप्ति ही संतुलन बिन्दु है। यही न्याय का प्रकाशन है। ऐसा मूल्यांकन हर न्याय–सुरक्षा समिति में सम्पन्न होना स्वाभाविक है।

न्याय–सुरक्षा समिति किसी भी स्थिति में मूल्यांकन करने में समर्थ रहता है। हर स्थितियों में **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन ही प्रमुख बिन्दु बना रहता है। जागृत मानव; **सम्बन्धों** की अवधारणा से परिपूर्ण रहता ही है। मूल्यों का अनुभव हर जागृत मानव में वर्तमान रहता ही है। इसी आधार पर मूल्यांकन सुलभ हो जाता है। फलस्वरूप समीचीन उभय पक्ष में तृप्ति का होना देखा जाता है।

न्याय–सुरक्षा का स्वरूप, कार्य और फलन परस्पर तृप्ति ही है। यह तृप्ति परस्परता में विश्वास के रूप में ही पहचाना जाता है। विश्वास अपने में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित हो जाता है। इस विधि से न्याय–सुरक्षा जागृत परंपरा सहज लोक–मानस का स्वरूप होना पाया जाता है। अतएव न्याय–सुरक्षा पूरे गाँव का, नगरवासी, धरती में निवासियों का जागृत मानसिकता का ही गति और स्थिति है। गति में **सम्बन्ध**, मूल्य, अर्पण, समर्पण, मूल्यांकन और उभय तृप्ति ही है। उभयतृप्ति निरंतर सह–अस्तित्व का प्रमाण है। सह–अस्तित्व के रूप में ही न्याय अपने में नित्य ध्रुव है। दूसरे ओर तृप्ति ही नित्य ध्रुव है। इसी बीच में सम्पूर्ण क्रियाकलाप जागृत मानव परंपरा में मूल्यांकित हो जाता है। इस विधि से न्याय–सुरक्षा मानव परंपरा में सहज व्यवहारिक अनिवार्यतम प्रक्रिया–प्रणाली के रूप में स्पष्ट है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर:299– 301)**

****

संदर्भ: आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- जब कभी भी एक से अधिक मानवों का होना सान्निध्य रूप (सान्निध्य का तात्पर्य साथ–साथ रहने से हैं) में होता है, तभी एक–दूसरे की पहचान होना स्वाभाविक है। संचेतनशीलता सहज मानव में पहिचानने की क्रिया ही न्यूनतम संचेतना का प्रमाण है और **सम्बन्धों** की पहचान भी न्यूनतम संचेतना का द्योतक है। इसका प्रमाण है, आज भी प्रत्येक स्वस्थ मानव, न्यूनतम रूप में आसपास की चीजों को पहचानता है। आस–पास का तात्पर्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों की पहुँच की सीमा है। संचेतना का तात्पर्य भी जानने मानने पहचानने एवं निर्वाह करने से है।... **(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 3–4)**
- कबीला युग के साथ भी नस्ल रंग की विपदाएं बारंबार मंडराती ही रही। बार–बार आक्रमण और प्रतिरोध के लिए तैयारी, आहार–आवास–अलंकार प्रजनन कार्य प्रणाली के लिए बारंबार परिवर्तन जैसा एकोदर संतानों में से ही परस्पर प्रजनन **संबंध**, दूसरा एकोदर न हो ऐसा प्रजनन संबंध, जिसे आज की भाषा में विवाह **संबंध** कहते हैं, स्वाभाविक रहे आया। **(अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 7–8)**
- मानव ही सर्वशुभ की अपेक्षा करता है। अर्थशास्त्र का अध्ययन, समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व क्रम में है। समृद्धि का धारक–वाहक परिवार होता है। परंपरा में लाभ के बाद लाभ और भोग के बाद भोग का सम्मोहन बढ़ता आया है। इस सम्मोहन को समीक्षित करने योग्य जागृति को सुलभ करना ही इस आवर्तनशील अर्थचिंतन विचार और शास्त्र की महिमा है। आवर्तनशील अर्थव्यवस्था की क्रियाप्रणाली मनुष्य **संबंधों** में संतुलन के उपरांत ही सार्थक हो पाता है। जहाँ–जहाँ तक **संबंध** में संतुलन नहीं है वहाँ–वहाँ तक भ्रमवश लाभोन्माद छाया ही रहता है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 19)**
- परिवार का तात्पर्य सीमित संख्यात्मक स्वायत्त नर–नारियों का न्याय पूर्वक सहवास रूप है। यह अपने आप में स्वयं स्फूर्त विधि से परस्पर **संबंधों** को पहचानना मूल्यों को निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और उभय तृप्ति पाना होता है। इसी के साथ–साथ समझदार परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होना, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना अथवा होना होता है। यही परिवार का कार्यकलाप का प्रारंभिक स्वरूप है। **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन विधि से समाज रचना और अखंड समाज होना पाया जाता है अथवा संभावनाएं है ही। समाज रचना विधि ही व्यवस्था का आधार है। व्यवस्था का स्वरूप पांचों आयामों में यथा

  (1) न्याय सुरक्षा, (2) उत्पादन कार्य (3) विनिमय कोष (4) स्वास्थ्य संयम, और (5) शिक्षा संस्कार

  कार्यकलापों के रूप में प्रमाणित हो पाता है और उसकी निरंतरता संभावित है। सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। ऐसी व्यवस्था सार्वभौम होने की संभावना समीचीन है जिसकी अक्षुण्णता मानव परंपरा में भावी है। ऐसी व्यवस्था को कम से कमएक गाँव से आरंभ करना और सभी

आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य अर्हता सें समूचे ग्राम वासियों को सम्पन्न करना एक आवश्यकता है। ऐसे अर्हता से सम्पन्न परिवार मानव और परिवार कम से कम 100 परिवार के सह–अस्तित्व में परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था समझदारी पूर्वक प्रमाणित हो पाता है। ऐसी परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र चरितार्थ होना सहज संभव है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 30–31)**

- आवर्तनशीलता का तात्पर्य जिस किसी बिन्दु से समृद्धि के अर्थ में प्राकृतिक ऐश्वर्य नैसर्गिकता सहज पूरकता क्रम में लक्ष्यपूर्ति तक और पुनः आरंभिक बिन्दु तक सूत्रित होने से है। यह चक्राकार रूप में चित्रित हो पाता है और प्रमाणित हो पाता है। उदाहरण के रूप में बीज से वृक्ष तक एवं वृक्ष से बीज तक क्रियाकलापों का अध्ययन स्वयं चक्राकार विधियों से ही दिखाई पड़ती है। वंशों के अनुरूप शरीर रचना एवं शरीर रचना के अनुरूप वंश परंपराएं चक्राकार विधि से इंगित होती है। जानने–मानने के आधार पर पहचानना निर्वाह करना एवं पहचानने निर्वाह करने के क्रियाकलापों को जानना–मानना चक्राकार विधि से देखा जाता है। **संबंध सूत्रों के आधार पर मूल्य, मूल्य निर्वाह के आधार पर मूल्यांकन, मूल्यांकन के आधार पर संबंध सूत्र आवर्तन रूप में दिखाई पड़ता है।** व्यक्ति का पूरकता परिवार में, परिवार का पूरकता व्यक्ति के लिए सूत्रित होना आवर्तनशीलता है। परिवार की पूरकता ग्राम में, ग्राम की पूरकता परिवार के लिए सूत्रित होना आवर्तनशीलता है। श्रम नियोजन पूर्वक उत्पादन, श्रम मूल्य के आधार पर उत्पादित वस्तु का मूल्य और मूल्यांकन, उत्पादित वस्तु का श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय आवर्तनशीलता के रूप में प्रमाणित होता है। पदार्थावस्था प्राणावस्था के लिए, प्राणावस्था जीवावस्था के लिए, पदार्थ, प्राण और जीव, ज्ञानावस्था के लिए तथा ज्ञानावस्था, पदार्थ, प्राण और जीवास्था के लिए पूरक होना आवर्तनशीलता है। जीवन ज्ञान सहित सह–अस्तित्ववादी विचार मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण मानव और मानव परंपरा में प्रमाणित करना अपेक्षित है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 31–32)**
- मानव शरीर भी एक रासायनिक, भौतिक रचना है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व के रूप में नित्य प्रभावी होने के कारण जीवन और शरीर का **सम्बन्ध** और सह–अस्तित्व सहज रूप में देखने को मिलती है। इसी कारणवश शरीर को जीवन्त बनाए रखते हुए जीवन अपने निज ऐश्वर्य को, अर्थात् जागृतिपूर्ण ऐश्वर्य को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के क्रम में जीवन क्रियाकलाप प्रमाणित होता है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 35)**
- मानव मूल्य धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा रूप में होना समझ में आता है। **सम्बन्धों** का पहचान; मूल्यों का निर्वाह विधि से धीरता प्रमाणित होता है अथवा धीरता को हम प्रमाणित करते हैं। यह परस्पर **संबंध** संतुलन का द्योतक है। संपूर्ण **संबंधों** में साम्य रूप में वर्तमान विद्यमान वस्तु का नाम ही विश्वास है। वस्तु के रूप में विश्वास **सम्बन्ध** संतुलन के रूप में ही समझ में आता है। पहले भी यह उल्लेख किया गया था धरती, जल, वायु, वन, खनिज, वनस्पति, जीवों के साथ उन–उनके स्वभाव–धर्म के आधार पर **संबंध** संतुलन बनाए रखने में मानव समर्थ हो चुका है। मानव–मानव के साथ **संबंध** संतुलन बनाए रखने में आवश्यकता प्रतीक्षा बनी ही है। अतएव

आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था क्रिया प्रणाली मानव **संबंधों** में संतुलन के उपरान्त ही सार्थक हो पाता है। उदाहरण के रूप में यह देख सकते हैं कि जितना दूर तक अर्थात् एक व्यक्ति के साथ–साथ कई व्यक्ति के साथ जो अपने **संबंध** को संतुलित बनाए रखता है उसका सम्पूर्ण वस्तु लाभ हानि मुक्त विधि से उपयोग हो जाता है तथा जहाँ–जहाँ तक **सम्बन्ध** संतुलन नहीं है वहाँ–वहाँ तक भ्रमवश लाभोन्माद छाया ही रहता है। इसे प्रत्येक मानव अपने परिवेशगत मानवों के साथ निरीक्षण कर सकता है और प्रमाणित हो सकता है। वीरता को हम न्याय को सर्वसुलभ करने योग्य प्रवृत्तियों, कार्यकलापों और आचरणों के रूप में समझते हैं। एक उदाहरण ऐसा भी देखा जा सकता है कहीं भी दो व्यक्ति वाद ग्रस्त है, किसी मुद्दे में भ्रमित होकर ही ऐसा विवाद होना देखा गया है। ऐसे विवाद के मूल में दोनों गलत हों अथवा दोनों में से एक अवश्य गलत हो तभी वाद–विवाद होना विश्लेषित होता है। ऐसी स्थिति में वे दोनों परस्पर अपने सम्बन्धों को पहचाने नहीं रहते हैं इसलिए वाद–विवाद करने में कटिबद्ध हो जाते हैं। सम्बन्ध को समझने के उपरान्त एक दूसरे के बीच उत्पन्न मतभेदों का निराकरण करने का सामथ्र्य उदय होता ही है। इसी सिद्धांत के आधार पर तीसरा उन दोनों के परस्परता में सम्बन्ध संतुलन को स्थापित करने के लिए प्रयत्न करें वाद–विवाद दूर हो जाता है। परस्पर मानव के साथ संबंध स्थापित रहता ही है इसे जानना–मानना–पहचानना निर्वाह करना ही जागृति का तात्पर्य है। जागृतिपूर्वक ही मानव धीरता–वीरता–उदारता को और जागृतिपूर्णता के प्रमाण स्वरूप दया, कृपा, करूणा को प्रमाणित करता है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 44–45)**

- उदारता को हम अपने ही कार्यकलापों में, व्यवहारों में इस प्रकार देख सकते हैं कि **संबंध** संतुलन के उपरान्त तन–मन–धन रूपी अर्थ का उपयोग; सदुपयोग और सुरक्षा करते हैं। सदुपयोग का तात्पर्य शरीर पुष्टि (आहार पूर्वक) शरीर सुरक्षा (आवास–अलंकार पूर्वक) और जीवन जागृति की सार्थकता या चरितार्थता के लिए नियोजन कार्य का नाम है उदारता। संपूर्ण प्रकार का आवर्तनशीलता उदारता का ही द्योतक है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 45–46)**
- अर्थशास्त्र का तात्पर्य तन, मन, धन रुपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा और समृद्धि के रूप में दृष्टव्य है। जागृत मानव में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबी व्यवहार में सामाजिक रूप में पाया जाता है। यही परिवार मानव का स्वरुप है। जागृत मानव परिवार अपने में परस्पर **संबंधों** को निश्चित रूप में पहचानने, मूल्यों का निर्वाह करने, मूल्यांकन पूर्वक परस्पर उभयतृप्ति पाने के रूप में देखा जाता है। ऐसे परिवार में अपनाए गए उत्पादन कार्य में स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार का हर व्यक्ति पूरक होना पाया जाता है फलत: परिवार की आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन हर परिवार में समीचीन रहता ही है। परिवार में उभयतृप्ति, उसकी निरंतरता और आवश्यकता से अधिक उत्पादन उसका सदुपयोग और सुरक्षा यह स्वयं में आवर्तनशील है। इससे स्पष्टतया समझ में आता है कि मानवीयता पूर्ण परिवार में आवश्यकताएं सीमित हो जाती है क्योंकि उपयोग सदुपयोग प्रयोजनशीलता निश्चित होता है । **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 52)**

- ....परिवार अपने में परस्पर **संबंधों** को निश्चित रूप में पहचानने मूल्यों को निर्वाह करने, मूल्यांकन पूर्वक परस्पर तृप्ति उभय तृप्ति पाने के रूप में देखा जाता है। ऐसे परिवार में अपनायी गई उत्पादन कार्य में स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार का हर व्यक्ति पूरक होना पाया जाता है। फलतः परिवार की आवश्कता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन हर परिवार में समीचीन रहता ही है। यह भी अर्थात् परिवार में उभयतृप्ति, उसकी निरंतरता और आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उसका सदुपयोग और सुरक्षा, यह स्वयं में आवर्तनशील है। इससे स्पष्टतया समझ में आता है कि मानवीयतपूर्ण परिवार में आवश्यकताएं सीमित हो जाती है क्योंकि उपयोग, सुदपयोग, प्रयोजनशीलता निश्चित होता है। फलस्वरूप आवश्कता से अधिक उत्पादन हर परिवार में संभव है। (**अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 55–56**)
- ...जिस गाँव में कोई विशेष उत्पादन नहीं हो पाता है उसको अन्य स्रोतों से उत्पादन जो अधिक है उसे देकर वांछित वस्तुओं को पा लेना भी बहुत सहज है ऐसी स्थिति में आवर्तनशीलता पुनः सहवास और **सम्बन्ध** विधि से स्पष्ट हो जाता है। (**अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 57**)
- पूरे गाँव में आवर्तनशीलता को इस प्रकार पहचानना आवश्यक और सहज है कि प्रत्येक परिवार समूचे ग्राम परिवारों के साथ एक दूसरे को किसी **संबंध** से पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं मूल्यांकन करते हैं। सदा तृप्ति मिलती ही रहती है। दूसरा श्रम मूल्यों के आधार पर वस्तु मूल्यों का मूल्य निर्धारित करते हैं और परस्पर विनिमय करते हैं। हर परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य स्पष्ट रहता ही है। इस प्रकार वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय और न्याय–सुरक्षा कार्यकलाप एक दूसरे से पूरक विधि से आवर्तनशील होते हैं। क्योंकि श्रम नियोजन, श्रम मूल्य में सामरस्यता, **संबंध** और मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य में सामरस्यता और उसका नित्य गति के रूप में व्यवहार और विनिमय एक–दूसरे के लिए पूरक होते हैं और नित्य गतिशील रहते हैं इस प्रकार इसकी आवर्तनशीलता समझ में आती है। (**अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 57**)
- समूचे व्यवस्था का अर्थात् एक परिवार से विश्व परिवार, मानव व्यवस्था को पहचानने–निर्वाह करने के क्रम में दस सीढ़ियों में पहचानना सहज है। यथा
    1. परिवार सभा व्यवस्था
    2. परिवार समूह सभा व्यवस्था
    3. ग्राम परिवार सभा व्यवस्था
    4. ग्राम समूह परिवार सभा व्यवस्था
    5. ग्राम क्षेत्र परिवार सभा व्यवस्था
    6. मंडल परिवार सभा व्यवस्था
    7. मंडल समूह परिवार सभा व्यवस्था
    8. मुख्य राज्य परिवार सभा व्यवस्था
    9. प्रधान राज्य परिवार सभा व्यवस्था और

10. विश्व राज्य परिवार सभा व्यवस्था।

इन दसों सीढ़ियों का अन्तर संबंध हर एक व्यक्ति 10 व्यक्ति को अथवा हर 10 व्यक्ति एक–दूसरे को मानव सहज **संबंधों** के रूप में पहचानने, उसमें निहित मूल्यों को निर्वाह करने के रूप में समझा गया है।... **(अध्याय: 3, पृष्ठ नंबर: 59)**

- भ्रम–निर्भ्रमता को आंकलित करना, जीव चेतना एवं मानव चेतना के आधार पर है। जीवन ज्ञान, सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत होने के उपरांत ही तुलनात्मक समझ संभव होना पाया गया। इन्हीं आधारों पर आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था की भी संभावना स्पष्ट हुई है। यही रोशनी सह–अस्तित्ववादी विश्व दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। जीवन ज्ञान सम्पन्न होने के उपरान्त ही सह–अस्तित्व में अविभाज्य मानव सह–अस्तित्व को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना संभव हुआ है। पहचानने, निर्वाह करने के क्रम में ही मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित होना पाया जाता है। मानवीयता पूर्ण आचरण मूलतः तीनों आयाम में (मूल्य, चरित्र, नैतिकता) सम्पन्न होता है। मानवीयता पूर्ण चरित्र को स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार के रूप में देखा गया है। चरित्र के साथ मूल्यों का स्वरुप को **संबंधों** की पहचान, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति के रुप में होना देखा गया है। नैतिकता को तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा के रूप में देखा गया है। चरित्र के रूप में समाज मानव, मूल्य के रूप में परिवार मानव और नैतिकता के रूप में व्यवस्था मानव होना प्रमाणित है। यह मानवत्व रूपी मानव चेतना पूर्वक सार्थक होना पाया जाता है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 112–113)**
- स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। स्वायत्त मानव का स्वरूप–स्वयं के प्रति विश्वास–श्रेष्ठता के प्रति सम्मान,–प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन। यह सब आवश्यकता के रूप में समीचीन रहता ही है। इसकी आपूर्ति अस्तित्वदर्शन, जीवनज्ञान पूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव पद आवश्यंभावी होती है। ऐसा स्वायत्त मानव कम से कम दस संख्या में मिलकर साथ–साथ जीने की कला को जीने देकर जीने के रूप में प्रमाणित करता है। दूसरे विधि से हर परिवार जागृत मानव **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभय तृप्ति पाते हैं। साथ ही परिवारगत उत्पादन–कार्य में एक दूसरे के लिए पूरक होते हैं, फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन प्रमाणित होता जाता है। यही समृद्धि का आधार–सूत्र है। इस प्रकार जो दस व्यक्ति रहेंगे साथ में सभी उम्र के होंगे ही, ये सब स्वायत्ततापूर्ण, स्वयात्तशीलता के रूप में देखने को मिलता है। स्वायत्त मानव का परिवार मानव होना स्वाभाविक है। क्योंकि सह–अस्तित्व में ही स्वायत्तता का प्रमाण होना स्वीकार्य रहता है। इसी क्रम और विधि से परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह, क्षेत्र, मंडल, मंडल समूह, मुख्य राज्य, प्रधान राज्य और विश्व राज्य परिवार और व्यवस्था के रूप में स्वरूपित होना सहज है। इसकी आवश्यकता समीचीन है। परिवार को ही दूसरे

भाषा में समाज कहा जाता है। मानव **सम्बन्ध**–बोध विधि से ही मूल्य निर्वाह और मूल्यांकन, चरित्र और नैतिकतापूर्वक सम्पन्न होना मानव में ही देखा जाता है। इसी सत्यतावश आवर्तनशील अर्थव्यवस्था स्वाभाविक रूप में सार्थक होता है। मूल्य, चरित्र और नैतिकता क्रम में सर्वमानव वैभवित होना चाहता ही है। सफल होने में अभी तक जो अड़चन थी वह केवल व्यक्तिवादी एवं समुदाय चेतना, सामुदायिक श्रेष्ठता का भ्रम। फलस्वरूप, समुदाय–वर्ग संघर्ष, प्राकृतिक देन–ईश्वरीय देन मान लेना ही रहा। अभी यह सौभाग्य समीचीन हो गया है कि मानव मानवीयता को सार्वभौम आचरण के रूप में पहचानना–निर्वाह करना, जानना और मानना सहज हो गया है। अतएव आवर्तनशील स्वरूप–कार्य और प्रयोजन को समझना और उसे प्रमाणित करना आवश्यक है ही। आवर्तनशीलता का स्वरूप मूलत: विभिन्न आयामों में, विभिन्न मूल्यों के आधार पर ही प्रयोजित होना पाया जाता है। जैसे सह–अस्तित्व में जीवन मूल्य, मानव मूल्य आवर्तित होता है। प्रामाणिकता सहज विधि से जीवन मूल्य सफल होता हुआ देखा गया है। सार्वभाम व्यवस्था क्रम में मानव मूल्य सहज सार्थक होना स्पष्ट है और अखण्ड समाज में भागीदारी स्वयं समाज मूल्य यथा स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य आवर्तनशील होना पाया जाता है। इसमें से उत्पादनपूर्वक यथा निपुणता, कुशलतापूर्ण जीवन शक्तियों को हस्त लाघव सहित (शरीर के द्वारा) प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित करने की क्रियाकलाप को उत्पादन कार्य नाम है। यह प्रसिद्ध है। सबको विदित है। ऐसे उत्पादित वस्तुओं को दूसरे से उत्पादित किया गया वस्तु को पाने के क्रम में हस्तांतरित कर लेना अर्थात् लेन–देन कर लेना मानव कुल में एक आवश्यकता है। यही मूलत: विनिमय के नाम से जाना जाता है। ऐसे विनिमय कार्य उत्पादन के लिए जो कुछ भी शक्तियों का नियोजन कर पाए वही वस्तुओं में उपयोगिता और कला मूल्य के रूप में पहचानने में आती है। **(अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 135–137)**

- ...स्वायत्त मानव की पहली सीढ़ी स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, दूसरे सीढ़ी में प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, तीसरी सीढ़ी में व्यवहार में सामाजिक व्यवसाय में स्वावलंबी होने योग्य अपने में समृद्धि को पा लेना ही स्वायत्त मानव का स्थिति रूप है। जो स्वयं में ज्ञान, विज्ञान दर्शन और तर्क संगत विधि से सम्पन्न होना और मानवीयतापूर्ण आचरण में दृढ़ रहना ही स्वायत्त मानव का स्थिति रूप है। ऐसे प्रत्येक मानव ही परिवार मानव के रूप में परिवार की परिभाषा को चरितार्थ रूप दे पाता है। मानव परिवार की परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार होना देखा गया है कि कम से कम 10 व्यक्ति परस्परता में **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, स्थापित और शिष्ट मूल्यों को निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते हैं। इसी के साथ परिवारगत उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक हो पाते हैं। फलत: परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर लेते हैं। इस प्रकार समाधान और समृद्धि का स्रोत परिवार से प्रचलित होना संभव हो जाता है। **(अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 150–151)**

- सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी होने के आधार पर जड़–चैतन्य प्रकृति में सह–अस्तित्व सहज रूप में वर्तमान है। संपूर्ण **सम्बन्धों** का सूत्र भी सह–अस्तित्व ही है। जीवन और शरीर का संबंध भी निश्चित अर्थ और प्रमाण सहित ही वर्तमान हैं। जीव शरीरों के साथ जीवन का **संबंध** वंशानुषंगीय विधियों से कार्य करने के रूप में प्रमाणित है मानव शरीर और जीवन का **संबंध** संस्कारानुषंगीय विधि से सार्थक और प्रमाणित होना पाया जाता है। संस्कार का तात्पर्य ही है स्वीकृतिपूर्वक (अवधारणापूर्वक) प्रवर्तनशील होने से अथवा प्रवर्तित होने से है। यही मानवीय संस्कृति–सभ्यता–विधि–व्यवस्था के रूप में सहज अभिव्यक्ति–संप्रेषणा–प्रकाशन है। (**अध्याय:, 6 पृष्ठ नंबर:** 210)

ज्ञानावस्था के पाँच मानव

मानव	स्वभाव	विषय	दृष्टि	प्रमाण
राक्षस मानव	क्रूरता प्रधान हीनता, दीनता	आहार, निद्रा, भय, मैथुन	प्रिय, हित, लाभ	अव्यवस्थाओं का प्रकाशन = भ्रान्त मानव
पशु मानव	दीनता प्रधान हीनता, क्रूरता	,,	,,	,,
मानव	न्याय प्रधान धीरता, वीरता, उदारता	वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा सहित उपकार प्रवृत्ति सर्वतोमुखी समाधान	न्याय प्रधान धर्म, सत्य	व्यवस्था, शिक्षा, आचरण में सामरस्यता = स्वराज्य में प्रवृत्ति, प्रमाण
देव मानव	धर्म प्रधान दया, धीरता, वीरता उदारता	लोकेषणा सहित उपकार प्रवृत्ति सर्वतोमुखी समाधान	न्याय व धर्म प्रधान, सत्य	स्वराज्य में निष्ठा स्वतंत्रता में प्रवृत्ति, प्रमाण
दिव्य मानव	सत्य प्रधान दया, कृपा, करूणा धीरता, वीरता, उदारता	आचरण पूर्णता (नित्य समाधान) सर्वतोमुखी समाधान उपकार प्रवृत्ति	सत्य प्रधान	मुक्त जीवन और स्वराज्य व स्वतंत्रता सहज प्रमाम = निर्भ्रान्त मानव

-
- पंचकोटि के मानव चित्र से स्पष्ट है मानवीयतापूर्ण मानव ही परिवार मानव पूर्ण स्वत्व स्वतंत्रता अधिकारपूर्वक स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार में समाहित जितने भी सदस्य या मानव होते हैं (स्त्री–पुरुष–आबाल–वृद्ध) उनके परस्परता में **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, **संबोधनपूर्वक** मूल्यों का निर्वाह करते हैं। साथ ही दोनों मूल्यांकन करते हैं, उभय तृप्ति का अनुभव करते हैं। यही विश्वास के नाम से जाना जाता है। सुख, शांति, संतोष, आनंद का नाम ही विश्वास है। यह विश्वास परस्परता में होना स्पष्ट है। ऐसी परस्परताएं नैसर्गिक पर्यावरण मानवकृत वातावरण जैसा – मानवीय शिक्षा–संस्कार, परिवार मूलक मानवीय आचार संहिता रूपी स्वराज्य, व्यवस्था, संविधान और मूल्यमूलक, लक्ष्यमूलक प्रभेदों में प्रवर्तन के आधार पर मानव का व्यवस्थापूर्वक सुखी होना स्पष्ट है।... (**अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर:** 212)

- मूल्यांकन के मूल में मानव ही प्रधान वस्तु है। प्रत्येक समझदार मानव अपने स्वायत्तता सहित सम्पूर्ण है। परिवार मानव के रूप में प्रमाण है। 'परिवार मानव' स्वायत्त मानवों का सीमित संख्या है जो परस्पर **सम्बन्धों** को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं उभयतृप्ति पाते हैं और परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार उत्पादन कार्य को अपनाए रहते हैं, ऐसे उत्पादन कार्य को सफल, सार्थक बनाने के लिए आवश्यकता से अधिक पाने के लिए सभी पूरक रहते हैं। यही परिवार व्यवहार और परिवार कार्य को स्पष्टतया प्रमाणित करते हैं। परिवार में दस समझदार का होना आवश्यक है। यही वैभव अखंड समाज अथवा विश्व परिवार के स्वरूप में भी इतना ही व्यवहार और इतने ही कार्य रूप में होना पाया जाता है। इसीलिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का नाम दिया है। इसी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का अंगभूत आवर्तनशील अर्थशास्त्र को समझा गया है। इस आवर्तनशीलता क्रम में मूल्यों का मूल्यांकन करने के संबंध में स्पष्ट विश्लेषण, कार्यरूप, उसका **सम्बन्ध** सूत्र, उपयोगिता, सदुपयोगिता की ओर गति को पहचानने की आवश्यकता है। जिससे अखण्डता–सार्वभौमता अक्षुण्ण हो सके। **(अध्याय: 8, पृष्ठ नंबर: 244–245)**
- न्याय सुरक्षा सम्बन्धी आंकलन :–

  4. **सम्बन्धों** के साथ विश्वास निर्वाह के रूप में, व्यवहार–न्याय का आंकलन। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 259)**

- व्यवहार के मूल्यांकन का आधार मानव व नैसर्गिक **संबंधों** व उनमें निहित मूल्यों की पहचान व निर्वाह से है। साथ ही तन,मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग, सुरक्षा के आधार पर नैतिकता का मूल्यांकन किया जायेगा। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 267)**
- दया पूर्ण कार्य :–
  1. अखण्ड समाज सूत्र सहज मानव मूल्य स्थापित मूल्य व शिष्ट मूल्यों की पहचान और उसका निर्वाह।
  2. **सम्बन्धों** की पहिचान और निर्वाह क्रम में तन, मन, धन, रुपी अर्थ का अर्पण समर्पण।....

  (अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 286)

- 2. व्यवहार में न्याय (मानवीय व्यवहार) :–

  (मानवीय व्यवहार) मानव तथा नैसर्गिक **सम्बन्धों** व उनमें निहित मूल्यों की पहिचान और उसका निर्वाह करना। मानव परंपरा में मानव **सम्बन्ध** प्रधानत: सात प्रकार से गण्य है:–

  1. माता – पिता.
  2. पुत्र – पुत्री.
  3. गुरू – शिष्य.
  4. भाई – बहन.

5. मित्र – मित्र.

6. पति – पत्नी.

7. स्वामी – सेवक (साथी सहयोगी)

स्थापित मूल्य	शिष्ट मूल्य
1. विश्वास	1. सौम्यता
2. स्नेह	2. निष्ठा
3. कृतज्ञता	3. सौजन्यता
4. गौरव	4. सरलता
5. ममता	5. उदारता
6. वात्सल्य	6. सहजता
7. सम्मान	7. सौहार्द्र
8. श्रद्धा	8. पूज्यता
9. प्रेम	9. अनन्यता

मानव **सम्बन्धों** में साम्य मूल्य विश्वास तथा पूर्ण मूल्य प्रेम है। बिना विश्वास के कोई भी **सम्बन्ध** का निर्वाह संभव नहीं है। **सम्बन्धों** में विश्वास का निर्वाह न कर पाना ही अन्याय है।

मानव के नैसर्गिक **सम्बन्ध** तीन प्रकार से गण्य है :–

1. पदार्थावस्था के साथ **सम्बन्ध**।
2. प्राणावस्था (अन्य, वनस्पति) के साथ **सम्बन्ध**।
3. जीवावस्था (पशु पक्षी आदि मानवेतर जीवों) के साथ **सम्बन्ध**।

उपरोक्त **संबंधों** में उपयोगिता मूल्य दो प्रकार से गण्य है:–

1. परस्पर उपयोगिता पूरकता, उदात्तीकरण के रूप में रचना–विरचना क्रम में उपयोगिता।
2. परमाणु में विकास क्रम में उपयोगिता।

उपयोगिता का स्वरूप निम्न है:–

1. प्राकृतिक सम्पदा (खनिज, वनस्पति) का उसके उत्पादन के अनुपात में उपयोग संतुलन के अर्थ में।
2. प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में विघ्न न डालना एवं प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में सहायक बनना। (नैसर्गिक पवित्रता को समृद्ध बनाए रखे बिना, मानव स्वयं समृद्ध नहीं हो सकता।)

3. उत्पादन में न्याय

1. प्रत्येक व्यक्ति द्वारा आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना।
2. प्रत्येक व्यक्ति में आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने योग्य कुशलता व निपुणता को स्थापित करना, जिसका दायित्व शिक्षा–संस्कार समिति को होगा।
3. उत्पादन के लिए व्यक्ति में निहित क्षमता योग्यता के अनुरूप उसे प्रवृत करना जिसका दायित्व "उत्पादन कार्य सलाहकार समिति" का होगा।
4. उत्पादन के लिए आवश्यकीय साधनों को सुलभ करना इसका दायित्व "सहकारी विनिमय कोष समिति" का होगा।
5. उत्पादन कार्य सामान्य आकांक्षी (आहार, आवास, अलंकार) महत्वाकांक्षी (दूर दर्शन, दूर गमन, दूर श्रवण) सम्बन्धी वस्तुओं के रुप में प्रमाणित होना।
6. "उत्पादन कार्य सलाह समिति" व "विनिमय कोष समिति" संयुक्त रुप से सम्पूर्ण ग्राम की उत्पादन सम्बन्धी तादात, गुणवत्ता व श्रम मूल्यों का निर्धारण करेगी। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 287–290)**

- शिक्षा–संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन :–

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "शिक्षा–संस्कार समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी :–

1. **संबंधों** और मूल्यों की पहचान और निर्वाह, मानवीयता पूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन।.... **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 298)**

संदर्भ: मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(**संस्करण**: 2008)

- इस प्रकार जीवन और शरीर के संयुक्त रूप मानव–परम्परा की भी स्थापना, सह–अस्तित्व सहज, प्रसवन के रूप में दिखाई पड़ती है। सह–अस्तित्व, मूलत: अस्तित्व ही है, इस कारण नैसर्गिकता सहज प्रकृति में सह–अस्तित्व प्रमाणित होना नित्य प्रसवशीलता है। प्रसवशीलता का तात्पर्य, विविध अवस्थाओं में वैभवित, प्रकृति सहज मौलिकता और **सम्बंधों** से है। ऐसी मौलिकताओं के मूल में परस्पर पूरकता का होना, दिखाई पड़ता है। जैसे ऊर्जा रूपी सत्ता में संपृक्त प्रकृति का परस्पर पूरक होना स्पष्ट है क्योंकि सत्तामयता में ही सम्पूर्ण प्रकृति प्रमाणित है, वैभवित है। सम्पूर्ण प्रकृति ही, सत्तामयता सहज प्रमाणों को, क्रियाशीलता के रूप में प्रस्तुत करते आई है। इसी क्रम में सम्पूर्ण प्रकृति के विविध अवस्थाओं और पदों में वैभवित रहना हमें अध्ययन गम्य है। (**अध्याय**: **3, पृष्ठ नंबर**: 16–17)
- उत्पादन ही धन है – इस प्रकार, तन, मन, धन का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। इनकी उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनशीलता विधि से मूल्यांकन संभव हो जाता है। वस्तु का मूल्यांकन उपयोगिता और सुन्दरता के आधार पर मन का मूल्यांकन अनुभव मूलक विधि से कार्य–व्यवहार के रूप में मूल्यांकित हो जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के साथ मूल्यांकित हो जाता है। मूल्यांकन का आधार, मानव **सम्बन्ध** और नैसर्गिक **सम्बन्ध** है। मानव परम्परा में दोनों प्रकार के **सम्बन्ध** वर्तमान है और इनका निरंतर होना पाया जाता है। मानव परम्परा मानसिकता विवेक विज्ञान विचार सम्मत होने के कारण, मनोविज्ञान की समझ जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में (अथवा मनोविज्ञान सहज सम्बन्ध) एक आवश्यकता है। (**अध्याय**: **3, पृष्ठ नंबर**: 29)
- मानव **सम्बन्ध** प्रधानत: सात रूपों में देखा जा सकता है।

  पिता पुत्र **सम्बन्ध – सम्बंध** का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबन्ध से है। अनुबंध का तात्पर्य अनुक्रमात्मक विधियों की स्वीकृति क्रिया है अथवा स्वीकृतिपूर्ण और उसकी निरंतरता रूपी क्रिया है। अनुक्रम का तात्पर्य अनुस्यूत (निरंतर) क्रिया है। निरंतर का तात्पर्य वर्तमान क्रिया से है। वर्तमान का तात्पर्य अस्तित्व सहज, सह–अस्तित्व से है। अनुस्यूत (निरंतर) क्रिया, स्थिति और गति के रूप में, दृष्टव्य है। सह–अस्तित्व विधि में पूरकता क्रम, जागृति क्रम, जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता ही, अनुस्यूतता है। इस प्रकार पूर्णता का अर्थ, जागृति और उसकी निरंतरता से है। अनुक्रमात्मक विधि की सार्थकता, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में प्रमाणित होना, समीचीन है। इस प्रकार सम्पूर्ण **सम्बन्ध** व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में सार्थक होना पाए जाते हैं।

  सम्बंधों की पहचान, निर्वाह की आवश्यकता को सहज रूप में ही पहचाना जाता है। पिता–पुत्र **सम्बन्ध** में मूल्यों को प्रमाणित करना, परम्परा में इसकी शिक्षा, संस्कार और व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही, सफल होना पाया जाता है।

इस बीसवीं शताब्दी की दसवीं दशक तक व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा में अभी तक की शिक्षा, संस्कार विधियों से, समुदायवादी अथवा व्यक्तिवादी प्रयासों की अपेक्षा में होते हुए भी, स्वतंत्रता और स्वराज्य रूपी ध्रुवों के आधार पर सफल होने का आधार, किसी परम्परा में करतलगत नहीं हुआ अर्थात व्यवहार में प्रमाणित, शिक्षा में प्रबोधित नहीं हुआ। जिसके फलस्वरूप पुन: व्यक्तिवादी मानसिकता और समुदायवादी मानसिकता के लिए मानव विवश होते आया। इस प्रकार व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा का स्वरूप स्पष्ट हो गया। सर्वमानव जागृति सहज विधि से इसे स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, स्वानुशासन रूप चरित्र मूल्य, नैतिकता की मानसिकता का लोकव्यापीकरण सहित, प्रमाणित करने की आवश्यकता निर्मित हुई है। इसी क्रम में, अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान के आधार पर, यह “मानव–संचेतनावादी मनोविज्ञान” प्रणयित हुआ है। इसमें **सम्बंधों** को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना प्रधान तत्व है। यही मानव संचेतना का निश्चित स्वरूप है। जागृत मानव का सम्पूर्ण क्रम उक्त चार स्वरूप में व्याख्यायित है। ऐसी चार क्रियाएं प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए प्रमाणित होने का अध्ययन है। जैसे – माता की कोख में आई संतान, सर्वप्रथम मां को ही पहचानती है क्योंकि उनसे पोषण कार्य सम्पन्न होता हुआ, शैशव काल में ही, जीवन पहचान लेता है। फलस्वरूप मां को पहचानना संभव हो जाता है। उसी के साथ साथ संरक्षण कार्य, सूत्रित होना आरंभ होता है। शिशु के प्रति अपेक्षा माता पिता में यही बनी रहती है कि शिशु स्वस्थ रहे, खुश रहे, उत्सवित रहे। इसी प्रत्याशा को सफल बनाने के लिए, विविध प्रकार के उपायों को अनुसंधान करते और प्रयोग करते माता पिता को देखा गया है। जैसे ही शिशु काल से कौमार्य अवस्था समीचीन होती है वैसे ही जागृत मानव, जागृति व **सम्बंधों** को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने के अर्थ में अभिभावक प्रेरक होना पाया जाता है। साथ ही आहार प्रणालियाँ ऐसी शिशु और कौमार्य अवस्था से ही स्वीकार होने लगती है।

भ्रमित परम्परा में रुढ़ियाँ व्यक्तिवादी, परिवार समुदाय क्रम में रुढ़ियाँ (सामुदायिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत रुढ़ियाँ) क्रम से, कौमार्य अवस्था की मानव संतान को प्रभावित कर लेती हैं। इस कौमार्य अवस्था के पहले से ही, भ्रमित समुदायों, परिवारों में अभ्यस्त विधि से आहार प्रणाली (चाहे वह शाकाहार, दुग्धपान हो, चाहे मांसाहार, मद्यपान हो) के अभ्यस्त हो जाते हैं।

कौमार्य अवस्था में जैसे ही, “करो, न करो” – का चक्र चलना आरंभ होता है (जो माता, पिता करते रहते हैं, उसे नकारने’ की स्थिति में और जो माता, पिता नकारते रहे, उसे स्वीकार करने से या शंका उत्पन्न करने से) माता, पिता का ममता सूत्र डगमगाना आरंभ होता है। माता, पिता की ममता का सूत्र, उदारतापूर्वक सूत्रित रहता है। ममता डगमगाने का तात्पर्य, उदारता का भी, डगमगाना होता है।

इसी क्रम में, शिक्षा की भी बात आती है, क्योंकि सम्पूर्ण संस्कार “करो, न करो” में सिमट ही जाता है। जैसे ही यांत्रिक, तकनीकी विज्ञान, आकलनात्मक शिक्षा आरंभ होती है, वैसे ही मानव संतान में प्रचलित शिक्षा को

प्रबोधन पूर्वक स्मृति के आधार पर परीक्षण विधि को अपनाते हुए विद्यार्थियों को विद्वान घोषित किया जाता है। आदि काल से पुस्तक और स्मृति को दुहराना विद्वता मानी जाती रही है। अभी इस दशक में, बहुतायत लोगों ं में यह स्मृति विकसित हो चुकी है, नकारने के रूप में – (१) स्मृति विद्वता नहीं है। (2) पुस्तकें विद्वता नहीं है (3) विज्ञान विद्वता नहीं है। कुछ विज्ञानी इस पक्ष में है कि सम्पूर्ण विज्ञान और तकनीकी में, पारंगत होने के बाद भी, बेहतरीन समाज का प्रणेता न हो पाने, परिवार सहज संगीत और समाधान रूपी लय से वंचित रहने के आधार पर, विज्ञान को मानव संतुष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है – ऐसा मूल्यांकन हैं। इसके मूल में यह भी विश्लेषण आता है कि भौतिकी विधि से किए गए सूक्ष्म अनुसंधान के उपरान्त भी, मानव और जीवन, व्याख्या और सूत्र से रिक्त है। इसका खेद भी वैज्ञानिक, व्यक्त करते हैं और कुछ विज्ञानी यह भी कहते हैं कि जो कुछ भी विकास होना है, वह इसी विधि से होना है और सूक्ष्मतम अनुसंधानों से, जितनी भी काली दीवालें सम्मुख हैं वे दूर हो जावेंगी। सर्वेक्षण से यह पता लगता है कि विज्ञान परस्त सभी आदमी, विज्ञान से ही "प्रकृति रूपी सत्य समझ में आता है" – ऐसा दावा करते हैं। 200 वर्ष की अवधि में ही 50% से अधिक विज्ञानी (इतना ही नहीं) श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों में से 50% अधिक लोग, आज की स्थिति में, काली दीवालों को भांप लिए हैं। क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते हैं। उससे प्राप्त फल, परिणाम को अंतिम नहीं माना जाता है। अंतिम सत्य को समझा हुआ विज्ञानी मानव के सम्मुख प्रस्तुत नहीं हुआ है। विज्ञान विधि से हटकर, अनुसंधान करने का आधार ही, न रहने की स्थिति में परम्परा सहज (की) गति में घुल जाते हैं अथवा मिल जाते हैं अथवा दब जाते हैं। इन तीनों स्थितियों में अतृप्ति की पीड़ा बनी ही रहती है। इस कुण्ठाग्रस्त बिन्दु के उत्तर में, अस्तित्व मूलक मानव–केन्द्रित चिंतन, पूरकता उदात्तीकरण, रचना, विरचना और विकास, संक्रमण, जागृति, प्रामाणिकता सहज सूत्रों से, पारंपरिक धाराओं से हटकर शोध करने का एक अवसर प्रदान करता है।

कोई समुदाय परम्परा सार्वभौम न हो पाने की स्थिति में ही जातिवाद, नस्लवादी, रंगवादी, भाषावादी, पूजापाठ, अभ्यासवादी, सम्प्रदायवादी मानसिकता के अतिरिक्त, वर्गवादी मानसिकता के आधार पर भी "करो, न करो" वाला कार्यक्रम प्रकारान्तर से सभी संप्रदायों में बना रहता है। जीवन सहज रूप में, प्रत्येक मनुष्य में सार्वभौमता ही अपेक्षित है। इसी के आधार पर समुदाय परंपराओं में, मानव जिसे स्वीकारता है, उन्हीं की संताने उसे नकार देती हैं। कहीं कहीं परंपराएं जिसे नकार देती हैं, उसे स्वीकार कर भी लेता है। इस प्रकार पीढ़ी से पीढ़ी में, शोधात्मक और विद्रोहात्मक विधियों से प्रकाशन होते आया है। इस प्रकार प्रत्येक **सम्बंध** कुछ काल के बाद, परस्परता में कुछ सार्वभौमता और उसका भरोसा बनते तक ऐसे शोध और विद्रोह, भावी हो गए हैं। इसीलिए मानव केन्द्रित चिंतन समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेंदारी को हर मानव द्वारा निर्वाह करने की आवश्यकता को उजागर किया है। जिसकी आवश्यकता सह–अस्तित्व सहज विधि से भावी मानव ही सार्वभौम आचरण, सार्वभौम ज्ञान और सार्वभौम दर्शन का, धारक, वाहक है। प्रत्येक मनुष्य सार्वभौमता की अपेक्षा में ही है। यह प्रमाणित हो जाता है। इसी के पक्ष में, मानवीयतापूर्ण आचरण, अस्तित्व दर्शन और जीवन–ज्ञान प्रस्तावित है। इस क्रम में मानव का

अपने अभीष्ट अर्थात अभ्युदय को सम्पूर्ण विधि से प्रमाणित करने की आशा, विचार, इच्छा और संकल्प है। ऐसी स्थिति के लिए ही, मानव का अध्ययन जीवन ज्ञान के आधार पर सुलभ हो गया है। इस "मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान" में जागृत जीवन क्रिया–कलाप का सत्यापन है।

पुत्री–पुत्र का **सम्बंध** भी माता–पिता (पुत्र–पिता के **सम्बंध** भी, पिता–पुत्र) **सम्बंध** के समान आशय को रखता है। ऊपर किए गए विश्लेषण से परस्पर मतान्तर होने का सम्पूर्ण कारण, विश्लेषित हो गए हैं। सभी **सम्बंधों** के मूल आशय में समानता है, यथा समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व मानव सहज अपेक्षा है सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही सदा–सदा सुखी होना पाया जाता है तथा कार्य कलापों में (अर्थात निर्वाह कार्यकलापों में), विविधता का होना स्वाभाविक है। यही विविधताएं, जीने की कला के रूप में ख्यात होती है।

मूल आशय सहज सार्थकता के आधार पर की गई सभी प्रकार की निर्वाह व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी, **सम्बंधों** और मूल्यों के निर्वाह रूप में ही प्रमाणित हो जाती है। मूल्यों का निर्वाह ही, **सम्बंधों** को पहचानने का प्रमाण है। मूल्य, मूलतः जीवन सहज बल की ही अभिव्यक्ति, संप्रेषणा है। इसमें अनुभव बल ही प्रधान कार्य, क्रिया वस्तु है। जागृति पूर्णता के रूप में अनुभव, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। यही नित्य विश्वास के रूप में ही व्यक्त होता है। इसका प्रयोजन और कार्य रूप वर्तमान में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी ही है। व्यवस्था यह है यथा समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व मानव सहज अपेक्षा है।

सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही सदा–सदा सुखी होना पाया जाता है, विश्वास सहज कार्य व्यवहार रूप में **सम्बंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह मूल्यांकन उभयतृप्ति व संतुलन ही है। विश्वास केवल सत्य में, से, के लिए होता है। अस्तित्व ही परम सत्य है। जीवन ज्ञान, परम सत्य है। मानवीयता पूर्ण आचरण का, परम सत्य होना, पाया जाता है। इसे चरितार्थ रूप देने की अभिलाषा से ही, मानव–संचेतना को पहचाना गया है। अस्तित्व में मानव का वैभव अथवा स्वराज्य को, स्वयं के वैभव को प्रमाणित करने के लिए एक अध्ययन की आवश्यकता को अनुभव किया गया है।

मूल्यों का प्रयोजन, **सम्बंधों** के अनुरूप, नाम दिया गया है। इसे स्थापित मूल्यों के रूप में नौ नामों से, संबोधित किया गया है। सभी मूल्य, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी तथा प्रमाणिकता सहज (के) रूप में ही, प्रमाणित है – जैसे कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह है। सम्बन्ध सहजता, व्यवस्था सूत्र में और व्यवस्था सूत्र सह–अस्तित्व में, सह–अस्तित्व, अस्तित्व में वैभवित रहना पाया जाता है। "**सम्बन्धों** के अनुरुप" – का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबंध से है और पूर्णता का अर्थ जागृति पूर्णता से है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 29–34**)

- विश्वास एक साम्य मूल्य है। सम्पूर्ण **सम्बंधों** में, सहज विश्वास ही, वर्तमान में सुख पाने की विधि है। निरंतर समझदारी सहित आवश्यकताओं, उपकारों, कर्तव्यों, दायित्वों में भागीदारी को निर्वाह करने के क्रम में, विश्वास प्रमाणित होना पाया जाता है। यह निरंतर उत्सव के स्वरूप में स्पष्ट है। ऐसा विश्वास पूर्ण होने के क्रम में, जागृति ही इष्ट है। इष्ट के साथ ही भक्ति का प्रवाह होना पाया जाता है। ऐसा बहने वाला विश्वास का, एक स्वाभाविक वातावरण अथवा प्रभाव क्षेत्र बनना सहज है, फलत: तन्मयता प्रमाणित होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 43–44)**
- ...अस्तित्व सहज परम सत्य में निष्ठा होना, भक्ति सहज सार्थकता है। मानवीयता–पूर्ण आचरण में, निष्ठा का होना, भक्ति सहज कार्य है। भक्ति सहज निष्ठा का, कोई सार्थक आधार, विकसित (अर्थात जागृत) मनुष्य ही हो पाता है। ऐसी स्थिति में जागृति विधि क्रम स्थापित होना संभव है।

  अन्य प्रतीकों के साथ, जिन **सम्बन्धों** में निष्ठा करने के संकल्प से भक्ति का नाम लिया जाता है, उस प्रतीकात्मक विधि से अनेकानेक लोग लगने के उपरान्त भी परिवार, समाज व व्यवस्था सहज व्यवहार रूप में प्रमाणित होना संभव नहीं हुआ। इस विधि में जीवन जागृति और भक्ति सहज व्यवहार प्रमाण प्रमाणित नहीं हो पाता है, क्योंकि जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होना ही भक्ति पूर्वक प्रमाणित होने का आधार है। जीवन जागृति विधि से ही भक्ति सहज प्रमाण स्थापित होना संभव है। जागृति ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य होने के कारण जीवन ही, जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करने के लिए समर्थ है। जीवन जागृति पूर्वक ही, निष्ठा में नित्य उत्सव हो पाता है। स्वयं में ही भक्ति का आधार बिंदु, जागृति के रूप में हो पाता है। इसीलिए और किसी भी अवलम्बन से, जागृति लक्ष्य को पाना, संभव नहीं हो पाता है क्योंकि जागृति लक्ष्य का अध्ययन होते ही, जागृति के लिए निष्ठा, जीवन सहज रूप में स्वीकृत हो जाती है। भक्ति का आधार भी जीवन में समाहित है। भक्ति रूपी क्रिया कलाप की सम्पूर्ण अहर्ता जीवन में ही समाहित है। जागृति, अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है। इस प्रकार भक्ति की संभावना, सुलभता सबके लिए समीचीन है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 46)**

- मन में ही भक्ति की अभिव्यक्ति होना, स्पष्ट हो चुका है। यह सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों को जीवन्त बनाए रखने का कार्य सम्पन्न किए रहता है। यह प्रत्येक मनुष्य में पाया जाने वाला प्रमाण है। ऐसे जीवन्त मनुष्य ही जागृति के लिए स्रोत हैं। इसलिए कि प्रत्येक मनुष्य, विश्वास पूर्वक जीना ही चाहता है। विश्वास को मूल्यों के क्रम में जानना, मानना, **सम्बंधों** को पहचानना व निर्वाह करना सरल, सुंदर, समाधान और इसकी निरंतरता है। इसका प्रमाण – शिशु काल में प्रत्येक मानव संतान, विश्वास के अलावा कुछ करता ही नहीं। परम्परा में, विश्वास सहज धारक वाहकता प्रमाणित होने के उपरान्त, परम्परा में आए (अथवा अवतरित) सभी मानव संतान, शिशु काल की विश्वास निष्ठा को जागृत परम्परा सहज रूप में ही अपनाए रखते हैं। इसका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसीलिए मानव परम्परा में, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान की आवश्यकता मूल्यांकित हो पाती है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 47)**

- संयत होने का तात्पर्य प्रिय हित लाभ प्रवृतियां न्याय, धर्म, सत्य संगत होने से है। पूर्वानुक्रम विधि से चिंतन, समाधान और **सम्बंध**, मूल्य–मूल्यांकन के रूप में प्रामाणिकता के प्रभाव क्षेत्र के अनुरूप मान्यताओं को मन स्थापित कर लेता है अथवा मान जाता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 49)**
- उदारता पूर्वक जब मनुष्य अपने आचरण को प्रस्तुत करता है, तब अपने पास जो कुछ भी तन, मन, धन रूपी अर्थ होता है उसे प्रसन्नता और उत्सव के रूप में ही, अर्पण– समर्पण करना प्रमाणित होता है। यह प्रधानत: मात्रात्मक रूप में अधिकाधिक व्यक्त हो पाता है। इसमें अर्थात ममता सूत्र में निष्ठा, पूर्णतया अभिव्यक्त होती है। ममतावश पोषण कार्य भरपूर सम्पन्न होता है और संरक्षण कार्य, सहजता से संपन्न हो जाता है। इस प्रकार प्रधानत: पोषण कार्यों में ममता सहित मातृत्व को और ममता सहित संरक्षण कार्यों को पृत **सम्बंध** में होना पाया जाता है। पितृ **सम्बंध** संरक्षण पोषण रूप में ममता व उदारता मूल्य व मूल्यों के रूप में, सम्पन्न होना, पाया जाता है। ममता और उदारता, मानव परम्परा में, संतानों के साथ, सहज ही वर्तमान होने वाला आचरण है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 50)**
- सम्पूर्ण स्वयं स्फूर्त विधि "जानने–मानने में तृप्ति" के अर्थ में, पहचानने–निर्वाह करने में – समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व रूपी प्रमाणों के अर्थ में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। ऐसे स्वयं स्फूर्त प्रभाव, सह–अस्तित्व सहज रूप में, निश्चित, योग संयोग के लिए सूत्र निर्मित करते हैं। वातावरण में मानव तथा मानव निर्मित परिस्थितियां, बनी ही रहती हैं। नैसर्गिकता, सहज ही समीचीन रहती है। फलस्वरूप स्वयं स्फूर्त पहचान मनुष्य के साथ होना स्वाभाविक हुआ। इसी प्रकार नैसर्गिकता के साथ भी, संतुलन के अर्थ में स्वयं स्फूर्त पहचान हो पाती है। नैसर्गिकता में मनुष्य के अलावा, तीनों अवस्थाएं गण्य हैं। मानव परम्परा ही वातावरण के रूप में मनुष्य को उपलब्ध रहता ही है। सकारात्मक विधि से स्नेह की निरंतरता एवं वैभव प्रमाणित होता है। इस प्रकार स्नेह **सम्बंध** भी स्वयं स्फूर्त **सम्बन्ध** हैं। इसमें निहित आशय और प्रक्रिया भी स्पष्ट हो चुकी है। इसमें निरंतरता को बनाए रखना ही निष्ठा है। निष्ठापूर्वक ही सम्पूर्ण **सम्बन्ध** सफल हो पाते हैं। स्वयं स्फूर्त विधि ही, संतुष्टि का आधार बिंदु है। इसीलिए उभय संतुष्टि है क्योंकि हर सम्बन्ध में एक से अधिक व्यक्तियों का होना पाया जाता है। इसलिए उभय संतुष्टि (अथवा जो जो संबंधित रहते हैं, संतुष्टि क्रम में) स्नेह **सम्बंध** का निरंतर वैभवित होना पाया जाता है। सम्पूर्ण स्वयं स्फूर्तियां, प्रत्येक व्यक्ति में, व्यवस्था और उसकी सार्वभौमता के अर्थ में ही प्रवर्तित है, जिसका व्यावहारिक फलन स्पष्ट रहता है। मानव–परम्परा में, से, के लिए सार्वभौम फलन–समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व ही है। जीवन सहज अभीष्ट सुख, शांति, संतोष और आनंद ही है। इन दोनों ध्रुवों के प्रमाणीकरण प्रणाली के रूप में ही, मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था स्वानुशासन स्पष्ट हो जाता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 54–55)**

- व्यवस्था को जानने–मानने के फलस्वरूप उसमें निष्ठा, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होती है। व्यापार **सम्बन्धों** में व्यवस्था नहीं होती, क्योंकि व्यापार लाभोन्मादी प्रवर्तन है। इसके परिणाम स्वरूप अव्यवस्था भावी है और उसकी पीड़ा का होना पाया जाता है। अव्यवस्था मानव को वरेण्य नहीं है। लाभोन्माद, स्व–सम्मोहन नामक आवेश है, जिसका निराकरण आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने में प्रमाणित है। यह तभी सहज होता है जब मनुष्य मानवीयता को अपने स्व त्व के रूप में पहचान पाता है। यह जागृति क्रम में होने वाला सहज पद है। व्यक्ति किसी धरती पर सफल हुए होंगे इस धरती पर परम्परा के रूप में, सार्वभौम व्यवस्था को अभी भी पहचाना नहीं गया है। अभी भी जीवन सहज रूप में मित्रता और निष्ठा का बोध होता है। ऐसा होते हुए भी व्यवहार, विचार, व्यवस्था के रूप में पहचानना, उसे सर्व–सुलभ करना, मानव की प्रतीक्षा में है। मित्र **सम्बन्धों** में विश्वास और उसके निर्वाह में निष्ठा, जीवन जागृति और उसकी मान्यता की अभिव्यक्ति है। अस्तित्व में मानव कुल संस्कारानुषंगी विधि से ही एक अखंड स्थिति है। इसे सार्थक बनाने, होने, करने में और उसकी परम्परा रूप में, जागृति का धारक, वाहक बनना, मनुष्य के लिए एक आवश्यकता, अनिवार्यता बन चुकी है। इसकी नित्य संभावना समीचीन है। इस प्रकार मित्रता व निष्ठा की महिमा, संभावना और प्रयोजन, सामरस्यता व समाधान के अर्थ में, प्रत्येक मनुष्य को इंगित है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 55–56)**
- ९.पुत्र–पुत्री – १०. अनुराग

परिभाषा : (१) शरीर रचना की कारकता सहज स्वीकृति और जीवन जागृति में पूरकता बराबर पिता। (२) पोषण सुरक्षा की स्वीकृति। (३) संतानों में आवश्यकीय आजीविका का स्रोत अथवा आधार रूप में स्वयं को स्वीकारना। (४) शिक्षा संस्कार प्रदान करने में सक्षम योग्य स्वीकारना (मानना)। (५) सम्पूर्ण ज्ञान प्रावधानित करने के लिए स्वयं में स्वीकारना (मानना) हर जागृत अभिभावक इन पांच विधियों में, से, के लिए स्वीकारते है, तभी पुत्र पुत्री का सम्बन्ध जागृत परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी के रूप में स्वीकार होता है। यह माता पिता का अधिकार, स्वीकृति अथवा मान्यता का स्वरूप है। इनमें से स्वयं की जागृति के अनुरूप, निर्वाह करता हुआ, देखने को मिलता है।

परिभाषा – अनुराग :– निर्भ्रमता में प्राप्त आप्लावन (अनुपम रसास्वादन संभावना की स्वीकृति)। आप्लावन अर्थात **सम्बंधों** में निहित मूल्यों का निर्वाह करने में सफलता।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक मनुष्य में, किसी आयु के अनंतर, संतान रूपी शरीर रचना के सम्बन्ध में, सामान्य मान्यता की पहचान हो पाती है। मानव संतान के अवतरण के लिए एक मां और पिता की स्वीकृति सर्वसुलभ हो चुकी है (अथवा सर्व जनमानस में, स्वीकृत हो चुकी है)। इस मुद्दे पर वैज्ञानिक चिंतन ने, इसके विपरीत कुछ कर देने की इच्छा तो व्यक्त किया, पर कर गुजरने की जगह में मनुष्य की भाषा में जटिल और बहुत खर्चीले आशयों सहित एक सुयोग्य मनुष्य के, एक चमड़े के टुकड़े से ही, लाखों अरबों मनुष्य बनाने का दावा प्रस्तुत किया। आशय यही रहा कि, अच्छे आदमी के चमड़े से अच्छे आदमी पैदा होंगे। इस मुद्दे पर ऐतिहासिक पराभव का

कारण, इन्हीं दावों के अंतर्निहित रहे आया, क्योंकि अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व में, रचना कार्य–कलापों के अध्ययन से पता लगता है कि, मनुष्य शरीर भी भौतिक और रासायनिक रचना है। "जीवन" विकसित परमाणु, गठनपूर्ण परमाणु, जीवन पद में संक्रमित परमाणु है। जीवनी क्रम में गुजरता हुआ जीवन जागृति के अर्थ में मानव शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होता हुआ, जानने–मानने, पहचानने के क्रम में है। मानव शरीर रचना की महिमा, जीवन प्रदत्त, जीवन्तता सहित, सम्पूर्ण संवेदनाओं को (पांच ज्ञानेन्द्रिय एवं पांच कर्मेन्द्रियों) व्यक्त करने के रूप में, जीवन मंशा के अनुसार संचालित हो सके, ऐसे वैभव के अवसर में ही, जीवन जागृत होने का प्रावधान, संभावना, जीवन सहज आवश्यकता, ये तीनों मानव परम्परा में, अध्ययन गम्य हैं। इस विधि से जीवन ही, शरीर को संचालित करने वाला, सह–अस्तित्व सहज कार्य–कलाप है।

वैज्ञानिक दावों और अभीप्सा ने, जीवन तत्व को पूर्णतया ओझिल, अनसुनी और अनदेखी किया। हठधर्मितावश, धरती और नैसर्गिकता के साथ, जो कुछ भी कर सकते थे, वह सभी हविश पूरा कर चुके। सभी ओर पराभव की काली दीवाल आ गई है या आने ही वाली है। यह भी तथ्य उजागर हो चुका है कि जिन नियमों सिद्धांतों को विज्ञान कहते हैं, उन विधियों से जीवन तत्व का विश्लेषण हुए हैं, उन सबसे अधिक, हर मनुष्य दिखता ही है। इसका मूल तत्व, जीवन सहज वैभव के रूप में, सभी व्यक्तियों में, देखने को मिलने वाली, कल्पना शीलता मात्र है। इससे पता लगता है कि विज्ञान से जो कुछ भी कहा जाता है, उससे अधिक विचार विश्लेषण परिकल्पना, कल्पना होती ही है। जो कुछ भी किया जाता है, उससे अधिक तो होता ही है। इस प्रकार मानव–सहज (की) कल्पना–शीलता को, विधिवत अध्ययन करने के लिए प्रयत्न होता तो, अभी मनुष्य जैसा विविध समस्याओं से जकड़ा है, इस दुर्गति की स्थिति नहीं आती।

पुत्र–पुत्री सम्बन्ध की, धारक वाहकता जागृत माता–पिता में होना, सहज है। इन जागृति के मूल में अभ्युदय आकांक्षा, सभी में रहती है। इसीलिए माता पिता संतान के लिए, अभिभावक होते हैं। (अभ्युदय की कामना, कल्पना – योजना में अभिभूत रहने की स्थिति और गति, जिनमें हो = अभिभावक). ऐसी स्थिति में परिभाषा में, कहे गए सभी स्वीकृत सूत्र अभ्युदय के लिए आवश्यक होते हैं, यह भी स्पष्ट है। अभ्युदय का स्वरूप, सार्वभौम तत्व है।

नियति सहज अभीप्सा है। जो अस्तित्व में है, वही मनुष्य में होता है। इसी विधि से अभिभावक की , संतान के प्रति अभ्युदय कामना, किसी शिक्षा संस्कार, व्यवस्था के बिना भी, कल्पना के रूप में, स्वीकृत रहते आया है। इस तथ्य को देखने पर पता चलता है कि अस्तित्व में अभ्युदय सूत्र और व्याख्या है ही। फलस्वरूप अस्तित्व में मानव अभ्युदय का, प्रामाणिकता के लिए प्रयोजित होना ही, मानव कुल का प्रयोजन है। उक्त विधि से, विश्लेषण से, मानसिकता से, मान्यताओं से यह पता लगता है कि मान्यता के रूप में भी मानव शुभ चाहता ही है। मान्यता

ही अभ्युदय का आधार और अभ्युदय मानवीयता पूर्ण मानसिकता का आधार है, प्रयासोदय समझदारी सहज जागृत परम्परा में संक्रमित होने के क्रम में है।

ऐसा शुभ मानस सम्पन्न मानव, व्यर्थताओं से, अवांछनीयताओं से, अस्वीकृत दबावों से ग्रसित क्यों रहा है ? – इसका उत्तर यही मिलता है कि परंपराएं सड़ चुकी हैं अथवा भ्रमित मान्यताओं से परम्परा ग्रसित हो चुकीं हैं। फलत: प्रत्येक शुभ मानस सम्पन्न संतान, परम्परागत, भ्रमवादी प्रभावों से प्रभावित हो जाती है। इसके साक्ष्यों को देखें – जैसे – (१) प्रत्येक संतान किसी अभिभावक की गोद में ही होती है, यह सबको विदित है। अभिभावकों में (अथवा सर्वाधिक अभिभावकों में) उनकी परिभाषा में कहे हुए सभी आशय, सार्थक नहीं हो पाते, जबकि होना चाहिए। यही आशय स्वीकृत है। न हो पाना किसी अभिभावक को स्वीकृत नहीं है। (२) दूसरी विधि में प्रत्येक मानव संतान, किसी न किसी शिक्षा–शिक्षण संस्थान में, अर्पित होती है, वे संस्थान अभ्युदय पूर्ण शिक्षा और शिक्षण पूर्ण संस्कार विधियों से अनभिज्ञ रहते हैं।

दूसरी भाषा में, इस धरती पर, जितनी भी शिक्षण संस्थाएं, विगत से आज तक हुई है, उनमें मानवाभ्युदय सम्पन्नता और उसकी सार्वभौमता प्रमाणित नहीं हो पाई। फलत: विद्यार्थी के लिए यही शेष रह जाता है कि जो शिक्षा, शिक्षण संस्थान, अभी तक जो कुछ भी, प्रावधानित कर पाए हैं, उसे ही पढ़ें। इससे यही हो पाया जैसा कि अभी सम्पूर्ण मानव दिख रहे हैं, देख रहे हैं, कर रहे हैं, करा रहे हैं, भूल रहे हैं, झेलने के लिए बाध्य कर रहे हैं। इसका एक वाक्य में सार है – समस्याओं का विपुलीकरण होना। आरंभिक समय से अभी तक, समस्याएं अधिक होते ही आई हैं, समस्यायें कभी स्वीकार नहीं हो पायी।

उक्त प्रकार से पता लगता है कि मानवीयता पूर्ण परम्परा स्थापित होने के लिए, आप हम प्रयत्नशील हैं। इसकी सफलता के लिए, "मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान" प्रस्तुत है। सम्पूर्ण अभ्युदय के लिए मानव परम्परा में, अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न होना, अनिवार्यता है। इसी क्रम में परिवार व्यवस्था परम्परा, ग्राम–परिवार, विश्व परिवार परम्परा और व्यवस्था क्रम में ही, अभ्युदय का निश्चयन, प्रावधान, प्रभावन सहज समीचीन है। फलस्वरूप मानव कुल पुत्र–पुत्री सम्बन्धों को विधिवत निर्वाह करता हुआ, सफलता का अनुभव कर सकेगा। आज भी जो विरले लोग आंशिक रूप में सफलता का अनुमान कर रहे होंगे, वे भी परिभाषा में कहे हुए आशय को पूरा करने की स्थिति में ही संतुष्ट हो पाएंगे। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:56–60)**

- ११. स्वामी (साथी) – १२. दायित्व

सहयोगी = दायित्व कर्तव्य साथी = दायित्व–कर्तव्य। सहयोगी – कर्तव्य दायित्व।

परिभाषा : (स्वामी) साथी :– (१) सर्वतोमुखी समाधान प्राप्त व्यक्ति। ऐसे व्यक्ति का ही, किसी और व्यक्ति के अभ्युदय के लिए, साथी होना संभव है। अभ्युदय ही सर्वजन आकांक्षा है। इसे सफल बनाना, मानव परम्परा है। इसमें (अर्थात अभ्युदय में) पारंगत व्यक्ति दूसरों को अभ्युदयशील, अभ्युदयपूर्ण प्रमाणित करने के क्रम में, साथी (स्वामी) का पद पाता है। (2) "स्वयं ईक्षयतेति सा स्वामी" स्वयं स्फूर्त विधि से दृष्टा पद में हो। " इच्छयेते इति सा स्वामी"। स्वयं को जो पहचान चुका है, जान चुका है, मान चुका है, वे निर्वाह करने के क्रम में साथी (स्वामी) कहलाते हैं।

दायित्व :– परस्पर व्यवहार, व्यवसाय एवं व्यवस्थात्मक **सम्बंधों** में निहित, मूल्यानुभूति सहित, शिष्टता पूर्ण निर्वाह।

साथी (स्वामी) एक नामकरण है जिसकी सार्थकता परिभाषा में ही इंगति हो चुकी है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व है, यह विदित हो चुका है। इसी क्रम में **सम्बन्धों** को पहचानना निर्वाह करना, जानना मानना संभव है और यह प्रमाणित होता है। श्रेष्ठता का गुणानुवादन सुनकर, श्रेष्ठता के लिए साथी (स्वामी) का वर्णन, मनुष्य सहज (की) संभावना है। साथी (स्वामी) शब्द के साथ ही अपेक्षाएं, श्रेष्ठता एवं शुभ के वांछित स्रोत के रूप में ही भास–आभास हो पाता है। ऐसे साथी (स्वामी) अभ्युदय के अर्थ में– समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह–अस्तित्व के सफल होने के लिए, दिशादर्शन करते हैं। सहयोगियों में स्वयं स्फूर्त होने के लिए, पूरक विधि से, प्रमाणित हो पाते हैं। जागृति सूत्र विधि से, प्रत्येक व्यक्ति में सर्वतोमुखी समाधान सहज अभ्युदय को, प्रमाण रूप में विधि विहित प्रक्रियाओं से पारंगत बनाना, साथी (स्वामी) का ही दायित्व है।

अभ्युदय ही सर्वशुभ होने के कारण, सभी **सम्बन्धों** में सूत्र प्रभावित रहते हैं, यह स्वाभाविक है। सेवक अथवा सहयोगी साथी का अर्थ, जागृति और सर्वतोमुखी समाधान ही होता है। इसमें साथी (स्वामी) और सहयोगी (सेवक) के आशय, समान होने के कारण, पूरकता ही, स्वामी का काम है। पूरकता को स्वीकारना ही, सेवक (सहयोगी) का कार्य बन जाता है। पूरक विधि से ही, सह–अस्तित्व वैभवित है। इसी क्रम में मानव का एक मात्र मार्ग है, सह–अस्तित्व क्रम में, प्रत्येक मनुष्य, किसी न किसी के लिए पूरक होता ही है और किसी न किसी से पूरकता पाता ही है। ऐसी पूरकता वश जागृत होना, प्रत्येक व्यक्ति में, से, के लिए अवश्य ही सफल होने का मार्ग प्रशस्त होता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 60–61)**

- 13. सेवक (सहयोगी) – 14. कर्तव्य

परिभाषा : सहयोगी :– पूर्णता अथवा अभ्युदय के अर्थ में मार्गदर्शक अथवा प्रेरक के साथ–साथ अनुगमन करना, स्वीकार पूर्वक गतित होना।

कर्तव्य :– (१) प्रत्येक स्तर में प्राप्त **सम्बंधों** एवं सम्पर्कों और उनमें निहित मूल्यों का निर्वाह। (2) जिस कार्य को करने के लिए स्वीकार किए रहते हैं, उसे करने में निष्ठा को बनाए रखना।

प्रत्येक व्यक्ति किसी का सहयोगी या किसी का साथी है ही। सम्पूर्ण मूल्यों और **सम्बंधों** का निर्वाह स्वयं स्फूर्त सेवा है। इस तथ्य के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति का परस्परता में सम्बंध व मूल्यों का निर्वाह करना ही कर्तव्य है। इसी विधि से प्रत्येक व्यक्ति किसी के लिए साथी है, किसी के लिए सहयोगी है। इस प्रकार दायित्व और कर्तव्य सहज निर्वाह ही सेवा है। यही मूल्यों का आस्वादन भी है। दायित्व के रूप में साथी (स्वामी) कर्तव्य के रूप में सहयोगी (सेवक) का स्वरूप स्पष्ट है। दायित्व का व्यवहार कार्य रूप स्वयं स्फूर्त विधि से होना पाया जाता है। हर कार्य–व्यवहार लक्ष्य सहित सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय–तृप्ति संतुलन, नियंत्रण के रूप में सार्थक होना पाया जाता है। कर्तव्य के रूप में सेवा को पूर्ण कर पाना, सहयोगी के संतोष का स्रोत है। इस कर्तव्य में, निष्ठा का पालन हो, यही सहयोगी, के लिये प्राप्त मार्गदर्शन की सफलता है। मानवीय **सम्बंधों** व मूल्यों की पहचान व निर्वाह के रूप में सेवा है। स्वयं स्फूर्त होने तक के लिए मार्गदर्शन पाना, आवश्यक है, स्वयं स्फूर्त कर्तव्य निष्ठा का द्योतक है। सम्पूर्ण सेवाओं में उसका स्वत: स्फूर्त होना व उसके मार्गदर्शन की आवश्यकता, उसके अंत: बाह्य कर्तव्यों में सहज गति के रूप में पाया जाता है।

सामाजिक सम्बन्ध (अर्थात मानव **सम्बंधों**) के आधार पर, व्यवसाय सम्बन्ध, सफल होने की व्यवस्था है। केवल व्यवसाय सम्बंध के आधार पर, मानव **सम्बन्ध** एवं मूल्यों की पहचान नहीं हो पाती। व्यवसाय **सम्बन्ध** के लिए रासायनिक भौतिक वस्तुएं हैं जो मूलत: प्राकृतिक अथवा रूपात्मक अस्तित्व में, से निश्चित अवस्था के रूप में वर्तमान है। उस पर श्रम नियोजन पूर्वक, उत्पादित वस्तुओं में उपयोगिता अथवा कला मूल्य को स्थापित किया जाता है। वर्तमान तक लाभोन्मादी मानसिकता के आधार पर सम्पूर्ण व्यवसाय के निर्भर होने के फल स्वरूप (अथवा प्रलोभन मूल्यांकन के फलस्वरूप) यह विफल होते आया। जबकि अस्तित्व में लाभ से इंगित वस्तु नहीं हैं और न ही उस भय और प्रलोभन की सत्ता है। अस्तित्व में सम्पूर्ण व्यवस्था नियम– निरंतर, नियम प्रवर्तन, नियम–नियंत्रण, नियम–न्याय संतुलन, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन के रूप में, सार्वभौम है।

इसी के साथ पूरकता विधि क्रम में, उदात्तीकरण, विकास, जागृति देखने को मिलती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सभी समुदाय परंपराएं भ्रमवश ही लाभ, प्रलोभन तथा भय के दलदल में फंस गई हैं। इसका समाधान मूल्यों पर आधारित मूल्यांकन है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन है, संग्रह के स्थान पर आवर्तनशील अर्थव्यवस्था है,

सुविधा, भोग, अतिभोग के स्थान पर उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता है। इस आधार पर साथी सहयोगियों का कर्तव्य व दायित्व, व्यवहृत होना ही है, जो समीचीन है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 61–62)**

- १५.स्वायत्त – १६ समृद्धि (आवश्यकता से अधिक उत्पादन)

  परिभाषा :– स्वायत्त = समृद्धि का अनुभव ही स्वायत्त है।

  मूल्यांकन, आवश्यकता से अधिक होने के बिन्दु में ही तृप्ति का अनुभव होना पाया गया है। इसे हर व्यक्ति अपने में जाँच सकता है। ऐसा जाँचने के क्रम में इस तथ्य का भी मूल्यांकन होता है कि हम आवश्यकता से अधिक उत्पादन किये है या नहीं। आवश्यकता से अधिक उत्पादन परिवार की सीमा में ही मूल्यांकित होता है। परिवार में सभी **सम्बन्धों** का **सम्बोधन** जागृत मानव प्रकृति को जाँचने के लिए एक आवश्यकता है।

  इस विधि से सोचा जाय तो पता लगता है कि १० व्यक्तियों के बीच में सीमित, संयत संतानों के साथ सर्वाधिक **सम्बन्धों** का **सम्बोधन** परिवार में सुलभ हो जाता है, फलस्वरूप हर के साथ कर्तव्य और दायित्व स्फुर्त होना पाया जाता है। स्वयं स्फुर्ति सदा–सदा जागृति के आधार पर सम्पन्न होना पाया गया। जागृति समझदारी के अर्थ में सार्थक है। इस प्रकार समझदार मानव ही **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति करने में सक्षम है। इसकी आवश्यकता हर मानव में रहती ही है। इसे सार्थक रूप देना मानव परम्परा का अभीष्ट है। जागृति सर्वमानव को स्वीकृत है, इस विधि से समझदारी, लोक व्यापीकरण होने का स्रोत मानव परम्परा ही है उसमे भी शिक्षा–संस्कार विधा ही प्रबल प्रभावी स्रोत है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 63)**

- मानव परम्परा में स्वस्थ मनुष्य का प्रकाशन, मन:स्वस्थता अर्थात जीवन तृप्ति सर्वतोमुखी समाधान व व्यवस्था में प्रमाण पूर्वक, मनाकार को साकार करने के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ऐसी कार्य संपन्नता के लिए अनुकूल माध्यम रूपी शरीर ही, स्वस्थ शरीर है। इस प्रकार स्वस्थ शरीर की अवधारणा स्पष्ट है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में उपयोगी मानव **सम्बन्धों** एवं नैसर्गिक **सम्बन्धों**, उनमें निहित मूल्य निर्वाह करने योग्य शरीर, स्वस्थ शरीर है। अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन के लिए सुगम माध्यम होना स्वस्थता का द्योतक है। ऐसी कसौटियों से खरी उतरने वाली स्थिति को उज्वल बनाए रखना सहज रूप में हित दृष्टि व हित कार्य है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 66)**
- संयोग :– पूर्णता एवं उसकी निरंतरता के अर्थ में मानवीय सम्बंध रूपी प्राप्त मिलन। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 67)**

- मूल्य–मूल्यांकन, **सम्बंधों** के साथ मूल्यों की अनुभूतिपूर्वक ही, मूल्यांकन होना पाया जाता है। इसी शिष्टतापूर्ण पद्धति से अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, लोकव्यापीकरण होना सहज है। मानव परम्परा में इसकी नित्य संभावना, समीचीन है। इसीलिए **सम्बंधों** के आधार पर मूल्य और मूल्यांकन क्रिया–कलाप, मनुष्य सहज क्रिया है, क्योंकि मानव में, से, के लिए इसकी आवश्यकता बनी हुई है। इन्हीं आधारों पर प्रकारान्तर से, इसकी तलाश भी रही है। मानव परम्परा में इस सम्पदा का "स्वत्व" सहज रूप में, अधिकार न होने और स्वतंत्रता के रूप में प्रमाणित न होने के फलस्वरूप, सुदूर विगत से अब तक मानव का ही "स्वत्व", मानव में ही "स्वत्व", मानव से ही "स्तत्व" को जानने–मानने, पहचानने–निर्वाह करने से, मानव वंचित रहते आया। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 73)**
- 27–. शिष्य –28. जिज्ञासु

  परिभाषा : शिष्य :– जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए शिक्षा संस्कार ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमें गुरू का **सम्बन्ध** स्वीकृत हो चुका रहता है। यही जिज्ञासात्मक शिष्टता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 78)**

- 29. भाई–मित्र –30. प्रगति

  परिभाषा : प्रगति :– 1. मानवत्व रूपी आचरण सहज व्यवस्था व समग्र व्यवस्था अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी। 2. समाधान प्रधान समृद्धि सहज अपेक्षा प्रक्रिया और प्रमाण।

  भाई :– एकोदर (एक उदर = पेट से पैदा होने वाले) को भाई का **संबोधन** है।

  मित्र :– सहोदरवत् (सगे भाई जैसा) जो होते हैं, उन्हें भाई व मित्र **सम्बंध** का **सम्बोधन** है।

  भाई व मित्र **सम्बन्ध** में, शुभकामनाएं स्वयं स्फूर्त होना सहज है। जब मानवीयता पूर्ण परंपराएं हों तब संविधान, स्वराज्य व्यवस्था का आविभाज्य वर्तमान है। मानवीयता, मानव का स्वत्व होने के कारण, सहज अभिव्यक्ति होती है। भाई और मित्र के रूप में एक दूसरे का शुभ चाहते ही हैं।

  मानव, जीवन सहज रूप में, पहचान में आने वाले मित्र व भाई का सम्बन्ध व इसकी पहचान समाधान, समृद्धि के अर्थ में स्पष्ट होता है। सभी पहचान उद्देश्य सहित होना पाया जाता है। अथवा सभी पहचान किसी उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के अर्थ में सार्थक होता है। फलत: वही स्वयं लक्ष्य होते हैं। परस्पर प्रयोजन सदुपयोग व उपयोगिता में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, समाधान, प्रामाणिकता और समृद्धि के अर्थ में नित्य सार्थक हैं।

  मनुष्य की परस्परता में नियंत्रण सहित नियमों का पालन किया जाता है। मनुष्य स्वभाव गति रूप में नियंत्रित रहता है। मनुष्य की स्वभाव गति मनुष्यता ही नियंत्रण है। यह नियंत्रण व नियम के रूप में प्रमाणित होता है। सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करने।

1. जागृत मानव स्वयं व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी में प्रवर्तन रूपी शुभ के अर्थ में कार्यरत रहता है।
2. परस्परता में उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के प्रति वर्तमान में विश्वास होता है।
3. जीवन जागृतिकारी जीवन विद्या से सम्पन्नता। तन–मन–धन का सदुपयोग, सुरक्षा रूपी उदारता वर्तमान में प्रमाणित होता है। यथार्थताओं की पहचान व निर्वाह करने के रूप में (धीरतारूपी) मूल्य व मूल्यांकन होता है।
4. पूरकता विधि पूर्ण, आचरण कार्य सहित धीरता, वीरता, उदारता रूपी वास्तविकता पर आधारित व्यवहार होता है। सह–अस्तित्व सहज नियति रूपी नियम, नियंत्रण, संतुलन व न्याय पालन से सत्यता सहज मानवीयता पूर्ण आचरण व्यवहार व्यवस्था में प्रमाणित होता है। इसी विधि से स्वतंत्रता, स्वराज्य मानव कुल में प्रमाणित होता है। पीढ़ी से पीढ़ी के लिए यही नित्य स्रोत होना पाया जाता है। उक्त विधि से पाये जाने वाली समझदारी सहित भाई–मित्र **सम्बंधों** की समझदारी सहित सार्वभौम व्यवस्था में जीने के लिये तत्पर किये जाना समीचीन है। साथ ही स्वयं की उपयोगिता सद्–उपयोगिता व प्रयोजनों का पहचान, मूल्यांकन और निर्वाह रूपी पूरकताएं, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार से प्रमाणित होना सहज है।

मानवीयता पूर्ण प्रवर्तन कार्य	अमानवीयता पूर्ण प्रवर्तन कार्य
1. शुभकामना सन्तुलन प्रवृत्ति व कार्य	कामावेश भोग प्रवृत्ति व क्रिया
2. स्नेह विश्वास सह–अस्तित्व प्रवृत्ति व कार्य	क्रोधावेश हिंसक प्रवृत्ति व क्रिया
3. उदारता दायित्व कर्तव्य में अर्पण– समर्पण	लोभावेश संग्रह प्रवृत्ति व क्रिया
4. मूल्य व मूल्यांकन कर्तव्य दायित्व का निर्वाह	मोहावेश अव्याप्ति दोष, प्रवृत्ति व कार्य
5. नियम पालन बौद्धिक, सामाजिक, प्राकृतिक प्रक्रिया व कार्य	मदावेश स्वयं के प्रति अधिमूल्यन
6. पूरकता व दयापूर्ण कार्य व्यवहार, विन्यास, जागृति पूर्वक तन, मन, धन का नियोजन सभी सम्बन्धों में।	मात्सर्य आवेश अवमूल्यन प्रवृत्ति व कार्य

उपरोक्त वर्णित चित्रण से, मानवीयता पूर्ण पद्धति से भाई व मित्र सम्बन्ध सफल और अमानवीयता पूर्वक असफल होना स्पष्ट है। मानवीयता के प्रकाशन में, सभी सम्बन्ध सहज रूप में दिखाई देते हैं। उसके निर्वाह करने का मार्ग प्रशस्त होता है। (अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर:83–86)

- 31. बहन – 32. (उन्नति के अर्थ में) सम्बंध व संबोधन

सम्बंध = पूर्णता के अर्थ में अनुबन्ध।

पूर्णता = आचरण व्यवहार व्यवस्था में भागीदारी में नियम, नियंत्रण संतुलन, न्यायपूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का प्रमाण व परस्परता में मूल्यांकन, उभय तृप्ति सहज सुलभ होना ही मानव सहज सभी **सम्बंधों** में आवश्यकता है।

अनुबंध = सार्थकता का अनुभव मूलक, बोध संपन्न, संकल्प सहज निष्ठा।

निष्ठा = अनुबंध संकल्प की निरंतरता।

अनुभव = अनुक्रम अर्थात नियतिक्रम में प्रमाणित होना।

प्रमाण =

परिभाषा : उन्नति :– 1. समृद्धि प्रधान समाधान सहज अपेक्षा, प्रक्रिया एवं प्रमाण। 2. जागृति और उसकी निरंतरता की ओर गति।

बहन :– एकोदरीय (एक पेट से पैदा होने वाली) अथवा एकोदरवत् बहनें होती हैं। यह **सम्बन्ध** निरंतर, विकास के लिए प्रेरक है। मानव के **संबंध** में उन्नति शब्द का तात्पर्य जागृति और उसकी निरंतरता से है। यही परस्परता में, से, के लिए प्रेरक होना पाया जाता है। प्रत्येक बहिन का, भाइयों से सभी ओर श्रेष्ठता की अपेक्षा बनी रहती है। मनुष्य सहज रूप में बल, बुद्धि, रूप, पद, धन, सम्पदा के रूप में विदित है। इनमें श्रेष्ठता की कामना, सभी **सम्बन्धों** की परस्परता में, प्रत्याशा के रूप में, देखी जाती है। साथ ही सच्चरित्रता, व्यवहार में सामाजिक, सच्चरित्र मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवसाय में स्वावलम्बी अथवा समृद्धि की अपेक्षा, हर भाई बहिन के **सम्बन्ध** में, सहज रूप में देखने को मिलती है। इस प्रकार यह **सम्बन्ध** परस्पर विकास व उन्नति का प्रेरक और सहायक होना सहज है।

रूप की सार्थकता सच्चरित्रता के रूप में, (अर्थात स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य–व्यवहार के रूप) में होती है।

बल की सार्थकता, दया पूर्वक होती है। इस रूप में दया का सफल होना सहज है। यह **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह क्रम में किया गया, सम्पूर्ण अर्पण समर्पण है।

धन की सार्थकता को उदारता के रूप में पहचाना जाता है। उदारता आय के अनुपात में व्यय, व्यय के अनुपात में आय के रूप में स्पष्ट है। तन, मन, धन का सदुपयोग ही, सहज उदारता है।

पद की सार्थकता, न्याय सुलभता के रूप में सफल है। मानव **सम्बन्ध**, नैसर्गिक **सम्बन्ध**, श्रम **सम्बन्धों** को पहचानना और मूल्यों का निर्वाह करना, सम्पूर्ण क्रियाकलाप हैं।

बुद्धि की सार्थकता विवेक (प्रयोजन व सार्थकता) रूप में सफल है। सम्पूर्ण प्रयोजन व सार्थकता, क्रम से ज्ञान, विज्ञान, सम्मत निर्णय विवेक होना सहज है। जो समाधान क्रम है। इसी क्रम में सर्वतोमुखी समाधान, समीचीन है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य है – आचरण, व्यवहार, व्यवस्था, कार्यों में मानवीयता आचरित होना है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 86–87)**

- ज्ञानावस्था में मानव अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है। व्यवस्था में भागीदारी सहित "मानवत्व" का प्रमाण प्रस्तुत करना, अभी भी परम्परा रूप में साक्षित होने की प्रतीक्षा बनी हुई है। सम्पूर्ण मानवत्व का सूत्र नियम, न्याय, समाधान (धर्म) और सत्य ही है। नियम, प्राकृतिक, सामाजिक और बौद्धिक नियमों के रूप में अध्ययन गम्य है। न्याय के रूप में ही मानव – परम्परा में **सम्बन्ध**, मूल्य, मूल्यांकन की सामरस्यता के आधार पर, मानव प्रमाणित होता है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 90)**
- मानव कुल के निरीक्षण परीक्षण से पता चलता है कि सुख और उसकी निरंतरता, **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति के रूप में प्रभावित होता है। यह क्रिया निरंतर अनुभव में, से, के लिये स्रोत है। यह शुभ है। जीवन में अविभाज्य रूप से कार्यरत मन की प्रवर्तन क्रिया का नाम आशा है, जो मूल्य मूलक प्रणाली के रूप में नित्य सुखद संभावना है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 99)**
- 39.पति/पत्नी – 40. यतीत्व/सतीत्व

परिभाषा : यतीत्व :– यत्न पूर्वक तरने के लिए, जागृति निर्भ्रमता और जागृति सहज निरंतरता के लिए किया गया सम्पूर्ण कार्य–व्यवहार; निर्भ्रमता सहित की गई प्रक्रिया एवं प्रयास। यत्न अर्थात शोधपूर्वक समझना ही तरना।

सतीत्व :– सत्व पूर्वक तरने, जागृत होने के लिए किया गया कार्य–व्यवहार, समझ, प्रक्रिया समुच्चय; भ्रम मुक्ति। सत्व अर्थात संकल्प निष्ठापूर्वक समझना ही तरना।

सत्व :– सह–अस्तित्व पूर्वक अस्तित्व को सिद्ध करना।

विवाह सम्बन्ध को पति–पत्नी **सम्बंध** के नाम से जाना जाता है। मानव, मानव से पहचान, निर्वाह करता है, जहां सेवा ली जाती है। सभी **सम्बन्ध** परिवार के ध्रुव है। परिवार में एक से अधिक व्यक्तियों का विश्वास पूर्ण सम्मिलित उत्पादन कार्य करना तथा **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह रूपी व्यवहार करना सुलभ होता है। प्रत्येक सम्बन्ध निश्चित ध्रुव है। जैसे माता–पिता, पुत्र–पुत्री, स्वामी–सेवक, गुरू–शिष्य, भाई–बहिन, मित्र, पति–पत्नी। सम्पूर्ण **सम्बन्ध** नियति सहज रूप में वर्तमान रहते हैं। इनके प्रति जागृत होना एक अनिवार्य स्थिति है। जागृत और जागृति–पूर्ण कार्य–व्यवहार, विन्यास होना सहज है।

मानव, परम्परा सहज रूप में बहु–आयामी पहचान प्रवृत्ति वर्तमान है। अस्तित्व ही, सह–अस्तित्व होने के फलस्वरूप पदार्थावस्था ने परिणामानुषंगीय विधि से, विविध तत्वों के रूप में, संतुलन को व्यक्त किया है। प्राणावस्था ने, बीजानुषंगीय विधि से, विविध वनस्पतियों के रूप में संतुलन को व्यक्त किया है। जीवावस्था में वंशानुषंगीय विधि से, अनेक प्रकार की जीव परम्परा ने, संतुलन को व्यक्त किया है। मानव के लिए संस्कारानुषंगीय विधि से, समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना सार्थकता है। इसे स्वराज्य व स्वतंत्रता पूर्वक, मानवीय संस्कृति (सम्बंधों की पहचान, स्थापित शिष्ट मूल्य का निर्वाह), मानवीय सभ्यता (मानव मूल्य व जीवन मूल्यों का वर्तमान में प्रमाणीकरण), विधि (मानवीयता पूर्ण आचारण संहिता) की रक्षा, व्यवसाय आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित (स्वयं व्यवस्था होने में विश्वास और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जो – (१) शिक्षा संस्कार (२) न्याय–सुरक्षा (३) उत्पादन कार्य (४) विनियम कोष (५) स्वास्थ्य–संयम व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करना, मानव परम्परा की सार्थकता है। मानव, परम्परा के रूप में अखंड है। मानवीयता पूर्ण संस्कार परम्परा में, मानवीय शिक्षा संस्कार सार्वभौम है। मानव परम्परा में स्व–राज्य, स्वतंत्रता सार्वभौम है। मानव परम्परा में न्याय सुरक्षा, श्रम नियोजन व श्रम विनियम रूपी विनियम कार्य, सार्वभौम प्रमाणित होता है। साथ ही मानव जाति में अखंडता मानव धर्म, इसके अनुसंधान का उद्देश्य, प्रामाणिकता और सर्वतोमुखी समाधान, सार्वभौम है। इसलिए मानव, अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सहज है।

परिवार ही व्यवस्था के रूप अखंड है। परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है। इसलिए सम्पूर्ण मानव परिवार ही, समाज का स्वरूप है।

प्रत्येक सम्बन्ध का ध्रुव, परिवार रचना का आधार है। परिवार रचना, सम्बन्धों को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करने के रूप में है। सम्बन्ध मानव तथा नैसर्गिक भेद से पाया जाता है। एक से अधिक मनुष्यों का होना ही सम्बन्धों का होना, वर्तमान ही होता है। इस प्रकार, वर्तमान में जो कुछ भी है, जितना भी है, वह सब परस्परता में सम्बन्धित है। इनमें जागृत होना ही मानव का अधिकार है।

मानव ही जागृत व जागृति पूर्ण होता है, हो सकता है, होने के लिये इच्छुक है। इस कारण पहचानना निर्वाह करना और जानना–मानना सहज है। इसी क्रम में पति–पत्नी सम्बन्ध भी सहज है। इस सम्बन्ध में शरीर, (अथवा तन) सम्बन्ध, अन्य सम्बन्धों से भिन्नता का आधार है। शरीर सम्बन्ध मानव संतानार्थ सार्थक है। यही व्यसन के रूप में अथवा कामोन्माद के रूप में परिवार के असंतुलन तथा अव्यवस्था के रूप में परिणित होता है।

परिवार मूलक विधि से ही, स्वराज्य व्यवस्था नैसर्गिक है। व्यवस्था प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट है। इस प्रकार मानव परिवार के ध्रुव के रूप में पति–पत्नी का सम्बन्ध, पहचान व निर्वाह सहज है।

पति–पत्नी का मानस, परिवार के आकार में, सुदृढ़ होना ही एक मन, दो शरीर का तात्पर्य है। साथ ही जीवन जागृति का संकल्प होना, एक मन दो शरीर का तात्पर्य है। जीवन जागृति प्रत्येक मनुष्य की अभीप्सा है। जीवन जागृति, जीवन–विद्या (ज्ञान) बोध होने के उपरान्त है। यह जीवन क्रिया कलापों के अंतर्सम्बन्ध को, परस्पर जीवन प्रभाव क्षेत्र अनुबन्ध क्रम से स्पष्ट करता है। निरीक्षण, परीक्षण विधिपूर्वक अभ्यास से, द्रष्टा पद प्रतिष्ठा सहज ही प्रमाणित होता है। द्रष्टा पद प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही यतीत्व व सतीत्व का तात्पर्य है। एक पत्नी व्रत, एक पतिव्रत भी, यतीत्व और सतीत्व का प्रमाण है। इस प्रकार स्वानुशासन के रूप में द्रष्टा पद का, जीवन–जागृति का प्रमाण, मानव सहज है।

इस धरती में ही चारों अवस्थाओं का वैभव वर्तमान है। इस धरती पर मानव संतान संख्या का नियंत्रण होना, पति–पत्नी का एकत्र निश्चय मानसिकता होना, मानव अखंड समाज के रूप में स्पष्ट होना, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सार्थक होना आवश्यक है। ये सब एक दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार दाम्पत्य में, उभय मानसिकता–निर्णयों में, एक रूप होने से सहज ही, सर्वशुभ समीचीन होता है। इसका आधार मानवीयता है। जिसका प्रमाण स्वयं के प्रति विश्वास और श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने योग्य होना है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 100–103)**

- 41. माता – 42. पोषण

परिभाषा : पोषण :– इकाई + अनुकूल इकाई।

माता जब पुत्र–पुत्रियों को पहचानती है, तभी मातृत्व का प्रसव गुण पोषण के रूप में प्रमाणित होता है। स्वभाव गति सम्पन्न प्रत्येक मां अपनी संतान को पहचानती है, फलत: निर्वाह करती है। इसी कारणवश, संतान की शरीर स्वस्थता और मानसिकता का, माता की योग्यता व साधन के अनुसार अथवा परिवार की दक्षता अनुसार पोषण सम्पन्न होता है, जो संस्कार कहलाता है। मां अपनी संतान की, स्वीकृत मानसिकता का स्रोत है। साथ ही भाषा, **संबोधन**, **सम्बंधों** की पहचान, संस्कार (स्वीकारने के लिए निर्देशन) का स्रोत भी है। **सम्बंधों** के आधार पर, **संबोधनों** का होना सहज है।

उल्लेखनीय (ध्यान देने योग्य) मुद्दा यह है कि मां ही प्रथम प्रधान कारण है कि वह बोली, भाषा, खान–पान में, संबोधन में विश्वास को स्थापित करती है। संबोधन से सम्बंधों में विश्वास स्थापित करना सहज है। इसी क्रम में जाति, धर्म, कर्म का मूल संस्कार भी, अधिकांश रूप में मां से संतानों को अंतरित–निक्षेपित होता है। शैशव बाल्य अवस्था में बालक विश्वास को आधार मानता है। मां पर संतानों का विश्वास होना एवं पोषण संरक्षण होना सहज रूप में देखा जाता है।

इस धरती पर जितनी भी समुदाय परंपराएं हैं, वे सब किसी न किसी नस्ल, रंग, रहस्यात्मक धर्म, संप्रदाय, पंथ, मत, भाषा, देशत्व वाली मानसिकता एवं संस्कारों को प्रदान करती हैं।

अधिकार, पद, शोषण मूलक धन और समर शक्ति के आधार पर ग्रसित समुदाय, जाति और भाषा पर आधारित समुदाय के रूप में स्पष्ट है। जबकि इस धरती पर अनेक समुदाय के लोग रहते हैं। प्रत्येक समुदाय में विभिन्न भाषावादी लोगों के होते हुए, **सम्बंधों** में, **संबोधन** का अर्थ अधिकांश समान है। यह मानव सहज अभिव्यक्ति है। प्रत्येक देश, भाषा, काल में, मनुष्य की परस्परता में, संबोधन सहज रहा है। इसका अर्थ भी सहज रहा है। ये दोनों स्थितियां अपने आप में प्रमाणित करती हैं कि **सम्बन्ध** अस्तित्व–सहज रूप में रहता ही है। फलतः **सम्बोधन** व अर्थ प्रकाशित होता है।

मानव, अस्तित्व सहज प्रकाशन है, साथ ही जागृति क्रम में प्रकाशन है। यह प्रत्येक मनुष्य में प्रमाणित होता है। प्रत्येक मनुष्य सुख धर्मी है। सुख की अपेक्षा में ही मानव समस्त सम्बन्धों को पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में है। यह मनुष्य में दृष्टव्य है। मनुष्य का संबोधन के साथ सम्बन्धों का अर्थ एवं आचरण समेत सहज होना पाया जाता है।

माता ही शरीर का पोषण, भाषा का पोषण, नाम का पोषण, परिचयों का पोषण, संस्कृति का पोषण करने के क्रम में संस्कारों का निक्षेपण सहज रूप में करती है। प्रत्येक मां अपनी संतान को सम्बंधों का सम्बोधन, प्रारंभिक अवस्था में सिखाती है और जैसे ही उम्र बढ़ती है, वैसे ही **सम्बोधन** के साथ गौरव, विश्वास, सेवात्मक आचरणों को सिखाती है। यहां पर मानव को, मानवीयता के नाते सम्बोधनों एवं आचरणों को सिखाना आवश्यक है। जिससे सभी समुदाय चेतना, मानव संचेतना में विलय हो सके। मानव में मानवीयता पूर्ण संस्कार पोषण, बुनियादी कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति में यह महत्वपूर्ण कार्य मां से आरंभ होता है, यही मानव संस्कृति की अंकुरण क्रिया है। मानव जाति और धर्म, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूपी सत्य को, स्थापित करना, मानव संस्कार है। **सम्बन्धों** की पहचान, शिष्टता का अभ्यास, मानव संस्कार है। मानव जाति, मानव में मानवीय सम्बन्ध, मानव समाज, मानवीय व्यवस्था (संविधान मानवीयता पूर्ण मानव का आचरण) के प्रति अवधारणाओं को स्थापित करना शिक्षा संस्कार है।

आरंभिक अथवा बुनियादी कार्य माता–पिता अथवा अभिभावकों और बंधुओं से सम्पन्न होता है। दूसरा, शिक्षा संस्थानों में दृढ़ होता है। राज्य व्यवस्था, संविधान पूर्वक पूर्ण एवं मूल्यांकित व प्रमाणित हो पाता है। इस प्रकार मां का पोषण कार्य शरीर, संस्कार, शिक्षा, व्यवहार, आचरण की बुनियाद है। **(अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 103–105)**

- 43. पिता – 44. संरक्षण

परिभाषा : संरक्षण :– जीवन जागृति के क्रम में निर्बाधता। सुगमता के अर्थ में है। संतान को, संतान के रूप में स्वीकार किये हो, ऐसी स्थिति में वे अभिभावक (अभ्युदय भावना सम्पन्न) अपने बच्चों का संरक्षण करते हैं यह एक सर्वसाधारण क्रिया है।

प्रधानत: पिता संरक्षण में, माता पोषण में सर्वाधिक रूप में प्रमाणित होते हैं या होना चाहते हैं। संरक्षण का प्रधान कार्य स्वास्थ्य, शिक्षा– संस्कार, संस्कृति–सभ्यता, आचरण और मूल्यों का आस्वादन, ये प्रधान मुद्दे हैं।

स्वास्थ्य संरक्षण :– सन्तान का संरक्षण शरीर और मानसिकता के अर्थ में स्पष्ट है। शरीर संरक्षण अभ्यास से, संतुलित आहार योजना से रोग निवारण उपायों से संभव हो पाता है। मानवीय संस्कारों से, मानवीय शिक्षा से, मानवीयता पूर्ण आचरण से, मानसिक संरक्षण सहज ही हो पाता है। जहां तक शरीर संरक्षण के क्रिया कलाप है, वह सर्वाधिक लोगोंः को विदित हैं। यह यथा स्थिति होते हुए, इसका सामान्य विचार करना भी, आवश्यक है।

सन्तान के प्रति पिता का विश्वास सहज व सत्य वर्तमान होना पाया जाता है। अभिभावक, संतान सम्बन्ध को पहचानने मात्र से सम्बन्ध में विश्वास, निश्चित सम्बन्ध के अनुरूप, जीवन सहज है। यह वैभव, ममता, वात्सल्यादि रूप में प्रमाणित होता है। यही मूल्यों के नाम से जाना जाता है। जीवन का अक्षय बल व शक्ति सम्पन्न रहना ही जीवन सहज रूप में मूल्यों को प्रकाशित करता है। ऐसे प्रकाशन क्रम में सम्बन्धों को पहचानना अनिवार्य स्थिति है।

सम्बन्धों को मनुष्य सर्वाधिक पहचानता है अथवा पहचान के क्रम में है। सम्बन्धों को पहचानना जीवन का सर्वाधिक प्रयुक्ति है, जबकि निर्वाह करते समय शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में प्रयुक्त होना प्रमाणित है। जीवन विहीन शरीर से, पहचान निर्वाह नहीं होता है। देखने, समझने व पहचानने वाला जीवन है।

स्व–शरीर सहित सम्पूर्ण वस्तुएं जीवन के लिए दृश्य हैं। इस कारण कल्पना के सहारे किसी सम्बन्ध की पहचान भले ही करें, निर्वाह के लिए शरीर का भी होना आवश्यक है। इसी क्रम में प्रत्येक अभिभावक का, अपने संतान सहज सम्बन्ध को संप्रेषित करने के लिए, मनुष्य की प्रयुक्ति है। जीवन महिमा ही शरीर को जीवन्त बनाए रखती है। जीवंतता सहित ही सम्बन्धों को पहचानने का प्रमाण, निर्वाह करने के रूप में होता है।

अभिभावक जितना जागृत रहते हैं, उसी के अनुरूप संतानों की सर्वतोमुखी सम्पदा का संरक्षण होना सहज है। शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ अभिभावक ही स्वस्थ संतानों को प्रस्तुत कर पाते हैं। स्वस्थ वे हैं, जिनमें मानवीय संचेतना विकसित हो चुकी हो। समुदाय चेतना संपन्न व्यक्ति का, मानसिक रूप से स्वस्थ होना संभव नहीं है। मानवतावादी विचार संपन्न, मानवीयता पूर्ण आचरणरत, मनुष्य ही, स्वस्थ मानस संपन्न होता है। अस्तु प्रत्येक

मानव को, मानवीयता के प्रति जागृत रहना अनिवार्य है। यही स्वस्थ संतान को प्रस्तुत करने का सूत्र है। शरीर संरक्षण सामान्य रूप में निर्वाह होता है।

संस्कार, नाम–जाति, धर्म, दीक्षा, शिक्षा सहज रूप में आवश्यक है। नाम संस्कार संबोधन के अर्थ में, जाति संस्कार – मानव जाति के अर्थ में, धर्म संस्कार मानव–धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) के अर्थ में, दीक्षा–संस्कार जीवन जागृति, स्वानुशासन के अर्थ में सार्थक है। शिक्षा संस्कार पहले कहे चारों संस्कारों को सार्थकता प्रदान करते हुए –

1. अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित
2. स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान
3. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन का उदय।
4. व्यवहार में सामाजिक (धार्मिक) तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी प्रमाणित होने के रूप में, मानवीय संस्कार सार्थक होता है।

फलस्वरूप सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहजता से संपन्न होता है। साथ ही मानवीय संस्कृति और सभ्यता स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है। इसका आधार है अखंड समाज में भागीदारी, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी। इस प्रकार मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक, पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित होना, सहज है। (**अध्याय: 5.1, पृष्ठ नंबर: 105–107**)

- **सम्बन्धों** को पहचानने व मूल्यों का निर्वाह करने के क्रम में, समाज न्याय का उभय तृप्ति के रूप में लोकव्यापीकरण होता है। तभी मानव, परिवार व्यवस्था के रूप में, जीने की कला को, अभिव्यक्त कर पाता है। ऐसी स्थिति में सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है। सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र, परिवार–मूलक विधि से सूत्रित होकर, ग्राम–स्वराज्य में सार्वभौम स्वराज्य व्यवस्था का छोटा रूप प्रमाणित होता है। यही "परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था" होने का सूत्र और संभावना है। (**अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 120**)
- निश्चय व धैर्य, सह–अस्तित्व, समाधान, अभय, समृद्धि, व्यवस्था में भागीदारी, मानव मूल्य, समाज मूल्यों के निर्वाह, यह सब मानव में सहजता वश सुलभ होता है। परस्पर **सम्बन्धों** को पहचानने के रूप में, सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है। सह–अस्तित्व के आधार पर विश्वास होना, जागृत जीवन सहज अभिव्यक्ति है। स्वयं एक समग्र व्यवस्था में भागीदारी, समाधान के रूप में होना, सह–अस्तित्व व विश्वास के योगफल में सम्पन्न होता है। (**अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 121**)

- व्यवस्था का प्रमाण प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान में विश्वास है। उसकी अभिव्यक्ति समाज है। समाज गति, **सम्बन्धों** व मूल्यों को निर्वाह करने के मूल में देखने को मिलती है। यह प्रत्येक मनुष्य की सहज अभीप्सा है क्योंकि यह जीवन जागृति गत क्रिया है। जीवन में ही आशा, आकांक्षा और इच्छाएं प्रसवित व व्यवहार में फलित होना पाई जाती है। परिवार की निश्चयता **सम्बन्धों** में निहित है और उसके निर्वाह में धैर्य प्रमाणित होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वागतीय है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 122)**
- सम्पूर्ण **सम्बन्धों** में दया का प्रवाह होता है। मनुष्य, मनुष्य के साथ, **सम्बन्धों** को जब पहचानता है तब सेवा, अर्पण–समर्पण करने की उमंग अपने आप उमड़ती है। शांतिपूर्ण मानसिकता के धरातल पर ही ऐसा उद्गम होना पाया जाता है। यह केवल व्यक्ति में ही नहीं, परिवार समुदाय तक भी ऐसे कार्य–कलापों को देखा गया है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य शान्ति कामी और गामी है। गामी होने के लिए किसी परिवार, शिक्षा, राज्य व धर्म संस्थाओं में अपने को अर्पित करता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 123)**
- मनुष्य में जागृति जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में स्पष्ट है। जानने, मानने के लिए मूलत: अस्तित्व ही है। अस्तित्व ही अपने आयामवत् सह–अस्तित्व, विकास क्रम, विकास, जीवन, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन–जागृति, और रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना के रूप में समीचीन है। प्रत्येक मनुष्य जीवन व शरीर का संयुक्त रूप है। पहचानने व निर्वाह करने के लिए मानव तथा नैसर्गिक **सम्बन्ध** व मूल्य हैं।

  नैसर्गिक **सम्बन्ध** जलवायु, धरती, हरियाली, अनंत ग्रह, गोल, नक्षत्र हैं। ग्रह, गोल, नक्षत्रों एवं सूर्य की किरणों से उपकृत यह धरती अपनी समृद्धि के साथ प्रमाणित है। इस धरती पर मनुष्य का अवतरण जीव–वनस्पतियों से समृद्ध होने के उपरान्त ही सहज हुआ है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 124)**

- मनुष्य एवं अन्य प्रकृति में मौलिक विशेषता यह है।

  (१)मानवीय परम्परा में जीवन अपनी जागृति को, शरीर द्वारा व्यक्त कर सकता है, करना चाहता है।

  (२)मनुष्य ही कर्म स्वतंत्र – कल्पनाशील है।

  (३)भ्रमित रहते तक मनुष्य ही कर्म करने में स्वतंत्र, फल भोगते समय परतंत्र है।

  (४)मनुष्य ही मनाकार को साकार करने वाला, मन: स्वस्थता का आशावादी है।

  (५)मनुष्य ही जागृति पूर्वक अपने स्वत्व स्वतंत्रता, अधिकारों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और अखंड समान रूपी सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित करता है।

इन पांचों प्रकार से मौलिकताओं की सहजतावश, जागृति पूर्वक ही मानव का संतुलित, नियंत्रित, नियमित होना, स्वानुशासन, स्वयं व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी, **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहज उत्साह, स्वयं स्फूर्त उत्सव के रूप में आचरित होगा। ऐसा हर मनुष्य होना चाहता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 125)**

- "व्यवहारवादी जन चेतना"

यह मूलत: मानव कुल की शुभाकांक्षा के अनुरूप, मानव **सम्बन्धों**, नैसर्गिक **सम्बन्धों** को पहचानने और मूल्यों के निर्वाह करने के ध्रुव पर आधारित है। इसमें जिन जिन **सम्बन्धों** को, जैसा जैसा पहचानना है, वह भी जाने अनजाने, मानव–कुल में प्रचलित है, वह निश्चय का आधार है। साथ ही स्वयं कितने **सम्बन्धों** में, सूचित हो सकता है। उसको आकलित करने पर, उतने ही **सम्बन्ध** निकल आते हैं, जितना प्रचलित है। इन तथ्यों पर आधारित क्रम से जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का अध्ययन सहज हुआ। जीवन तृप्ति के लिए, शरीर यात्रा के लिए, **सम्बन्ध** प्रचलित होना पाया गया। (अथवा आवश्यकता होना पाया गया)। इसलिए व्यवहारवादी जनचेतना को पहचानना अनिवार्य हुआ। पता चला कि जीवन–ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ही, जन चेतना है। जीवन ज्ञान के अनुसार जीवन–तृप्ति मूल्यों का परावर्तन व प्रत्यावर्तन ही है। यह समाधान को प्रमाणित करता है। यही समाधान का स्रोत है। इसका लोक–व्यापीकरण करने के लिए, शिक्षा में इसे सुलभ करने की संभावना है।

यह स्पष्ट हुआ कि, जन–चेतना का मूल तत्व, जीवन ज्ञान है। जीवन–विद्या के आधार पर ही, मानवीयता को जीवन–प्रकाश में पहचानना सहज होता है, फलस्वरूप सभी **सम्बन्धों** में निहित मूल्यों को, यथावत निर्वाह करने की स्वाभाविक क्रिया कलाप सम्पन्न होती है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट होता है कि शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के लिए आवश्यकीय वस्तुओं व उपकरणों को प्राप्त करने व सदुपयोग करने और प्रयोजनशील बनाने की विधियां, अध्ययन गम्य हुई हैं।

ऐसी वस्तुओं का उत्पादन, जीवन शक्तियों के संयोग से, शरीर के अवयवों द्वारा, श्रम नियोजन पूर्वक संपादित होती है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए, जन–मानस को यह भी विश्वास दिलाया है कि भौतिक वस्तु की आवश्यकता शरीर तक ही है। जीवन–तृप्ति के अर्थ में, उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनशीलता को स्पष्ट किया है। जीवन, शरीर के द्वारा, मानव परम्परा में अपनी जागृति को प्रमाणित करना ही परम उद्देश्य है। यही प्रयोजन है। इसे सार्थक बनाने के क्रम में, शरीर– यात्रा जीवन के लिए एक साधन है, न कि साध्य।

इस चेतना के आधार पर अथवा जीवन–ज्ञान के आधार पर मानव, मानवत्व को पहचानने के उपरान्त, अखंड समाज में भागीदार और सार्वभौम व्यवस्था में भागादीर होने का सत्य, समझ में आता है। फलस्वरूप **सम्बन्धों** व मूल्यों की पहचान व निर्वाह सहज होता है।

मानवता पूर्ण मानव परम्परा में, से, के लिए, सार्थक रूप देने के क्रम में, जो कुछ सहायता मिली उसका स्वीकार होना सहज है। फलस्वरूप सौम्यता, परम्परा में सार्थक परिभाषा के अनुसार वर्तमान होती है। इस प्रकार मनुष्य को कृतज्ञ होने के लिए आजीविका, स्वास्थ्य, विद्या, समाधान, प्रामाणिकता, प्रमाण (जिनमें से समाधान, प्रामाणिकता, इनका स्रोत रूपी विद्या) सुलभता में से, के लिए, जो सहायता मिली उसके प्रति कृतज्ञ होना भी है। संघर्ष में कृतज्ञता का स्थान नहीं है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 132–133)**

- अस्तित्व, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सह–अस्तित्व वर्तमान है। सह–अस्तित्व में ही पूरकता, उदात्तीकरण, विकास, संक्रमण और जागृति व्याख्यायित है। सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी है, इसका प्रमाण सत्ता में प्रकृति की अविभाज्यता है। इसी आधार पर अस्तित्व में परस्पर व्यवस्था है। इसका प्रमाण है – वर्तमान में विकास, जागृति, पूरकता और उदात्तीकरण। मनुष्य, अस्तित्व में दृष्टा होने के कारण प्रत्येक मनुष्य का जागृति पूर्ण परम्परा में होना, वर्तमान है। मनुष्य ही श्रेष्ठता का मूल्यांकन करता है। उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजनीयता के आधार पर मूल्यांकन होना सहज है। उपयोगिता का ध्रुव बिंदु जागृति है। मनुष्य की उपयोगिता, स्थिरता व निरंतरता जागृति सहज विधि से, आवश्यकता से अधिक उत्पादन तन, मन व धन रूपी अर्थ का **सम्बन्ध** व मूल्यों में अर्पण–समर्पण करते हुए, उत्सवित होना पाया जाता है। इसी से मनुष्य सर्वाधिक खुशी का अनुभव करता है और सुख का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

  यही उपयोगिता–सदुपयोगिता का मापदण्ड है। **सम्बन्ध** व मूल्यों में, जीवन जागृति का लक्ष्य समाया रहता है। सदुपयोगिता का आधार मापदण्ड यही है कि परिवार मानव (अथवा मानव परिवार) तन, मन, धन रूपी अर्थ को **सम्बंधों** में अर्पित–समर्पित कर, प्रसन्नता और समाधान का अनुभव करता है। प्रसन्नता और समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करता है। प्रयोजनीयता का प्रमाण, जीवन जागृति सहज, स्वानुशासन है। समझदारी का प्रमाण, मानवीय कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करना ही है। यही उपयोगिता एवं सदुपयोगिता का प्रमाण है। मानवीयता का मार्गदर्शक, अतिमानव रूपी देव मानव व दिव्य मानव ही है। यही प्रयोजन है।... **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 134–135)**

- व्यवस्था में न्याय सुरक्षा सुलभता, विनिमय कोष सुलभता, उत्पादन कार्य सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता और मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता का संयुक्त रूप है। इसी व्यवस्था में जीने की कला, **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, व्यवस्था में भागीदारी का, संयुक्त रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है। यह मानव संस्कृति का मध्य बिंदु है। मानव अपनी संस्कृति को व्यक्त करता है। उस समय आवास, अलंकार, उत्सव, सम्मिलित उत्सव, मानवीयता का प्रकाशन, प्रदर्शन और प्रचार, ये सब प्रधान रूप में रहना स्वाभाविक है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 140)**

- ...धर्म अपने स्वरूप में "त्व" सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में हरेक एक में देखा जाता है। ऐसा धर्म, पदार्थावस्था में अस्तित्व, प्राणावस्था में अस्तित्व सहित पुष्टि, जीवावस्था में अस्तित्व, पुष्टि सहित आशा एवं मानव में अस्तित्व, पुष्टि व आशा सहित सुख जागृति पूर्वक प्रमाणित होना पाया जाता है। भ्रमित अवस्था में भी सुख सहज आशा बनी रहता है। समाधान = सुख। समस्या= दुख। अस्तित्व में किसी समस्या का स्रोत न रहते हुए भी, मनुष्य जब तक जीवों के सदृश्य जीने के लिए अपनी कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलतावश प्रयास करता है, तब तक उसका समस्या से पीड़ित होना पाया जाता है। मनुष्य सहज व्यवस्था, मानवत्व सहित ही सम्पन्न हो पाती है। यही अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है। मानवत्व की व्याख्या, मानव में अखंड समाज व सार्वभौम व्यवस्था ही है। अखंड समाज का आधार, "मानव जाति एक" के आधार पर **सम्बन्धों** की पहचान एवं मूल्यों के निर्वाह क्रम में सम्पन्न होता है और प्रमाणित होता है। यह जीवन जागृति पूर्वक, वर्तमान सहज है। यही विश्व परिवार का सहज रूप और अखंड समाज का सहज रूप है। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था मानव धर्म का प्रमाण है। मानव धर्म सहज अभिव्यक्ति ही, समाज न्याय का स्रोत है। विश्व परिवार ही अखंड समाज है।

फलस्वरूप परिवार का पहचानना परिभाषित है। परिवार में समाहित व्यक्ति में, परस्पर **सम्बन्धों** को पहचानना और मूल्यों को निर्वाह करना, एक अनवरत उत्सव सहज क्रिया है। मानवीयता पूर्ण आचरण सहज व्यक्ति, समाज–न्याय अथवा लोक–न्याय के रूप में सार्थक है। अस्तु, व्यवस्था ही सर्वतोमुखी समाधान (अभ्युदय) है। इससे समाज में लोक न्याय और सुख है। इस प्रकार अभ्युदय, व्यवस्था क्रम में, सर्वतोमुखी समाधान होना समाधान ही व्यवहार में न्याय सहज और सुख, शांति, संतोष का अनुभव होना, उसकी निरंतरता परम्परा रहना ही, मानव परम्परा की मौलिकता है। अस्तु, मानव धर्म पूर्ण (सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न) परम्परा ही, मानव परम्परा है।

अस्तित्व में मानव परम्परा की एक सहज गति है। यह मानवीय शिक्षा सह–अस्तित्व सहज जीवन विद्या व वस्तु विद्या (वस्तु विद्या रासायनिक भौतिक क्रिया कलापों के रूप में प्रमाणित है) से परिपूर्ण, मानवीय संस्कार (**सम्बन्धों** व मूल्यों की पहचान व निर्वाह) परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, और मानवीयता पूर्ण आचार संहिता रूपी, समाधान है। ऐसी मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य, परिवार में और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में, भागीदारी सम्पन्न होता है। यही मानव परम्परा, अस्तित्व में सहज वर्तमान, प्रभावी होता है। अस्तित्व में जीवावस्था, प्राणावस्था व पदार्थावस्था में भी सहज परम्परा है। सहज परम्परा का तात्पर्य नियमित, नियंत्रित, सन्तुलित रूप में होने से है, जिसका प्रमाण, प्रत्येक एक अपने "त्व" सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है। यह ही सह–अस्तित्व में होने का प्रमाण है। इस प्रकार सत्य, नित्य वर्तमान रूपी सह–अस्तित्व है। यही शाश्वत धर्म है। ज्ञानावस्था में होने के कारण अस्तित्व सहज विधि से जागृति पूर्वक मानव, द्रष्टा पद प्रतिष्ठा में है। द्रष्टा पद, सहज रूप में, अस्तित्व को जानना–मानना समीचीन है। इससे मनुष्य का प्रमाणित होना ही सत्य

द्रष्टा कर्ता, भोक्ता होने का प्रमाण है। साथ ही, मनुष्य द्वारा ही, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना, निर्वाह करना, जागृति सहज अभिव्यक्ति है। यही मानव धर्म परायण होने का प्रमाण है। मानवता ही, मानव धर्म है। मानवत्व सर्व मानव में, से, के लिए समान वस्तु है, व्यवहार है और महिमा प्रयोजन है। मानव धर्म जागृति परम्परा के रूप में है। मानव धर्म और राज्य, अविभाज्य है। मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में, सामरस्यता की निरंतर गति है।

अखंड समाज का कार्य रूप, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, "मानव जाति एक, मानव धर्म एक" के आधार पर परस्पर सभी मनुष्यों की परस्परता में, सम्बन्ध पहचानने में आता है। अस्तित्व में जड़–चैतन्य प्रकृति, परस्पर सम्बन्धित है। क्योंकि सह–अस्तित्व, नित्य प्रभावी है। सह–अस्तित्व में अनुभव ही, मानव में परम जागृति है। सह–अस्तित्व ही परम सत्य है। परम जागृति के अनंतर उसकी निरंतरता वर्तमान होती है। अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही। सत्य में अनुभव का प्रमाण ही स्वानुशासन है। स्वानुशासित मनुष्य सहज ही, मानवीयता का प्रेरक, दिशा दर्शक होता है। इस प्रकार सत्य–धर्म, व्यवहार रूप में, चरितार्थ होने की व्यवस्था है। अस्तु मानव ही सत्य धर्म के प्रमाण के रूप में धारक वाहक है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 145–147)**

- 23. न्याय (सौजन्यता) – 24. संवेदना

परिभाषा : न्याय :– (१) मानवीयता के पोषण, संवर्धन एवं मूल्यांकन के लिए सम्पादित क्रिया–कलाप। (2) **सम्बन्धों** व मूल्यों की पहचान व निर्वाह तथा मूल्यांकन व उभय तृप्ति क्रिया।

संवेदना :– (१) पूर्णता के अर्थ में वेगित होना। (2) नियम–त्रय सहित किया गया कार्य, व्यवहार, विचार। (3) विकास व जागृति के प्रति वेदना = जिज्ञासा, अपेक्षा, आशा। (4) जाने हुए को मानने के लिए, पहचाने हुए का निर्वाह करने के लिए, स्वयं स्फूर्त जीवन सहज उद्देश्य और प्रक्रिया। (5) सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य संकेतों को, ग्रहण करने की क्रिया। (6) व्यवस्था के प्रति तत्परता। (7) जागृति सहज विधि से प्रमाणित होने के क्रम में ज्ञानेन्द्रियों को संवेगित (पूर्णता के अर्थ में गतित प्रदान क्रिया) करना, क्रिया के रूप में संप्रेषित होना (दूसरे मानव को समझाने योग्य, इंगित होने योग्य विधि से प्रस्तुत होना)। न्याय, कार्य रूप में सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, उपलब्धि के रूप में उभय तृप्ति है। न्याय मानव में जीवन सहज जागृति है। जो जानने, मानने, पहचानने–निर्वाह करने में समझदारी है। मनुष्य का समझदारी सहित सफल होना सहज है। समझदारी, जीवन जागृति का प्रमाण है।

न्याय, नियति–क्रम सहज अभिव्यक्ति है। नियति विकास, रचना व जागृति है। इसमें पूरकता का होना, देखा जाता है। परस्परता में पूरकता होती है।

(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 147–148)

- **परस्परता का नाम है, सम्बन्ध।**

ऐसी परस्पता को नियम, नियंत्रण, संतुलन और जागृत विधियों में, समझा जाता है। नियम नियंत्रण–विधि, जड़–प्रकृति में अध्ययनगम्य है। क्योंकि प्रत्येक एक अपने "त्व" सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है। जीवावस्था ने संतुलन और प्राणावस्था ने नियंत्रण को स्पष्ट किया है। ज्ञानावस्था का मानव, जागृति पूर्वक ही नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक जानने–मानने, पहचानने व निर्वाह करने की साक्षियों सहित, न्याय, धर्म, सत्य सहजता को प्रमाणित करता है। प्रत्येक मनुष्य का प्रत्येक प्रमाण, मानव परम्परा के लिए प्रेरक होता है। इस प्रकार जागृति पूर्वक मानव, प्रामाणिकता प्रेरकता को प्रमाणित कर पाता है।

मानव परम्परा में, प्रमाणों की अभिव्यक्ति ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित हो जाती है। अनुभव के आधार पर ही, प्रमाण व प्रामाणिकता, मानव परम्परा के लिए, सहज समीचीन है। अनुभव सत्य में, से, के लिए होता है। सह–अस्तित्व ही परम सत्य है और जीवन जागृति पूर्वक मानव में सत्य का अनुभव होना पाया जाता है। जागृति का साक्ष्य जानने–मानने, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में अभिव्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होता है। ऐसी प्रकाशमानता, सहज ही, **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, स्वयं में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में ही होती है। यही संवेदना (सौजन्यता) का अर्थ है। संवेदना (सौजन्यता) अपने में न्याय का प्रकाशन और संप्रेषणा है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 148–149)**

- जो जिस को समझ में आया रहता है उसे वह प्रमाणित करने के क्रम में ही होता है। समझ में आने का सारा स्रोत सह–अस्तित्व ही है। सह–अस्तित्व में ही जीवन भी अविभाज्य वर्तमान है। सह–अस्तित्व में नित्य समाधान, नित्य **सम्बंध**, निरंतर न्याय मानव कुल में, से, के लिए समीचीन रहता ही है। इसे सार्थक रूप देते ही रहना साहसिकता का तात्पर्य है। साहसिकता के साथ उत्साह बना रहता है जो दिशा सहित गति को प्रशस्त किया रहता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 154)**
- परस्परता में स्वीकृति, तृप्ति एवं मूल्यांकन की परिणामों में अपेक्षा है। ये अपेक्षाएं सार्थक होने के क्रम में परिवार **सम्बंध**, समाज **सम्बंध**, व्यवस्था **सम्बंध**, सार्थक रूप में गतिशील होना सहज है। कुंठा, परस्परता में मूल्यांकन सहित स्वीकृति, प्रसन्नता, तृप्ति की न्यूनता का द्योतक है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 154)**
- स्व–नारी या स्व–पुरुष विवाह पूर्वक प्राप्त, दाम्पत्य पति–पत्नी **सम्बंध** है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 157)**
- परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का स्वरूप एक समझदार परिवार से सम्पूर्ण परिवार मिलकर विश्व परिवार का रूप है। प्रत्येक मनुष्य, सम्पूर्ण मनुष्यों से सम्बन्धित है। प्रत्येक एक, अनंत के साथ सम्मिलित है। अस्तित्व में सब, सबसे सम्बन्धित है। इन्हीं **सम्बन्धों** को पहचानना और मूल्यों का निर्वाह करना ही सामाजिकता है। विश्व परिवार व्यवस्था ही, अखंड समाज है। विश्व परिवार व्यवस्था ही सार्वभौम व्यवस्था है। मानव सुखधर्मी है, परिवार की परिभाषा यह है कि परिवार के सभी सदस्य परस्पर परिवार गत उत्पादन कार्य में, परस्पर पूरक हैं। **सम्बन्धों**

को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना, यही विश्व परिवार की भी परिभाषा है। परिवार में व्यवस्था का प्रमाण, वर्तमान होता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 158)**

- "वीरता" अपने में न्यायपूर्ण आचरण, व्यवहार व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी उसकी निरंतरता है, साथ ही न्याय के, लोकव्यापीकरण करने में सक्रियता है। लोक न्याय का आधार मानवीयता है। मानव अपने जन्म सहज रूप में ही न्याय का याचक है। न्याय का याचक होने का तात्पर्य, दूसरों से सतत ही न्याय की अपेक्षा है। स्वयं को सुरक्षित रखने के रूप में और पोषण सहज रूप में (अथवा पोषण सहज सुलभ होने की अपेक्षा के रूप में) प्रत्येक मनुष्य में अध्ययनगम्य है। विशेषकर परम्परा से, इसकी अपेक्षा, प्रत्येक मानव संतान में होना पाया जाता है। धीरता, वीरता अपनी परिभाषा के अनुसार महत्व और आवश्यकता स्पष्ट हो चुकी है। इसमें जीवन जागृति पूर्वक न्याय को **सम्बंधों** में पहचानने, निर्वाह करने, मूल्यांकन करने, और मानव अपनी परस्परता में उभय तृप्ति सहज अनुभव करने, नैसर्गिक **सम्बंधों** में मूल्यांकनपूर्वक नैसर्गिकता में नियम, नियंत्रण, संतुलन को अनुभव करने और स्वयं में तृप्ति पाने का कार्यक्रम है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 159)**
- जीवन और शरीर में से मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान जीवन और जीवन कार्य; जीवन प्रवृति; जीवन विचार, जीवन सहज विधि से होने वाले विश्लेषण, उसमे संज्ञानशीलता विधि उसका मानव प्रयोजन; जीवन प्रयोजन को स्पष्ट करना प्रधान लक्ष्य है। मानव प्रयोजन के रूप में यह पहचाना गया है कि मानव अपने मौलिक रूप में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय धर्म, सत्य सहज संप्रेषणा, अभिव्यक्ति, प्रकाशन है। यह मानव शरीर संयोगपूर्वक मानव परम्परा में ही मूल्यांकित है। इसकी आवश्यकता उपयोग सदुपयोग को सम्बंधोंं में पहचाना गया है। **सम्बंधों** को मानव **सम्बंध**, प्राकृतिक (नैसर्गिक) **सम्बंध** के रूप में पहचाना गया है। इनमें इन तथ्यों का उपयोग, सदुपयोग, खूबी पहचाना गया।

  फलस्वरूप नैसर्गिक **सम्बंधों** में संतुलन, असंतुलन बनाये रखने के सर्वाधिक कारक तत्व के रूप में पहचाना गया इसलिए नैसर्गिक संतुलनकारी समझ, शरीर और जीवन संतुलनकारी समझ, परिवार संतुलनकारी समझ, अखंड समाज संतुलनकारी समझ, सार्वभौम व्यवस्था संतुलनकारी समझ, धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा, सहज समझदारी पूर्वक निर्वाह होना पहचाना गया। इस सभी क्रिया–कलाप का मूल तत्व जागृति पूर्ण समझदारी होना अनुभव में आया। इन पांच संतुलन बिन्दुओं को बताया गया है इसमें से शरीर और जीवन संतुलन एक मानव के रूप में पहचानने की आवश्यकता है। 'मानव' शब्द में नर–नारी समाहित रहते ही हैं। इतना ही नहीं सभी आयु वर्ग में भी निर्देशित होते हैं। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर:160–161)**
- धीरता–वीरता पूर्वक ही परिवार संतुलन, परिवार संतुलन को ही परिवार में भागीदारी करने वाले सभी मानव सम्मिलित रहते है। ये सभी समझदार हैं अथवा होना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में परिवार संतुलन सहज रूप में प्रमाणित होता है। हर समझदार मानव सम्बंधों को पहचानता ही है जैसे माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नि। यह तीन सम्बंध स्पष्ट रहता ही है। माता–पिता का भी माता–पिता होना वांछित संभावित रहता ही है। उनका भी

भाई–बहन होना स्वाभाविक है इस प्रकार वंशानुक्रम में अर्थात संतान के अनन्तर पुनः संतान क्रम में ये सब सम्बंध स्पष्ट रहता ही है। इन्हीं को हम दादा–दादी चाचा–चाची आदि नामों से संबोधित किया करते है। इनमें प्रयोजनों को समझना ही समझदारी है, फलस्वरूप परिवार संतुलन होना सहज है। परिवार में ही न्याय का अपेक्षा बनी रहती है। यह अपेक्षाएं पूरा होने के मूल में सम्बंधों को प्रयोजन के मूल में पहचान लेना उन सम्बंधों में निहित मूल्यों को निर्वाह करना।

माता–पिता के साथ **सम्बंध** निर्वाह परिवार का उद्देश्य समाधान समृद्धि के रूप में पहचान लिए रहते है। परस्पर व्यवहार में हर पुत्र–पुत्री सम्मान कृतज्ञता पूर्वक विश्वास निर्वाह करना बन पाता है। जबकि परस्पर परिवार के उद्देश्य के लिए कार्यकलाप बना रहता है और व्यवहार बना रहता है। व्यवहार की अभिव्यक्ति हर जागृत मानव में तन–मन–धन का अर्पण–समपर्ण सहित उत्पादन के लिए नियोजन कार्य सहित निर्वाह होना पाया जाता है। फलस्वरूप परिवार सहज समाधान समृद्धि निरंतर प्रमाणित होना स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार भाई–बहन के परस्परता में भी परिवार सहज उद्देश्य ही प्रधान रहता है इसमें भागीदारी करना ही परिवार संतुलन का प्रमाण है। परिवार में भागीदारी करने वाले हर व्यक्ति में परस्पर और आगंतुक रूप में आये हुए लोगों के साथ जो समाधान समृद्धि का भरोसा सदा–सदा प्रमाणित होना ही परिवार संतुलन है।

ऐसे परिवार संतुलन के साथ ही नैसर्गिक संतुलन की योजना कार्य समाहित रहता है और समझदार सभी मानव परिवार के साथ **सम्बंध** निर्वाह लक्ष्य के संदर्भ में हो पाता है। इस धरती के सभी परिवार समझदार होने की स्थिति में विश्व मानव परिवार होने की संज्ञा पाते हैं। परस्पर हर परिवार एक दूसरे के पूरक होना सार्थकता के अर्थ में मूल्यांकित होता है। मानव सहज सार्थकता अथवा सार्वभौम लक्ष्य, समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व ही अतएव सम्पूर्ण कार्य योजना, विचार विधि, उसके मूल में समझदारी, ये सब एक दूसरे के पूरक और संतुलनकारी होना पाया जाता है। इस मनोविज्ञान शास्त्र का उद्देश्य भी यही है। हर मानव परिवार समझदार होना ही है, होंगे ही। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 163–164)**

- अखंड समाज में संतुलन का स्वरूप जागृति पूर्वक, जागृति विधि से समझ में आता है कि सम्पूर्ण परिवार में कार्यरत प्रत्येक मानव, मानवीयता पूर्वक मानव प्रतिष्ठा संपन्न है। मानव प्रतिष्ठा में परस्पर परिवार और परिवार में कार्यरत प्रत्येक इकाई का **सम्बंध** पहचानने में आता है। यही जागृति है। पुनः इस प्रत्येक मानव मानवीयता पूर्ण प्रतिष्ठा से सहज वैभव है इसे स्वीकारना, पहचानना तदनुसार **सम्बंधों** को निश्चय करना व्यवस्था और प्रयोजन सूत्र से सूत्रित रहना और इसे प्रयोग करना ही पूरकता विधि है हर जागृत मानव अपने को पूरकता विधि से ही प्रस्तुत करता है। अतएव अखंड समाज सूत्र मानवत्व के रूप में सार्थक होना हर भ्रमित व्यक्ति को कल्पना में आता है, जागृत व्यक्ति को समझ में आया रहता है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 164–165)**

- मानव जब मानवत्व को पहचानता है, स्वीकारता है, निश्चय करता है तभी जागृति के प्रमाण के रूप में स्वंय में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है। मानव का स्वत्व मानवत्व है ही, इसलिए मानवजाति का आधार मानवत्व है। स्वतंत्रता व स्वराज्य ही मानवत्व का लक्ष्य है। प्रत्येक मनुष्य मानवीयता पूर्ण आचरण में सहज विधि से मानव है। इसे हर देश काल परिस्थिति में परखा गया है। यह जागृति का वैभव है। इस प्रकार हर एक जागृत मानव का भी "त्व" सहित व्यवस्था के रूप में जागृत मानव परम्परा सहज होना स्पष्ट है। अस्तु, मानवत्व सहज समानता के आधार पर मानव का भी परम्परा के रूप में स्पष्ट होना ही, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने का तात्पर्य है। मानवीयतापूर्ण मानव परम्परा में ही, मानव जाति की अखंडता वर्तमानित होती है। यही अखंड समाज का सूत्र है। जागृत मनुष्य की मौलिकता यही है। यह **सम्बंधों** को पहचानने व मूल्यों को निर्वाह करने के क्रम में, से, के लिए स्पष्ट है। **सम्बंधों** को पहचानना, निर्वाह करना तभी संभव हो पाता है जब जीवन ज्ञान अस्तित्वदर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत हो जाये इसी के लिए मानव परम्परा में बहुआयामी प्रयास की आवश्यकता है। अतएव जागृत विधि से व्यवस्था सूत्र अपने–आप निष्पन्न और प्रमाणित होता है। जागृत परिवार मानव ही अखंड समाज में भागीदारी करने में तत्पर होते है। मनुष्य मूलत: परिवार मानव है, क्योंकि परिवार में ही आरंभिक व्यक्तित्व और प्रतिभा के संतुलन की अपेक्षा एवं प्रमाण सहज होना पाया जाता है। परिवार में **सम्बन्ध** और मूल्यों की पहचान और निर्वाह होने के क्रम में, व्यवस्था सूत्र स्पष्ट होना पाया जाता है। ऐसे परिवार में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय सहज ही प्रमाणित होता है। न्याय का प्रामाणिक होना ही प्रधान रूप है। फलस्वरूप परिवारगत व्यवसाय भागीदारी सहज हो जाता है। व्यवसाय के साथ विनिमय की अनिवार्य स्थिति बनती है। विनियम सहजता के लिए विभिन्न वस्तुओं को श्रम मूल्य के आधार पर विनियम कार्य को स्थापति कर लेना मानव सहज कार्य है। इस क्रम में श्रम मूल्य और श्रम को पहचानना, एक अनिवार्यता बन पाती है। श्रम मूल्य का स्रोत, प्रत्येक मनुष्य में स्वस्थ शरीर के द्वारा, स्वस्थ मानस ही है। स्वस्थ मानस का स्वरूप, प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य स्थापित करने, **सम्बंधों** व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने, व मूल्यांकन करने के रूप में प्रमाणित होता है। इसी के साथ अस्तित्व, अस्तित्व में सह–अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन–जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचनाओं के प्रति समझदारी, जो जानने–मानने के रूप में प्रमाणित होती है, यही स्वस्थ मानस का स्वरूप है। इसे निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य के नाम से इंगित कराया जाता है। निपुणता = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता व कला मूल्य को स्थापित कर प्रमाणित करना। कुशलता = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य स्थापित करना। पांडित्य = ज्ञान विज्ञान विवेक सम्मत सूझ–बूझ तैयार करने तद्रुसार प्रमाणित होने से है। यह प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए संभव है। ऐसी संभावना को सर्वसुलभ बनाए रखना मानव परम्परा है। ऐसी मानव परम्परा के आधार पर ही मानव जाति की एकता, अखंडता व अक्षुण्णता सहज ही होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव जाति एक ही है। यह अपने आप स्पष्ट है। परम्परा का वैभव अथवा मानव परम्परा का वैभव, ज्ञानावस्था का मानव, संस्कारानुषंगी अभिव्यक्ति होने के कारण मानवीय शिक्षा, संस्कार, मानवीय

संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था मानवीयतापूर्ण संस्कृति–सभ्यता परम्परा का प्रधान आयाम है। जागृत मानव संस्कृति सभ्यता सहित सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में भागीदारी का प्रमाण है। उसकी सार्वभौमता सहज है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 171–173)**

- मानव, शरीर और जीवन का संयुक्त रूप है यह विदित है। यह स्वयं जड़ चैतन्य प्रकृति की सह–अस्तित्व सहज साक्षी है। एक एक शरीर में अनेकानेक प्राणकोशाएं रचनाकार्य में भागीदारी करते रहते है यह सभी कोशाएं विधिवत करते ही रहते है। इसका साक्ष्य हर शरीर और वनस्पतियों की रचना अपने में एक व्यवस्था के रूप में होना पाया जाता है। जैसे मनुष्य शरीर में मेधस तंत्र, हृदय तंत्र, रक्त तंत्र, वसा तंत्र, फेफड़ा तंत्र, यकृत तंत्र, मूत्र तंत्र, वृक्क तंत्र, गर्भाशय तंत्र, रस तंत्र, मांस तंत्र ये सब एक साथ गर्भाशय में रचित संयोजित होते हैं। परिणाम स्वरूप रक्त संचार, श्वास संचार बिना जीवन के ही सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है। तंत्र का तात्पर्य उर्मि और स्पंदन से है हर प्राणकोशाएं स्पंदनशील है। इसकी साक्षी हर कोशाओं में होने वाली श्वसन क्रिया है। रासायनिक द्रव्य में परस्पर योग–संयोग पूर्वक उत्सवित होना, तरंगति होना, ठोस, तरल, विरल के रूप में पाया जाता है इसी का नाम उर्मि है। अर्थात् रसायन तत्व में पाये जाने वाला उत्सव है। ऐसे उत्सव पूर्ण रसायन द्रव्य ही अनेक प्रजाति प्रयोजन सहज रचना के रूप में इसी धरती पर प्रमाणित है। इन्हीं के संयोग से अर्थात् रासायनिक उर्मि और प्राणकोशाओं का स्पंदन के संयुक्त रूप में पूरे शरीर में अंगाग और अवयव रूपी रचनाओं में तंत्रणा अपने अपने निश्चित कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। जैसे रक्त प्रणाली (हृदय धड़कना) श्वास लेना गर्भाशय में स्थित शिशुओं में भी होना पाया जाता है। यही तंत्र का तात्पर्य जीवन संयोग के उपरांत ज्ञानेंद्रियाँ कार्यरत होना पाया जाता है। इस कारण शरीर द्वारा ही मानव परम्परा में, जीवन जागृति का प्रमाण सहज है। जीवन संतुष्टि का प्रथम चरण, **सम्बंधों** की पहचान व मूल्यों के निर्वाह के रूप में देखने को मिलता है। दूसरी स्थिति में विश्वास की अभिव्यक्ति सहज है। यह अखंड समाज का सूत्र है। **सम्बन्धों** व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में, समाज सूत्र स्पष्ट हो पाते हैं। इस को दूसरी विधि से प्रक्रिया रूप में नाम भी मानव **सम्बन्ध** व नैसर्गिक सम्बन्ध के रूप में पहचाना जाता है।

मानव **सम्बन्धों** का **सम्बोधन** भले ही कितने ही प्रकार का हो, तरीके भिन्न भिन्न क्यों न हो, सभी **सम्बन्धों** को पहचानने के प्रमाण में, जीवन सहज रूप में मूल्य व्यक्त होता है। ऐसा मूल्य जागृत जीवन में नौ स्वरूप में उत्प्रेरित उत्सवित रहता ही है। **सम्बन्धों** को पहचानना ही मानव परम्परा का एक प्रधान कार्य है। यही निर्वाह के रूप में संस्कार है। **सम्बंधों** को पहचानने के क्रम में ही संस्कार सफल हो पाते हैं।

अस्तित्व में नैसर्गिकता के साथ मनुष्य का पूरक **सम्बन्ध** बना ही रहता है। मानव ही इस धरती पर सर्वाधिक विकसित इकाई है। सर्वाधिक का तात्पर्य प्राणावस्था, पदार्थावस्था व जीवावस्था से अधिक विकसित से है। शरीर के रूप में यह नियति क्रम में, मानव सहज घटना और मौलिकता है। नियति क्रम का तात्पर्य विकास व जागृति–

क्रम से है। विकास शरीर के अर्थ में, जागृति जीवन के अर्थ में प्रमाणित होता है। ऐसी मौलिकता प्रत्येक मनुष्य में कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलता के रूप में वर्तमान है। इनका प्रयोग प्रत्येक मनुष्य करता है। ये नियति सहज रूप में मानव में प्रकाशित होते है। हर भ्रमित मानव में यह प्रश्न सहज ही उभर आता है कि अंततोगत्वा इस कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलता का क्या प्रयोजन है ? क्यों यह सर्वसुलभ हुआ है ? ऐसा सोचने पर पता चलता है कि इनके तृप्ति बिंदु को पहचानना है। यही संतुष्टि का सूत्र और व्याख्या का सूत्र है। संतुष्टि मनुष्य की कर्म स्वतंत्रता और कल्पनाशीलता का ही होता है। अनुसंधान और शोध से पता चला कि कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है। इसका परम स्वरूप विश्व परिवार व्यवस्था ही है।

जब परिवार मूलक स्वराज्य होना ही निर्देशित हो गया तब परिवार को समझना अर्थात परिवार की परिभाषा व व्याख्या को समझना और उसके योग्य अहर्ता को प्रत्येक व्यक्ति जानना, मानना, पहचानना एक अनिवार्यता है। निश्चित संख्या में जागृत (नर–नारी) मनुष्य जो परस्पर **सम्बन्धों** को पहचानते व मूल्यों का निर्वाह करते हैं और परिवार गत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं। ऐसे कम से कम १० व्यक्तियों का समूह परिवार की संज्ञा है। ऐसी परिभाषानुरूप ग्राम परिवार, ग्राम समूह परिवार, क्षेत्र परिवार, मंडल परिवार, मंडल समूह परिवार, मुख्य राज्य परिवार, प्रधान राज्य परिवार, "विश्व– स्वराज्य परिवार" के रूप में सहज ही गण्य होता है। इस क्रम में **सम्बन्धों** व मूल्यों का निश्चयन होता है। फलस्वरूप प्रत्येक अवधिगत परिवार व्यवस्था अपने आप में सभी स्तरीय परिवारों में सूत्रित हो जाता है। यही परिवार– मूलक का तात्पर्य है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 177–179)**

- 'स्वराज्य" का तात्पर्य न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता व उत्पादन सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता, मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता से है। न्याय सुलभता का स्वरूप, **सम्बंधों** के अनुरूप अर्थात जिससे जिनका जो **सम्बन्ध** पहचाना गया है, उनसे उन उन **सम्बन्धों** के अनुरूप मूल्यों का निर्वाह होने से है। मूल्य जीवन सहज हैं। **सम्बन्धों** की पहचान परम्परा सहज है। भले ही मानव अभी तक अंतद्रवन्दों सहित समुदाय चेतना में ग्रसित है फिर भी **सम्बन्धों** को पहचानने का प्रयास नैसर्गिक रूप में उभरते आया है, इच्छुक है ही। अंतद्रवन्दों और समुदायों की परस्परता में, घृणा उपेक्षा की ध्वनि व मुद्राएं समावेशित होने के फलस्वरूप सम्बन्धों के प्रति निष्ठा स्थिर नहीं हो पाई। फलत: मूल्यों का आकाल नासमझी के रूप में त्रस्त करते ही आया। इस समीक्षा से यह पता चलता है कि मानव **सम्बन्धों** में निष्ठान्वित होने के लिए, समाज को ही पहचानना आवश्यक है। इसी विधि से विश्व परिवार **सम्बन्ध** भी है। एक परिवार को पाँचों आयाम सम्बंधी क्रिया–कलाप में भागीदारी करना अनिवार्य है पांचों आयाम को ऊपर वर्णित कर चुके है तालिका निम्न है। यह कहे गये सभी स्तरीय १० संख्यात्मक परिवार से, विश्व परिवार तक आवश्यकता है ही। यह तथ्य भली प्रकार से समझ में आता है।

इन **सम्बन्धों** के प्रति निर्भ्रम होने के उपरान्त सहज ही विश्वमानव व्यवस्था की आवश्यकता व स्वरूप समझ में आता है, फलत: कर्तव्य व दायित्व निश्चित होता है। इस प्रकार **सम्बन्धों** व मूल्यों को, पहचानने व निर्वाह करने के

क्रम में, मूल्यों की मूल्यांकन विधि अपने आप स्पष्ट होती है। किसी भी **संबध** को, चाहे माता–पिता, पुत्र–पुत्री, गुरू–शिष्य, पति–पत्नी, स्वामी–सेवक, मित्र–मित्र **सम्बन्ध** सभी हो अथवा एक से अधिक हो उनमें विश्वास साम्य मूल्य है। इसका निर्वाह होना ही विश्वास की गवाही है। यद्यपि **सम्बन्धों** के अनुरूप कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह ये जो स्थापित मूल्य सार्थक होता है। फलत: **सम्बंधों** का स्वरूप, कर्तव्य व दायित्व की महिमा व निर्वाह सहज वर्तमान होता है। इसके योगफल में न्याय अपने आप सूत्रित, व्याख्यायित व वैभवित होता है। यही न्याय सुलभता का तात्पर्य है। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 179–180)**

- प्रत्येक जागृत मनुष्य में, जीवन सहज रूप में, तुलन क्रियायें न्याय– अन्याय, धर्मा–धर्म, सत्या–सत्य क्रम से प्रिय, हित, लाभ न्याय संगत सम्मत सहज संपन्न होती है। न्याय **सम्बन्धों** रूपी सह–अस्तित्व पर आधारित है। धर्म (सर्वतोमुखी समाधान = मनुष्य स्वयं मानवत्व सहित व्यवस्था है, समग्र व्यवस्था में भागीदार है।) इस आधार पर "सत्य" अस्तित्व रूपी परम सत्य में, अनुभव अर्थात जानने–मानने के तृप्ति बिंदु, अभिव्यक्ति सहित रूप में प्रमाणित है। इस प्रकार जीवन जागृति का स्रोत, प्रक्रिया, प्रयोजन स्पष्ट है। सत्य, धर्म, न्याय सहज अभिव्यक्ति, मानव परम्परा में, से, के लिए परम आवश्यक है। इसी सत्यतावश अवसर समीचीन है।

  न्याय सम्मत चयन, आस्वादन, विश्लेषण, इंद्रिय कार्यकलाप नियम नियंत्रण के रूप में स्वास्थ्य, वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक उत्पादन, आवर्तनशील आर्थिक कार्य व्यवहार न्याय संगत होने के उपरान्त ही जागृति सहज विधि से समाधान समृद्धि सम्पन्न होता है। न्याय सम्मत आचरण (जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में है) तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा, सभी **सम्बन्धों** की पहचान एवं मूल्यों का निर्वाह ही मूल्य, चरित्र, नैतिकता रूपी आचरण वैभव है। यही सार्वभौम मानव है तथा स्वयं में व्यवस्था रूपी जागृत मनुष्य है। ऐसे जागृत मनुष्य ही समग्र व्यवस्था में भागीदार होते हैं। **(अध्याय: 5.21, पृष्ठ नंबर: 184–185)**

- व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। मूल्य और मूल्यांकन के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करने की जितनी भी भाषा है वह सब श्रुति है। तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। परिवारीय आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा लाभ हानि मुक्त विनिमय के लिए जो भी भाषा है वह सब श्रुति है। जीवन–जागृति, प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान और स्वानुशासन के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 197)**

- स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, जीवन–विद्या को विधिवत समझने से सार्थक हो जाता है। मानवीयता पूर्ण आचरण जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष तथा दया पूर्ण कार्य व्यवहार, तन–मन–धन रूपी अर्थ की सुरक्षा व सदुपयोग, **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, की संयुक्त अभिव्यक्ति ही है। जिसे प्रत्येक व्यक्ति आचरण करना चाहता है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 197)**
- मनुष्य का **सम्बंध** परस्परता में **सम्बंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति विधि से पहचान होता है। यह सार्थकता के अर्थ में स्वीकार होना पाया जाता है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 198)**
- परिवार में भागीदारी करता हुआ/समझदार मानव परस्परता के सम्बंध मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति, स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करते है। इसकी अपेक्षा बना ही रहता है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 199)**
- हर जागृत परिवार में नैसर्गिक **सम्बंधों** की पहचान बनी ही रहती है इसकी सार्थकता पूरकता ज्ञानावस्था के लिए और नैसर्गिकता के लिए सार्थक संतुलित नियंत्रित, समाधानित होने का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होता है। यह सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज सूत्र के लिए एक आवश्यकीय कार्य है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 200)**
- ...अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण संप्रेषण कार्य (जो शिक्षा, संस्कार, **सम्बन्ध** मूल्य– मूल्यांकन, व्यवस्था–व्यवस्था में भागीदारी) प्रधानत: स्मृति का वैभव है।... **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 203)**
- विविध सम्बन्धों के साथ मूल्यों को मूल्यांकित करना व निर्वाह करना, यह जीने की कला है। यह अनुभव मूलक स्मृति सहित श्रुति का वैभव है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 204)**
- परमाणु में विकास रूपी, गठन पूर्ण परमाणु को चैतन्य इकाई के रूप में जीवन पद में पहचानना, जानना, मानना, जीवन सहज कार्य को प्रमाणित करना श्रुति स्मृति है। उसे व्यवहार में **सम्बन्धों** को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना मूल्यांकन उभय तृप्ति अनुभव है। इसे संप्रेषित करना स्मृति श्रुति है। जीवन–जागृति पूर्वक ही, वर्तमान सहज सत्य को प्रमाणित करना, श्रुति स्मृति है। उसे व्यवहार में सार्थकता देना यह जीने की कला, श्रुति स्मृति है। जैसे पूरकता नियम सहज उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार, समाधान मूलक सम्पूर्ण व्यवस्था, यह जीने की कला, यही श्रुति व स्मृति है। सह–अस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण स्मृतियों का श्रुति–मूलक होना ही मानव परम्परा का नित्य शुभ है। **(अध्याय: 5.4, पृष्ठ नंबर: 204–205)**
- **सम्बंधों** का स्वीकार सहित जीने का क्रम मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक ही स्पष्ट और स्वीकार हो पाता है फलत: निष्ठा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। मानव परम्परा की जागृति का पहला स्वरूप शिक्षा संस्कार ही है। यह विज्ञान क्रम विधि उपक्रम पूर्वक, जड़ चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रधानत: चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना विज्ञान संसार में रिक्त रहा है। अभी इसको सुगम रूप में अपना लेना बनता है। परमाणु सहज ज्ञानार्जन अथवा भाषा विज्ञान संसार दावा के रूप में प्रस्तुत करता ही है। इसलिए विज्ञानियों को गठनपूर्ण परमाणु को स्वीकारने में कोई बाधा दिखाई नहीं पड़ती। बाधा न बाधा एक ही है कि दुष्ट सामरिकता के लिए तरफदारी जिसके आधार पर आजीविका बिताता हुआ अनेकानेक विज्ञानी कहलाने वाले मेघावियों को तकलीफ हो सकता है

क्योंकि गठनपूर्ण परमाणु के आधार पर जागृति तूल पकड़ना आता ही है और परमाणु सहज वैभव सम्पूर्ण जड़ चैतन्य प्रकृति सहज व्यवस्था का मूलरूप होना प्रतिपादित हो जाता है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 208)**

- व्यवस्था का आधार, मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक विधि है। यह सह–अस्तित्व सहज है। सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी है। अस्तित्व ही सह–अस्तित्व है, यही मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक, प्रवर्तन कार्य व्यवहार आचरण व्यवस्था का आधार है। मूल्य, **सम्बन्धों** के आधार पर हैं। **सम्बन्ध**, सह–अस्तित्व के आधार पर स्पष्ट हैं। सत्ता में प्रकृति का, संपृक्त, अविभाज्य सामरस्यरत होना, सार्वभौमता व अखंडता का आधार है। साथ ही विकास में निश्चयता है और अस्तित्व की नित्य वर्तमानवश स्थिरता वर्तमान है। इसलिए मानव का अपनी ही जागृति सहज परम्परा के रूप में अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को प्रमाणित करना नित्य समीचीन है। मानव सहज निरीक्षण यही है। अस्तु, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को, सर्वतोमुखी समाधान के रूप में अखंड समाज में भागीदारी को सह–अस्तित्व में मानवीयता पूर्ण आचरण को, वर्तमान में विश्वास को, परिवारगत उत्पादन को आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने से समृद्धि को मानव प्रमाणित करता है। यही जागृत मानव का प्रमाण और वैभव है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 219)**
- संतोष, मानव सहज नित्य भाव, नियम, नियंत्रण, न्याय, सम्बन्ध, समाधान की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन है। यह जीवन विद्या (ज्ञान) के आधार पर मनुष्य में स्पष्ट होता है। इसी क्रम में मानव सतत प्रयासशील रहा है। 'श्री' संपन्न होना, प्रत्येक मनुष्य में एक अपेक्षा है। 'श्री' संपन्न होने का तात्पर्य यशस्वी होने से है। यशस्वी होने का तात्पर्य – स्वतंत्रता और स्वराज्य में प्रमाणित होने से है। यश अक्षुणता के रूप में सार्थक होना पाया जाता है। अक्षुणता अपने में समझदारी, सह–अस्तित्व, समाधान, समृद्धि, वर्तमान में विश्वास ही है। इसी को एक वाक्य में कहना बनता है कि सह–अस्तित्व ही नित्य वर्तमान अक्षुण है, होने के लिए मनुष्य को, मानवीयता से जागृत होकर देव मानव पद में होना सहज है। मानवीयता पूर्ण मनुष्य में, यशस्वी होने का प्रवर्तन सहज है। ऐसे प्रवर्तन क्रम में, **सम्बन्धों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहज रूप में सम्पन्न होता है और **सम्बन्धों** में ही न्याय का प्रमाण, वर्तमान होता है यही यश का आरंभिक स्वरूप है। न्याय की विशालता मानव सम्बन्ध व नैसर्गिक **सम्बन्ध** के रूप में वर्तमान है। स्वराज्य विधि में नैसर्गिक संतुलन अनिवार्य स्थिति है। जिसमें से नैसर्गिक **सम्बन्धों** को नियंत्रण व सन्तुलन के अर्थ में नियमों को पहचानना व निर्वाह करना – के रूप में सार्थक होता है। जीवन की यह अभिव्यक्ति, सार्थकता व जागृति का प्रमाण है। **(अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 221)**
- प्रेम ही जीवन में पूर्ण मूल्य है। अनन्यता ही प्रधान शिष्टता है, जो प्रेम को अभिव्यंजित करने में समर्थ है। प्रेममयता ही विवेक सम्पन्न एवं अभयता का अनुभव है। यह संबोधन क्रम से स्थापित **सम्बंधों** को ज्ञान कराता है। प्रत्येक **सम्बंध** में, स्थापित मूल्य प्रसिद्ध है। प्रत्येक सम्बंधों की चरितार्थता केवल वर्तमान में विश्वास एवं सम्पूर्ण **सम्बंधों** की पहचान मूल्यों का निर्वाह ही है – जो जीवन का लक्ष्य और कार्यक्रम है। प्रत्येक चैतन्य इकाई जीवन पद में है, जीवन जागृति पूर्वक प्रेम और अनन्यता की दया, कृपा, करुणा के संयुक्त रूप में प्रमाणित करता है।

प्रेमानुभूति स्वयं स्वतंत्रता स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता है। अस्तित्व में अनुभूति पूर्वक ही प्रेमानुभुति और अभिभूति प्रमाणित होता है। स्वतंत्रता जीवन का लक्ष्य है। अभिभूति ही नियम नियंत्रण, संतुलन न्याय, धर्म सत्य सहज विधि से पूरक होने का प्रमाण है। पूरक होने का प्रमाण मानव **सम्बंधों** के नैसर्गिक **सम्बंधों** में सार्थक होना पाया जाता है। मानव सहज मानव संचेतना का प्रमाण सहजता के आधार पर स्वानुशासन सहज ही सार्थक होना पाया जाता है। प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण अनन्यता है। प्रत्येक मनुष्य, अपने से विकसित के साथ अनन्यता को स्थापित करता है। यह जागृति परम्परा की महिमा है। (**अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 223–224**)

- जागृति पूर्णता से सम्पन्न जीवन की आकांक्षा मानव में प्रसिद्ध है अथवा प्रसिद्ध होने योग्य है। उसके योग्य वातावरण निर्माण करना ही सामाजिक कार्यक्रम है। यही सर्वमंगल कार्यक्रम है। यही समाधान, विश्राम एवं स्वर्ग है। सम्पूर्ण प्रकार के संयम, प्रमाण, और प्रमाणिकता का संप्रेषण और अभिव्यक्ति है। यही अखंडता सार्वभौमता, अक्षुणता सहज स्रोत और गति है यही जागृति परम्परा है। प्रेमानुभूति की चरितार्थता है। मानवीय शिक्षा संस्कार, समझदारी, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज, संस्कृति सभ्यता, विधि, मूल्यांकन, निरीक्षण, परीक्षण, संप्रेषणा, प्रकाशन, संगीत, स्वर, लय, श्रुति, उत्सव, मानव **सम्बंध** और नैसर्गिक **सम्बंधों** में जीने की कला, स्थिति, गति समुच्चय प्रेमानुभूति सहज है। समझदारी सहित जागृत मानव सहज किया गया प्रत्येक क्रिया प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के फलन में मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य सार्थक होता है। (**अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 229**)
- वत्स (पुत्र–पुत्री) रूपी सम्बन्ध बोध के साथ ही वात्सल्य रूपी मूल्य का प्रकाशन होता है। यह वात्सल्य संतान व संतानवत् **सम्बंधों** का बोध सहित प्रत्येक परिवार मानव में देखने को मिलता है। सन्तान का रूप बोध होना, लोक व्यापीकृत है। सन्तान का अर्थ बोध होना अपरिहार्य है। परिवार मानव को सन्तान में, पारिवारिक अर्थ बोध होना सहज है।

वात्सल्य **सम्बंध** बड़े बुजुर्गों के साथ माता–पिता के साथ गुरू–आचार्यवत् व्यक्तियों के साथ वात्सल्य **सम्बंध** स्वीकृत होना पाया जाता है। संतानवत स्वीकारने का महत्वपूर्ण तथ्य इतना ही है कि तन, मन, धन का ऐसे वात्सल्य **सम्बंध** को निर्वाह करता हुआ व्यक्ति, नियोजित करता हुआ देखने को मिलता है। जैसे कोई भी सामान्य सज्ञन परिवार में संतान होता है। उनके लिये उस **सम्बंध** के साथ उपलब्ध तन, मन रूपी अर्थ का नियोजन करते है। मूलतः मानव अपेक्षा हर **सम्बंधों** की अक्षुणता के अर्थ में आरंभ होता है।

मानव जब जागृत परम्परा में होता है तब सम्पूर्ण **सम्बंध** और उसमें निहित मूल्यों की अक्षुणता बनी ही रहती है। फलतः परिवार में अक्षुणता, समाज में अक्षुणता, का प्रमाण बना ही रहता है। इससे यह पता चलता है कि जीवन जागृति पूर्वक हम मानव **सम्बंध** और मूल्यों की अक्षुणता को बनाये रख पाते है। **सम्बंध** और मूल्य कभी भी समाप्त नहीं होता है यह भी तथ्य सामान्य लोगों ़ को पता है। मूल्य यथावत बना ही रहता है **सम्बंध** भी बना ही रहता है, निर्वाह होता ही है।

सम्पूर्ण **सम्बंध** मानव की जिज्ञासा के अनुसार **सम्बंधों** का **संबोधन** प्रचालित है। इन सभी **सम्बंधों** में शुभेच्छा ही सर्वाधिक लोगों में आकलित होता है। मानव सहज प्रयोजनों के अर्थ में **सम्बंधों** की दृढ़ता में निरंतरता रहता ही है। ऐसी दृढ़ता के आधार पर ही जागृति पूर्वक निष्ठा सहज स्वीकार होना पाया जाता है। सम्पूर्ण निष्ठा में मानव अपने दायित्व कर्तव्यों को स्वीकारने की स्थिरता होना पाया जाता है फलस्वरूप व्यवस्था और व्यस्था में भागीदारी सहज हो जाता है। वात्सल्य सहज **सम्बंधों** का निर्वाह प्रमाणिकता के आधार पर ही सफल होना पाया गया है। हर बड़े बुजुर्ग, आचार्य, गुरू, मित्र, परिवार, समाज व्यवस्था **सम्बंधों** के साथ अपेक्षाएं श्रेष्ठता के अर्थ में ही बना रहता है। इसी प्रकार बड़े बुजुर्ग, आचार्य अभिभावक भी वात्सल्य प्रेरित मानव संतान को भावी श्रेष्ठ स्वरूप के अर्थ में ही अपेक्षा बनाये रखते है। ये उभयपक्षी अपेक्षाएं सार्थक होने का जहाँ तक प्रमाण बिंदु है वहाँ तक पहुँचने में बड़े बुजुर्ग, आचार्य अभिभावकों का ही दायित्व प्रधान रहता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते है कि परम्परा ही आगे पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक है। लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति के लिए दायित्व पीछे पीढ़ी के साथ जुड़ा रहता है। अतएव परम्परा जागृति होने के बाद ही परम्परा अपने सभी आयामों में जागृत होने के उपरांत ही भविष्य की पीढ़ियाँ जागृत होना और प्रमाणित होना पाया जाता है।

अब, मनुष्य के वात्सल्य और सहजता को लोकव्यापीकरण प्रणाली में संबद्ध करने के लिए मानवीयता–मानवीय आचरण, व्यवहार व व्यवस्था को निरंतर बनाये रखना है यह जागृत परम्परा में स्वभाविक रूप में निर्वाह होना पाया जाता है। इस क्रम में वात्सल्य निरंतर सफल रहता है। साथ ही सभी मूल्य सार्थक होते है। मानवीयता पूर्ण मानव परम्परा में, स्थापित मूल्यों में से एक वात्सल्य है। जो **सम्बन्ध** को पहचानने के फलस्वरूप होने वाला वैभव है। इसका आचरण में सहज होना पाया जाता है। हर मूल्य का अनुभव मुद्रा, भंगिमा, भाव, अंगहार सहित **सम्बंधों** में व्यक्त होना पाया जाता है। वात्सल्य के साथ जैसे भाषा को पीछे रखकर भाव प्रभावित हो जाता है, फलत: बाल्य भाषा में ही अभिभावक माता पिता बात करने लग जाते हैं। यह भाव वस्तु है। हर **संबोधन** संभाषण में शिशु की मुद्रा भंगिमा अंगहार की व्याख्या भी होती रहती है। इसे तोतली भाषा भी कहते हैं। यह बारम्बार देखने को मिलता है। विश्वास, वात्सल्य के साथ वर्तमान रहता ही है। इसे अर्थात वात्सल्य **सम्बंध** के साथ परम सरलता वर्तते हुए विश्वास का होना पाया जाता है। प्रत्येक जागृत मनुष्य अपने को ऐसी स्थिति में निरीक्षण परीक्षण कर सकता है।

हर अभिभावक, माता–पिता के, सर्वेक्षण करने पर यह पता चलता है कि वात्सल्य से ओतप्रोत रहने तक परम सरलता की स्थिति मनुष्य की रहती है। सरलता का तात्पर्य यही है कि जागृति पूर्वक **सम्बंधों** को पहचानने के क्रम में मुद्रा, भंगिमा, अंगहार भाषा भाव सहित अर्थ की सदुपयोग सुरक्षा से करते हुए प्रस्तुत होने से है। हर संतान के साथ अर्थ का सदुपयोग करना संतान को सुविधाजनक विधि से पालन पोषण संरक्षण करता हुआ अभिभावक को देखा जाता है। हर अभिभावक जागृति के अनंतर संतान जागृति के लिए उपक्रमों को बनाये रखना सहज है।

संतान शिष्य में जागृति ही प्रधान लक्ष्य बना रहता है। क्योंकि स्वयं जागृत मानव परम्परा में गुरू और अभिभावक जागृत पद में होना पाया जाता है यह एक स्वभाविक समीचीन स्थिति है। परम्परा बहुआयामी विधि से प्रभावित रहता ही है। हर अभिभावक, गुरू, आचार्य, संतान और विद्यार्थियों के प्रति जागृति सहज लक्ष्य दिशा प्रयोजनों को प्रमाणित करने के क्रम में ये स्वयं प्रमाणित रहना आवश्यकता बना ही रहता है। गुरू, आचार्य प्रमाणिकता के आधार पर शिष्य शिक्षा ग्रहण करने लिए सहज रूप में ही सुलभ हो जाता है और सार्थक होता है।

वात्सल्यता अपने आप में भावी पीढ़ी में जागृति को सार्थक बनाने में निश्चयन के साथ उत्सवित रहने का उद्गार ही वात्सल्य कहलाता है। हर **सम्बंधों** के साथ उत्सव के साथ ही उद्गार होना देखा गया है। ऐसे उद्गार स्वयं भाषा के रूप में शब्द के रूप में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। हर मानव भाषा भाव भंगिमा, अंगहार समेत ही प्रस्तुत होता है इससे पता लगता है कि मानव परम्परा में भाषा भावों का संप्रेषित करने का एक सहज स्रोत है। भाव ही मौलिकता और मूल्य है। प्रमाणों में जितने भी तथ्य आये रहते है उसका भाषा तो बना ही रहता है जो आये नहीं रहते है उसके **सम्बंध** में पहले से भी भाषा बना ही रहता है यही मानव परम्परा का अत्यंत चमत्कारी अथवा अग्रिम गतिकारी अभिव्यक्ति है। सर्वाधिक विद्याओं में अनुसंधान न होने के पहले से ही अनुसंधान होने वाले वस्तु का नामकरण परम्परा में होना पाया जाता है जैसे अस्तित्व, सह–अस्तित्व, सत्य, धर्म, न्याय, समाधान, नियम ये सब शब्द हर भाषा में प्रकारान्तर से परंपराओं में प्रचलित है ही।

क्योंकि सह–अस्तित्व को परम सत्य के रूप में समझना **सम्बंध** मूल्य मूल्यांकन उभय तृप्ति संतुलन को न्याय के रूप में, व्यवस्था में भागीदारी को समाधान के रूप में सह–अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण को समझदारी के मूल तत्व के रूप में, मानव जाति को अखंड समाज के अर्थ में, मानवीयता पूर्ण व्यवस्था को सार्वभौम व्यवस्था के रूप, मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार को संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के रूप में, मानव लक्ष्य को समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व के रूप में, मानव सहज लक्ष्य पूर्ति के लिए दिशा को व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में समझा गया है। इसे समझाने की व्यवस्था भी प्राप्त कर ली है। इसलिए अब हमें यह भरोसा है कि मानव संतान में, से, के लिए मानव परम्परा को जागृति पूर्वक लक्ष्य और दिशा के रूप में पहचानना संभव हो गया है। इन्हीं आधारों पर अथवा प्रामाणिक आधारों पर यह मनोविज्ञान अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ है।

जागृत मानव परम्परा सहज विधि से हर संतान जागृति की ओर उन्मुख होने के लिए अभिभावकों में पर्याप्त उपक्रम बना ही रहेगा और गुरू आचार्य जागृति का प्रमाण के रूप में स्वाभाविक रहता ही है इसलिए हर संतान जागृत होने का लक्ष्य और दिशा सुस्पष्ट होना स्वाभाविक है। यही जागृति परम्परा का देन है। इसकी निरंतरता के लिए मानव परम्परा का, मानवीयता पूर्ण पद्धति व प्रणालीबद्ध होना अनिवार्य है। स्थापित व शिष्ट मूल्यों को आचरण में पाने के लिए, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को अपनाना आवश्यक है। प्रत्येक जागृत मानव, परिवार मानव है। जागृत

परिवार में ही वात्सल्य वर्तमान एवं अक्षुण है। इसलिए जागृत मानव, जागृत मानव परिवार, अंखड समाज और सार्वभौम व्यवस्था को पहचानने की आवश्यकता है। क्योंकि मूल्यों की निर्वाह और अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव का उत्सवित होना पाया जाता है। उत्सव मनुष्य की अपेक्षा है।

अस्तु, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था संपन्न, मानव परम्परा में ही, वात्सल्यादि सभी मूल्य **सम्बंध** सहज ही होना पाया जाता है। क्योंकि परिवार और विश्व परिवार सभी व्यवस्था पूर्वक नैसर्गिक और मानव **सम्बंधों** और मूल्यों का निर्वाह होना जागृत परम्परा की सहज गति है। इसकी आवश्यकता, अनिवार्यता, उपलब्धता निरंतर पूरक विधि से प्रभावशील रहता ही है। यही नियति है। नियति सहज क्रिया–प्रणाली पद्धति लक्ष्य और दिशा, प्रयोजन और सार्थकता सहज यर्थाथता, वास्ताविकता, सत्यता में जागृत रहने और जागृत करने के क्रम में ही मानव सहज जागृति वात्सल्य और सहजता सार्थक होना पाया जाता है। (**अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 230–234**)

- प्राकृतिक संतुलन के लिए आर्वतनशीलता भी आवश्यक प्रणाली है और धरती के ऊपरी सतह में जो कुछ भी वस्तुएं है उनका अनुपाती अर्थात प्राकृतिक संतुलन के साथ आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन वस्तुओं का उत्पादन उपयोग सदुपयोग करना, प्रकृति के साथ मानव का पूरकता संपन्न होता हुआ प्रमाणित होता है। यह परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विश्व परिवार के रूप में जागृत होने के उपरांत ही सार्थक सुलभ होना प्रमाणित होता है।

ऐसी परम स्थिति को पाने के लिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को एक ग्राम या मुहल्ले में प्रमाणित करना ही शुभारंभ है इसके लिए हम कटिबद्ध है प्रयत्नशील है। परिवार से ग्राम परिवार के साथ ही नैसर्गिक और मानव सम्बंध का पहचान और निर्वाह आरंभ होता और विश्व परिवार सभा तक विस्तृत होता है इसी क्रम में मानव तथा नैसर्गिक **सम्बंधों** का निर्वाह और पूर्ण तृप्ति और संतुलन सर्वसुलभ होता है। जागृति पूर्वक ही परम्परा में जागृति की ओर मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक लक्ष्य और दिशा निर्धारित और स्वीकृत हो जाता है फलस्वरूप इसका प्रमाण जागृति के रूप में हर पीढ़ी से पीढ़ी में सहज होता है। हर मानव शिक्षा संस्कारपूर्वक ही जीवन जागृत होता है, प्रमाणित होता है यही परम्परा है। उसी के साथ यथार्थता, वास्तविकता, व सत्यताओं को जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने की अर्हता बना ही रहता है। जागृत जीवन सदा ही अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्नता को जानता है, मानता है और पहचान लेता है। निर्वाह करने के लिए तत्पर रहता है। ऐसा होते हुए जीवन शक्तियों का दूर दूर तक फैलने बहने की क्रिया–कलापों के साथ, प्रवर्तन व्यवस्था जीवन में समाई रहती है। (**अध्याय: 5.31, पृष्ठ नंबर: 238–239**)

- **सम्बंधों** को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना और मूल्यांकन करना, जानना, मानना, अनुभव करना व्यवहार सहज सूत्र है। **(अध्याय: 5.5, पृष्ठ नंबर: 253)**
- **सम्बंधों** को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और परिवार सहज रूप में अपनाए गए उत्पादन कार्य में, परस्पर पूरक होने के तथ्य को जानना मानना, अनुभव करना और पहचानना, निर्वाह करना सुख सुन्दर समाधान पूर्ण परिवार व विश्व परिवार सूत्र है। **(अध्याय: 5.5, पृष्ठ नंबर: 253–254)**

संदर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)

- 101. **संबंध** :– (i) शरीर संबंध (v) उत्पादन संबंध

  (ii) मानव संबंध (vi) विनिमय संबंध

  (iii) शिक्षा संबंध (vii) नैसर्गिक संबंध

  (iv) व्यवस्था संबंध।

- **(प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा)**

  मूल्य :–

  1. मौलिकता; मानव में ही प्रगट होना।
  2. प्रत्येक इकाई में निहित मौलिकता ।
  3. जीवन–मूल्य, मानव–मूल्य, स्थापित–मूल्य, शिष्ट मूल्य, वस्तु–मूल्य (30 कुल मूल्य) उपयोगिता एवं कला की सिद्ध मात्रा, उत्पादित वस्तु मूल्य, स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्य, जिसका अनुभव में, से, के लिए अभिव्यक्ति संप्रेषणा से प्रकाशित होने वाले शिष्ट मूल्य।

- **(प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा)**

  आचरण :–

  1. स्वधन, स्वनारी–स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार विन्यास
  2. **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, उभय तृप्ति, संतुलन
  3. तन, मन, धन रूपी अर्थ की सुरक्षा और सदुपयोग
  4. मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य वर्तमान रूप में किया गया संपूर्ण कार्य, व्यवहार, विचार विन्यास

- मानवीयतापूर्ण आचरण जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार, **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्याँकन स्वीकृति, उभयतृप्ति, तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा के रूप में ही मानवीयता सहज व्याख्या है । यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 9)**

- (16) व्यवहार
    1. मानव और मानवेत्तर प्रकृति सहज परस्परता में निहित **संबंध** व मूल्यों का नियम, नियंत्रण एवं संतुलन पूर्वक निर्वाह।
    2. मानव की परस्परता में निहित मूल्यों का निर्वाह ।
    3. एक से अधिक एकत्रित होने पर या होने के लिए किया गया आदान–प्रदान ।
    4. **सम्बन्धों** में निहित स्थापित मूल्यों में अनुभव सहित शिष्टतापूर्ण पद्धति से व्यवसाय मूल्य पूरकता के अर्थ में उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग एवं वितरण। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 15–16)**
- मूल्य
    1. मौलिकता (मानव में ही प्रगट होना आवश्यक) ।
    2. प्रत्येक इकाई में निहित मौलिकता । (मानव ही पहचानता है) ।
    3. जीवन–मूल्य, मानव–मूल्य, स्थापित–मूल्य, शिष्ट–मूल्य, वस्तु–मूल्य (30 कुल मूल्य) उपयोगिता एवं कला की सिद्ध मात्रा, उत्पादित वस्तु मूल्य, स्थापित **संबंधों** में निहित स्थापित मूल्य, जिसका अनुभव में, से, के लिए अभिव्यक्ति संप्रेषणा से प्रकाशित होने वाला शिष्ट मूल्य। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 16–17)**
- मानवीय आचरण
    1. स्वधन, स्वनारी–स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्य–व्यवहार विन्यास।
    2. **संबंधों** की पहचान, मूल्यों का निर्वाह मूल्यांकन एवं उभयतृप्ति ।
    3. तन, मन, धन रूपी अर्थ की सुरक्षा और सदुपयोग ।
    4. मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य वर्तमान रूप में किया गया संपूर्ण कार्य, व्यवहार, विचार विन्यास। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 17)**
- विधान
    1. मानव–लक्ष्य समाधान–समृद्धि–अभय–सहअस्तित्व परम्परा के अर्थ में आचरण (मूल्य, चरित्र, नैतिकता सहित) सूत्र व्याख्या सहज परंपरा।
    2. अखण्ड समाज ही दस सोपानीय सार्वभौम व्यवस्था सहज व्याख्या।
    3. मानव लक्ष्य सफल होना ही जीवन मूल्य प्रमाणित होना।

विधि = जीवन–मूल्य सुख–शांति–संतोष–आनन्द के अर्थ में, मानव–लक्ष्य समाधान–समृद्धि–अभय–सहअस्तित्व प्रमाण के रूप में मानव परम्परा में–से–के लिए स्थिति–गति सूत्र व्याख्या, अखण्ड–समाज सार्वभौम–व्यवस्था सहज प्रमाण परंपरा।

व्यवस्था = विश्वास (**संबंधों** में मूल्य निर्वाह), सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्नता सहित अखण्ड समाज सार्वभौम सूत्र व्याख्या सहज परम्परा।

स्पष्टीकरण – व्यवस्था ही जागृत परम्परा है। वर्तमान में सभी **सम्बन्धों** कार्य– व्यवहार में विश्वस्त, भविष्य क्रम में स्वीकार किया गया कार्य–व्यवहार स्थिति–गति सहज संस्कृति–सभ्यता में–से–के लिए आश्वस्त रहना व्यवस्था है। विगत का स्मरण, वर्तमान में विश्वास, जागृति सहज प्रमाण, भविष्य की योजनाओं में आश्वस्त रहना व्यवस्था है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 32–33)**

•

समझदारी	ईमानदारी	जिम्मेदारी, भागीदारी
अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ही अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन लक्ष्य सहित जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्नता में विश्वास	विवेक सम्मत विज्ञान, विज्ञान सम्मत विवेक, लक्ष्यगामी दिशा और मानव लक्ष्य में विश्वास	संबंध सहज पहचान, मूल्यों का निश्चयन सहित निर्वाह और मूल्यांकन करने में विश्वास

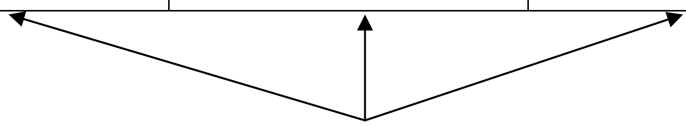

स्वयं में विश्वास (समझदारी) स्वयं स्फूर्त है

स्वयं स्फूर्त विधि से भागीदारी करना ही वैभव है । **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 36)**

- राष्ट्रीय–चरित्र
    - मानवीय शिक्षा–संस्कार सुलभता प्रमाण परम्परा,
    - न्याय–सुरक्षा सुलभता प्रमाण परम्परा,
    - उत्पादन–कार्य सुलभता प्रमाण परम्परा,
    - विनिमय–कोष सुलभता प्रमाण परम्परा,
    - स्वास्थ्य संयम सुलभता प्रमाण परम्परा,
    - मानवीयता पूर्व आचरण सुलभता प्रमाण परम्परा,
    - परस्पर निश्चित **संबंधों**, निश्चित मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन सुलभता प्रमाण परंपरा,
    - परस्पर तृप्ति समाधान–समृद्धि, वर्तमान में विश्वास (अभय), सहअस्तित्व में प्रमाण सहज परम्परा,

    नैसर्गिक और ऋतु संतुलन सुलभता में भागीदारी परम्परा ही राष्ट्रीय चरित्र है। जागृत मानव परम्परा ही सार्वभौम व्यवस्था सहज विधि से प्राकृतिक संतुलन सहित सूत्र व्याख्या का जिम्मेदार है । (**अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 39**)

- जागृत मानव प्रवृत्तियाँ (स्वभाव)

जन–बल का सार्थक रूप परिवार दस सोपान में स्पष्ट होता है । हर जागृत मानव सहज पहचान दस सोपानीय परिवारों में होती है यथा समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व अर्थात् चारों अवस्थाओं के साथ जागृत मानव नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य सहज विधि से निर्वाह करता है ।

- परिवार **सम्बन्ध** मूल्यों के आधार पर
- उत्पादन–**सम्बन्ध** उपयोगिता व कला श्रम मूल्यों के आधार पर
- व्यवस्था–**सम्बन्ध** समाधान समृद्धि व न्याय के आधार पर
- शिक्षा–**सम्बन्ध** सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, ज्ञान–विवेक– विज्ञान सम्पन्नता के आधार पर
- स्वास्थ्य–**सम्बन्ध** आहार–विहार, औषधी, संयत व्यवहार के आधार पर
- प्रकृति–**संबंध** नियम, नियंत्रण, संतुलन, उपयोगिता, पूरकता के आधार पर
- समझदारी का **सम्बन्ध** सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व के आधार पर
- न्याय, **सम्बन्धों** एवं मूल्य निर्वाह के आधार पर
- विनिमय–सम्बन्ध उपयोगिता पूरकतावादी दृष्टि व श्रम मूल्य के आधार पर
- मानव–**सम्बन्ध** अखण्डता सार्वभौमता के आधार पर
- मानव लक्ष्य सहज प्रमाण में, से, के लिए सभी **संबंध** है
- ज्ञान, विवेक एवं विज्ञान सहित मानव लक्ष्य के लिए कार्य व्यवहार सहज निश्चयन शिक्षा–दीक्षा संस्कार में, से, के लिए है । (**अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 51–52**)

- जागृत मानव सहज आचार संहिता रूपी सूत्र व्याख्या

प्रारूप –

मानवीय आचरण–संपन्नता सहित **सम्बन्धो** का निर्वाह समेत अखण्ड राष्ट्र समाज व्यवस्था में भागीदारी करना ।

सूत्र–फलन में –

1. हर समझदार परिवार में समाधान–समृद्धि प्रमाणित होना ।
2. अखण्ड राष्ट्र समाज व्यवस्था में समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास) सहअस्तित्व प्रमाणित होना ।

दस सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि क्रम में समाधान, समृद्धि , अभय, सहअस्तित्व सहज वर्तमान परम्परा ही व्याख्या है । **संबंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह ही विधि–व्यवस्था है। यह प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है ।

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद सूत्र व्याख्या है । यह प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है ।

मानवीय शिक्षा–दीक्षा संस्कार, मानवीय आचरण सूत्र व्याख्या रूपी संविधान, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, मानवीय व्यवस्था में भागीदारी प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है ।

सार्वभौम = सर्व मानव द्वारा स्वीकृत अथवा स्वीकार करने योग्य सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में मूल अवधारणा सम्पन्न होना यह प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है ।

अवधारणा = अवगत (पारंगत) होने, रहने में स्वीकृति और निष्ठान्वित निष्ठा कारक होना यह प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है ।

हर नर–नारी जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने योग्य क्षमता सम्पन्न है क्योंकि हर मानव में–से–के लिए कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता विद्यमान है । इसे सार्थक रूप देना प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है।
(अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 60–61)

- **जागृत मानव परम्परा में चरितार्थ प्रमाणित– सम्बन्ध**

जीवन मूल्य = मानव धर्म = मानव लक्ष्य = समझदारी

जागृत मानव लक्ष्य = सुख–सर्वतोमुखी समाधान, शांति–समृद्धि, संतोष–अभय, आनन्द–सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण सम्पन्नता यह प्रत्येक नर–नारी का मौलिक अधिकार है ।

जागृत मानव परम्परा वैभव क्रम में मूल्याँकन सहज वर्तमान है ।

सह अस्तित्व पूर्ण मानसिकता पूर्वक मूल्याँकन सार्थक होता है। जागृत मानव मूल्याँकन करता है, सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न मानव ही मूल्याँकन करेगा ।

मानवीयता पूर्ण आचरण अर्थात् समाधान, समृद्धि मानव में–से–के लिए आचरण पूर्वक घटित होना पाया जाता है यह विदित है।

जागृत मानव ही अपने आचरण "कार्य–व्यवहार" फल–परिणाम से ही समाधान–समृद्धि, सुख–शांति परंपरा वर्तमान होना, रहना सहज है ।

जागृत मानव परम्परा में चरितार्थ **संबंध**, मूल्य, मूल्यों का निर्वाह और मूल्याँकन प्रमाण **सम्बन्धो** में होता है । हर जागृत मानव प्रमाणित करता है । समस्त मूल्य जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उत्पादित वस्तु मूल्य (प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य स्थापना उत्पादन) अर्थात् श्रम–नियोजन पूर्वक वस्तु मूल्य उपयोगिता–कला के रूप में है ।

प्राकृतिक वैभव = सहअस्तित्व में पूरकता, उपयोगिता ।

सहअस्तित्व नित्य प्रभावी है इसलिए प्राकृतिक ऐश्वर्य का मूल्य शून्यहै ।

प्रकृति ही धरती, हवा, पानी, पहाड़, समुद्र, नदी, नाला, जंगल, जीव, जानवर वस्तुएं हर मानव के सम्मुख दृश्य रूप में है। (अध्याय:5, पृष्ठ नंबर: 62–63)

6.5 (5)

संबंध	प्रयोजन
माता–पिता	पोषण एवं संरक्षण सहज प्रयोजनों को जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना मौलिक अधिकार है ।
भाई–बहन	अभ्युदय के अर्थ में मूल्य निर्वाह करना मौलिक अधिकार है ।
पुत्र–पुत्री	अभ्युदय निःश्रेयश के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है ।
पति–पत्नी	परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
गुरु–शिष्य	जीवन जागृति के अर्थ में, ज्ञान–विवेक–विज्ञान सहज पारंगत प्रमाणिकता के अर्थ में संबंध निर्वाह निरंतरता मौलिक अधिकार है ।
साथी–सहयोगी	कर्तव्य दायित्वों को निष्ठापूर्वक निर्वाह करने के अर्थ में संबंधों का निर्वाह करना मौलिक अधिकार है।
मित्र–मित्र	अभ्युदय, सर्वतोमुखी समाधान सहज प्रामाणिकता सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्थ में संबंध निर्वाह करना मौलिक अधिकार है ।

सभी **सम्बन्धों** को प्रयोजनों के अर्थ में जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना मौलिक अधिकार है ।

सम्बन्ध सहज पहचान –

- पोषण प्रधान संरक्षण के रूप में माता का **दायित्व–कर्तव्य** के रूप में प्रमाण ।
- संरक्षण प्रधान पोषण रूप में पिता का **दायित्व कर्तव्य** प्रमाण मौलिक अधिकार है।

पोषण–संरक्षण = शरीर पोषण, स्वास्थ्य–संरक्षण, संस्कारों का पोषण–संरक्षण, भाषा का पोषण–संरक्षण, स्वच्छता का पोषण–संरक्षण, परिवार व्यवस्था का पोषण–संरक्षण । व्यवहार–व्यवस्था का पोषण संरक्षण ज्ञान विवेक विज्ञान सहज सूत्र व्याख्या रुप में अखण्डता सार्वभौमता वैभव का पोषण संरक्षण परंपरा के रुप में होना ।

उत्सव = जन्म दिन उत्सव, नामकरण उत्सव, विद्यारंभ उत्सव, स्नातक उत्सव, विवाह उत्सव, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर कालोत्सव यह मौलिक अधिकार है ।

स्नातक– सनातन कालीन सत्य सहज वैभव में समझ को प्रमाणित करने हेतु सत्यापन । **(अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 74–75)**

- न्याय

सम्बन्धों सहज अनुबन्ध मूल्य निर्वाह करने में प्रतिज्ञा उपयोगिता–पूरकता विधि से पहचान, मूल्यों का निर्वाह फलस्वरूप मानव **सम्बन्धों** में परस्पर तृप्ति, मानवेत्तर–प्रकृति सहज **संबंधों** में संतुलन, अखण्ड समाज दस सोपानीय व्यवस्था, सार्वभौम – सर्व मानव स्वीकृत अथवा स्वीकृति योग्य है ।

सहअस्तित्व सम्बन्ध

भौतिक–रासायनिक–जागृत–जीवन क्रिया का **सम्बन्ध** पूर्वक मानव **सम्बन्ध** सार्थक प्रयोजन सहज गति है । **(अध्याय: 7, पृष्ठ नंबर: 108)**

- 3. चौथी स्थिति दस गांवों का व्यवहार कार्य व उत्पादन सेवा कार्यो का मूल्यांकन सहज सहमत होना आवश्यक रहेगा ।

  ग्राम–मोहल्ला परिवार सभा तक प्रत्येक परिवार का मूल्यांकन, स्वीकृति व सहमति आवश्यक है क्योंकि विश्व–परिवार सभा तक सभाओं में मूल्यों का मूल्यांकन में ताल–मेल एक आवश्यकता है, जिसमें मूल्यांकन में सहमति 'दस–सोपानीय व्यवस्था' स्वीकार और सार्थक हो सके ।

  प्रत्येक और सम्पूर्ण मानव में–से–के लिए मानवत्व सहित व्यवस्था में भागीदारी ही है ।

  मानवीयता पूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र, नैतिकता का संयुक्त रूप है –

  मूल्य = जाग्रत मानव परस्परता में जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्यों का वर्तमान व प्रमाण ।

  चरित्र = स्वधन, स्वनारी–स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार ।

  नैतिकता = तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा का वर्तमान ।

  यह सभी व्यवस्था सहज सोपानों में मूल्यांकन का आधार है। साथ ही वस्तु मूल्य व कला मूल्य की उपयोगिता के आधार पर मूल्यांकन होना ही जागृत मानव परंपरा है। **संबंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्याँकन, परस्परता में तृप्ति होता है । **(अध्याय:7, पृष्ठ नंबर: 138)**

- **निर्वाचित सदस्यों की अर्हता :–**

परिवार से लेकर ग्राम–सभा तक प्रत्येक निर्वाचित सदस्य की अर्हता निम्न होगी :–

1. उसकी आयु कम से कम 18 वर्ष होगी ।
2. वह ज्ञान–विवेक–विज्ञान में पारंगत व समाधान, समृद्धि पूर्वक जीता हुआ समझदार परिवार में, से, के लिए होगा। वह जीवन–विद्या से परिपूर्ण होगा अर्थात् स्वयं में विश्वास सम्पन्न और व्यवसाय में स्वावलंबी व व्यवहार में सामाजिक होगा ।
3. मानवीय आचरण **संबंधों** का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, उभय तृप्ति, स्वधन, स्वनारी/स्व पुरुष, दया पूर्ण कार्य–व्यवहार विन्यास तन मन धन रुपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा के रूप में वर्तमान में प्रकाशित प्रमाणित होगा। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 165)**

- **(समझदार परिवार समूह व परिवार सदस्य के कर्तव्य व दायित्व)** परिवार प्रधान, परिवार के अन्य सदस्यों का मूल्यांकन करेंगे। परिवार प्रधान का मूल्यांकन, परिवार समूह सभा करेगा। आचरण के लिए मूल्यांकन का आधार स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष व दया पूर्ण कार्य रहेगा। व्यवहार के मूल्यांकन का आधार मानव व नैसर्गिक **संबंधों** व उनमें निहित मूल्यों की पहचान व निर्वाह से है । **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 171)**
- रुचि मूलक आवश्यकताओं पर आधारित, उत्पादन के स्थान पर मूल्य व लक्ष्य–मूलक अर्थात उपयोगिता व प्रयोजनीयता मूलक उत्पादन करने की शिक्षा प्रदान करना। जिससे प्रत्येक मानव में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि (असंग्रह), अभयता, सरलता, दया, स्नेह, स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, बौद्धिक समाधान, प्राकृतिक संपत्ति का उसके उत्पादन के अनुपात में व्यय व उसके उत्पादन में सहायक सिद्ध हो ऐसी मानसिकता का विकास करना, व्यवहार शिक्षा में समाविष्ट होगा। इसके लिए शिक्षा के निम्न अवयवों का अध्ययन आवश्यक होगा:–.......

4. मानव व नैसर्गिक **संबंधों** की पहचान, **संबंधों** के निर्वाह में निहित मूल्यों की पहचान व बोध कराने की शिक्षा। "**संबंधों** के निर्वाह से ही विकास होता है" इसकी शिक्षा सर्वसुलभ करना। **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 175)**

- आचरण में न्याय :–

स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष और दया पूर्ण कार्य का वर्तमान और उसका मूल्यांकन आचरण में न्याय का स्वरूप है। स्वधन का तात्पर्य श्रम नियोजन का प्रति फल, कला तकनीकी, विद्वत्ता विशेष प्रदर्शन, प्रकाशन किए जाने के फलस्वरूप प्राप्त पुरस्कार और उत्सवों के आधार पर किया गया आदान–प्रदान के रूप में प्राप्त पारितोष रूप में प्राप्त धन या वस्तुएँ से हैं।

स्वनारी, स्वपुरूष :–

विवाह पूर्वक स्थापित दाम्पत्य **संबंध** जिसका पंजीयन ग्राम मोहल्ला सभा में होगा ।

दया पूर्ण कार्य :–

1. समाज मूल्यों की पहचान और उसका निर्वाह ।
2. **सम्बन्धों** की पहचान और निर्वाह क्रम में तन, मन, धन रूपी अर्थ का अर्पण समर्पण ।
3. नि:सहाय, कष्ट ग्रस्त, रोग ग्रस्त और प्राकृतिक प्रकोपों से प्रताड़ित व्यक्तियों को सहायता प्रदान करना ।
4. प्राकृतिक, सामाजिक और बौद्धिक नियमों का पालन आचरण पूर्वक प्रमाणित करते हुए मानवीय परंपरा के लिए प्रेरक होना ।
5. जो जैसा जी रहा है, कार्य कर रहा है उसका मूल्यांकन करना। जहाँ–जहाँ सहायता की आवश्यकता है वहाँ सहायता प्रदान करना ।
6. पात्रता हो उसके अनुरूप वस्तु न हो, उसके लिए वस्तु को उपलब्ध कराना ही दया है । **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 178– 179)**

2. व्यवहार में न्याय (मानवीय व्यवहार) :–

मानवीय व्यवहार मानव तथा नैसर्गिक सम्बन्धों व उनमें निहित मूल्यों की पहचान और उसका निर्वाह करना है। मानव परंपरा में मानव सम्बन्ध प्रधानत: सात प्रकार से गण्य है :–

1. माता – पिता
2. पुत्र – पुत्री
3. गुरू – शिष्य
4. भाई – बहिन
5. मित्र – मित्र
6. पति – पत्नी
7. स्वामी – सेवक (साथी–सहयोगी)

उपरोक्त सम्बन्धों में निहित मूल्य निम्न है :–

	स्थापित मूल्य	**शिष्ट मूल्य**
1.	विश्वास	सौजन्यता
2.	स्नेह	निष्ठा

3. कृतज्ञता सौम्यता
4. गौरव वंदना
5. ममता उदारता
6. वात्सल्य अरहस्यता
7. सम्मान सौहर्द्रता (स्पष्टता)
8. श्रद्धा पूज्यता
9. प्रेम अनन्यता (सरलता)

मानव **सम्बन्धों** में साम्य मूल्य विश्वास तथा पूर्ण मूल्य प्रेम है । बिना विश्वास के कोई भी **सम्बन्ध** का निर्वाह संभव नहीं है । **सम्बन्धों** में विश्वास का निर्वाह न कर पाना ही अन्याय है, जिसका सुधार भावी है ।

मानव के नैसर्गिक **सम्बन्ध** तीन प्रकार से गण्य है :–

1. पदार्थावस्था के साथ सम्बन्ध
2. प्राणावस्था (अन्न , वनस्पति) के साथ सम्बन्ध
3. जीवावस्था (पशु पक्षी आदि मानवेतर जीवों) के साथ सम्बन्ध

उपरोक्त संबंधों में उपयोगिता मूल्य दो प्रकार से गण्य है:–

1. परस्पर पूरकता, उदात्तीकरण के रूप में रचना–विरचना क्रम में उपयोगिता ।
2. परमाणु में विकास क्रम में उपयोगिता ।

उपयोगिता का स्वरूप निम्न है :–

1. प्राकृतिक सम्पदा (खनिज, वनस्पति तथा पशु–पक्षी) का उनके उत्पादन के अनुपात में उपयोग ।
2. प्राकृतिक सम्पदा में विघ्न न डालना ।
3. प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में सहायक बनना ।

(नैसर्गिक पवित्रता को समृद्ध बनाए रखे बिना मानव स्वयं समृद्ध नहीं हो सकता ।) **(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 179–181)**

- (3) शिक्षा संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "शिक्षा संस्कार समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी :–

1. **संबंधों** का पहचान मूल्यों का निर्वाह, मानवीयतापूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन। परस्परता में समाधान।

2. स्वयं के प्रति विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान क्रिया प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन कार्य में स्वावलंबन सहज विधि से मूल्यांकन।

3. मानवीय आचरण स्व धन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार का मूल्यांकन।

4. ग्राम जीवन व परिवार व्यवस्था में विश्वास व निष्ठापूर्ण आचरण का मूल्यांकन।

5. ग्राम व्यवस्था व ग्राम जीवन में भागीदारी का मूल्यांकन।

6. प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से किया गया तन, मन व धन रूपी अर्थ की सदुपयोगिता का मूल्यांकन।

7. मानव स्वयं व्यवस्था के रूप में संप्रेषित, अभिव्यक्त, प्रकाशित होने व समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने व उसकी संभावना का मूल्यांकन।

8. किसी व्यक्ति में बुरी आदत हो तो उसके, उससे (बुरी आदत से) मुक्त होने के आधार पर सुधार का मूल्यांकन।
(अध्याय:8, पृष्ठ नंबर: 191–192)

- संबंध उत्सव घोषणा

प्रत्येक परिवार पूरा ग्राम परिवार के साथ तालमेल बनाये रखने का अधिकार।

हर परिवार उत्सव सम्बन्ध

हर तरह कला संबंध

संस्कृति – संबंध

सभ्यता – संबंध

शिक्षा लोक शिक्षा – संबंध

विनिमय – संबंध

उत्पादन – संबंध

वस्तुओं का उपयोग – संबंध

कला – संबंध

साहित्य – संबंध

मानव सभ्यता – संबंध

स्वास्थ्य – संबंध

अनुभव – संबंध

समाधान – संबंध

न्याय – संबंध

नियम–नियंत्रण–संतुलन–संबंध

इन सभी संबंधों में मानवीयतापूर्ण आचरण को प्रमाणित करना ही व्यवस्था है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 206)**

- मनुष्य **संबंध** को न समझ पाने के कारण दुखी हो रहा है न कि साधनों की कमी से। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 216)**
- ग्राम स्वराज्य की मूलभूत इकाई समझदार परिवार है। परिवार स्वयं मानव चेतना मूल्य शिक्षा सम्पन्न मानवीयता पूर्ण व्यवस्था सहज मौलिक रूप है। मानवीयता स्वयं स्वराज्य एवं स्वतंत्रता का सूत्र स्वरुप है। स्वराज्य का तात्पर्य न्याय–सुलभता, उत्पादन–सुलभता और विनिमय–सुलभता है। (इसके पूरकता में शिक्षा – संस्कार, स्वास्थ्य आवश्यक है।) स्वतंत्रता का तात्पर्य प्रत्येक मानव का स्वानुशासन सहज प्रामाणिकता और समाधान पूर्वक अभिव्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होने से है, जो सहअस्तित्व रूपी परम सत्य अनुभव पूर्वक विधि से जानने व मानने से है अर्थात् अस्तित्व में परस्पर **संबंधों** व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने से है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 216)**
- परिवार मानव कुल में न्याय सुलभता सहज प्रमाण का तात्पर्य मानव व नैसर्गिक संबंधों की पहचान व उनमें निहित मूल्यों का निर्वाह ही है। **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 217)**

- (6) न्याय सुरक्षा सम्बन्धी आंकलन :–
    1. ग्राम का प्रत्येक वयस्क व्यक्ति समझदारी सम्पन्न है या नहीं अपनी योग्यता और पात्रता के अनुसार उत्पादन करता है या उत्पादन में भागीदार है या नहीं? के रूप में उत्पादन न्याय का आंकलन ।
    2. उत्पादित वस्तुओं का शोषण विहीन पद्धति से कहाँ तक विनिमय, आदान–प्रदान हो रहा है – के रूप में विनिमय न्याय का आंकलन।
    3. स्वधन, स्वपुरूष/स्वनारी, दया पूर्ण कार्यों और तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग के आधार पर **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति, आचरण–न्याय का आंकलन ।
    4. **सम्बन्धों** के साथ विश्वास निर्वाह के रूप में व्यवहार–न्याय का आंकलन ।
    5. न्याय, समाधान समृद्धि पूर्वक जीने में कठिनाइयों का निराकरण ।
    6. न्याय व्यवस्था में मूल्यांकन समीक्षा एवं आंकलन ।
    7. गाँव मोहल्ला सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं का आंकलन व वर्तमान में सुरक्षा व्यवस्था कैसी है ? **(अध्याय:10, पृष्ठ नंबर: 222–223)**

- **मूल्य**
    - ❖ सम्पूर्ण संबंध निश्चित है ।
    - ❖ परिवार सभा सम्बन्ध, शिक्षा–संस्कार–सम्बन्ध, न्याय–सुरक्षा सम्बन्ध, उत्पादन कार्य विनिमय कार्य सम्बन्ध , स्वास्थ्य संयम सम्बन्ध
    - ❖ संबंधों की पहचान सहित निर्वाह निरन्तरता में स्थापित मूल्य प्रमाणित होता है ।

    हर सम्बन्धों की पहचान, निर्वाह प्रयोजनों के अर्थ में निरन्तरता है।

    प्रयोजन हर नर–नारी की आवश्यकता है । स्वयमेव समग्र व्यवस्था ही प्रयोजन है ।

    जीवन मूल्य – 4

    मानव मूल्य – 6

    स्थापित मूल्य – 9

    शिष्ट मूल्य – 9

    वस्तु मूल्य – 2

    प्रमाण ही मानव समाज गति है । **(अध्याय:11, पृष्ठ नंबर: 229–230)**

- जागृत परंपरा में हर नर नारी स्वयं में समग्र अस्तित्व में, परस्पर मानव **संबंधों** में और मानवेत्तर प्रकृति के साथ व्यवस्था सूत्र के आधार पर विश्वास ही स्वयं में विश्वास है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 263)**
- जीवन में ही स्वयं का, जीव जगत व जीवन महिमा का पहचान विचार निश्चयन दृढ़ता प्रमाण, सह–अस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाण, अनुभव का बोध सहज संकल्प, न्याय– धर्म– समाधान– सत्य सहज स्वीकृति विश्लेषण, मूल्यों का आस्वादन सहित **संबंधों** का चयन पूर्वक कार्य व्यवहार में, से, के लिए अध्ययन व्यवहार अनुभव है।**(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 273)**
- मानवत्व ही परस्परता में **संबंध** व सम्मान सहज सूत्र है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 291)**
- **संबंधों** को जानना, पहचानना, निर्वाह करना मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 304)**
- **संबंध** नित्य वर्तमान, वर्तमान अस्तित्व, अस्तित्व सह –अस्तित्व, सह– अस्तित्व वैभव, वैभव यथास्थिति गति, मानव परंपरा में स्थिति गति समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी वस्तु का प्रयोजन यही संबंध ज्ञान विवेक विज्ञान संपन्नता है। यह मानवत्व है। **(अध्याय:12, पृष्ठ नंबर: 304)**

संदर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(**संस्करण**: 2010: **मुद्रण**: 2017)

- मैं जितने **संबंधों** में जीता हूँ अपने दायित्व कर्तव्यों के साथ सार्थक जीता हूँ। (**अध्याय**:1, **पृष्ठ नंबर**: 17)
- इसमें दूसरा सूत्र बनता है जीवन विद्या से कोई वर्ग संघर्ष का आधार नहीं है। इसमें सर्वशुभ का आधार सह–अस्तित्व ही है। सबके निरंतर सुखी होने का स्त्रोत है। समाधानित रहने रहने का प्रमाण है। ये सब चीजें अपने आप से उद्गमीत होते हैं। मैं समझता हूं मानव इसी को चाहता है ऐसे ही जीना चाहता है। हम सब के साथ ही सुख पूर्वक जी सकते हैं। अकेले कोई होता नहीं ये सिद्धान्त निकलता है। इस धरती के **संबंध** को छोड़कर कोई मानव सुखी होने का प्रयत्न करें तो हो नहीं सकता। पानी से **संबंध** छोड़कर सुखी कोई हो नहीं सकता। किन्हीं भी चीजों के **संबंध** को छोड़कर हम सुखी नहीं हो सकते तो जीवन **संबंध** को छोड़कर कैसे जिओगे। कैसे यांत्रिक हो जाएगा? और भावनात्मक संसार से कैसे मुक्ति पाएगा। आप ही सोचो यह कैसे हो सकता है। हम बाजार में जाते हैं, सब्जी, अनार, सोना, लोहा सबका भाव पूछते हैं। उस भाव का दृष्टा कौन है? मानव ही होता है। जब सबका भाव है तो मानव का भी भाव होगा। मानव का भाव पता लगाना ही आवश्यकता रही है, उसको छोड़कर सबका भाव पकड़ लिया। जिससे लाभ अवसर बना उन सभी भावों को पकड़ लिया। जिनसे लाभ अवसर बना उन सभी भावों को पकड़ लिया जबकि मानव का भाव (मूल्य) समझ लें तो लाभ–हानि से मुक्त हो जाएंगे। मानव मूल्य समझने से, जीवन मूल्य समझने से, स्थापित मूल्य समझने से, शिष्ट मूल्य समझने से हमको लाभ–हानि की आवश्यकता शून्य हो जाती है। तब उपयोगिता मूल्य पर जीना होता ही है जिससे धरती की छाती का कितना बड़ा बोझ हल्का हो सकता है। लाभ– हानि के चक्कर में आदमी न तो अपने को बचाता है, पराया तो बचाना ही नहीं। लाभ– हानि के चक्कर में सबका कत्ल, चकनाचूर। इस झंझट से मुक्ति तो ऐसी विधि से आता है कि मानव मूल्यों को समझने में सहज होता है। इसके पहले यह होने वाला नहीं है। हम बहुत बहुत सिर कूटे हैं कुछ किंतु कुछ सुधार हुआ नहीं। इसकी गवाही है– साम्यवाद और पूंजीवाद। साम्यवाद भी अंततोगत्वा राष्ट्रीय लाभ के लिए जूझा, लाभ से मुक्त नहीं हुआ और पूंजीवाद सदा सदा घोषित लाभवादी है। इसीलिए तो लाभ हानि से मुक्त होने के लिए मानव को अपने मूल्यों को समझने की आवश्यकता है। मानव मूल्यों को निर्वाह करने की आवश्यकता है। ये कैसे आएगी जीवनविद्या समझ में आने से अस्तित्व सह–अस्तित्व के रूप में समझ में आने से और मानवीयतापूर्ण आचरण में विश्वास होने से, मानव मूल्य चरितार्थ होता है। इसी का नाम है समझदारी। (**अध्याय**:2, **पृष्ठ नंबर**: 27–28)
- ...कोई एक व्यक्ति समझदार होने से संसार तर जाएगा ऐसा नहीं हो सकता है। ऐसी कल्पना ने ही हमको भयभीत, निरीह बनाया। मानवीयतापूर्ण आचरण में हर मानव अपने में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में जी पाता है। इस तरह जीने से हमारे तन मन धन का सदुपयोग, सुरक्षा करना भी बनता है और जब यह दोनों सजते हैं तो उस स्थिति में **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति भी अपने आप से अपने आप से प्रमाणित

होता है इस ढंग से मूल्य, चरित्र, नैतिकता के संयुक्त रूप में मानव का आचरण व्याख्यायित होता है। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा होना ही नैतिकता है। **संबंधों** को पहचानने की विधि से ही मूल्यों का निर्वाह होता है। जैसे कोई भी आदमी अपने पिता बेटा के **संबंध** को, माता के **संबंध** को गुरु के **संबंधों** को व्यवस्था के अर्थ में पहचानते हैं। मूल्य (भाव) अपने आप बहने लगते हैं फलस्वरुप मूल्यों का निर्वाह होता है। जहाँ **संबंधों** को पहचानते नहीं हैं वहाँ कोई मूल्यों का बहाव होता नहीं है। उदाहरण रेल के डिब्बे में कोई बैठा है एक अजनबी आता है तब उनका हाथ पैर अपने आप लंबा हो जाता है इच्छा होती है यहाँ कोई ना बैठे। वहीं थोड़ी देर बाद कोई पहचान का आदमी आ जाता है तो अपने आप से उठ कर खड़े हो जाते हैं उनको बैठा देते हैं इस तरह **संबंधों** की पहचान एक बड़ा काम है। **संबंधों** के बारे में अध्ययन प्रयोजन के आधार पर होता है। जैसे मां का **संबंध** पोषण प्रधान रूपी प्रयोजन के आधार पर, पिता का **संबंध** संरक्षण प्रदान रूपी प्रयोजन के आधार पर अध्ययन किया जाता है। यह **संबंध** सभी पहचानने में आ जाए उसके बाद मानव गलती नहीं करता। बिना **संबंध** पहचाने गलती करेगा ही। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 36–37)**

- प्रचलित वर्तमान राजकीय तंत्र, धर्म तंत्र प्रचार माध्यमों को देखने से पता लगता है सब अपराधियों के लिए बना है। ये दोनों अपराधियों को तारने में अपने– अपने ढंग से लगे हैं। यह सब तंत्र मानव को समझदारी दे नहीं पाया। हर मानव समझदार होना चाहता है। ईमानदार होना चाहता है। इमानदारी का रास्ता दिखा नहीं पाए। हर आदमी जिम्मेदार होना चाहता है। जिम्मेदारी का प्रयोजन परंपरा में दे नहीं पाए। लोगों ने शुभ की कामना की है सबका शुभ हो, सबके परिवार हो, सबका मंगल हो, इस प्रकार की बातों को तो सब लोग दोहराए हैं। किंतु कहने मात्र से, दोहराने मात्र से, तो रास्ता मिलता नहीं। जिस किताब में लिखा रहता है सबका शुभ हो उसी में लिखा रहता है सारा संसार झूठा है और असली मां–बाप ईश्वर हैं उन्हें की शरण में जाना चाहिए इससे कल्याण हुआ नहीं। असली मां– बाप के पास जाने के बाद मानव पाया नहीं तब कल्याण कहाँ– किसका होगा। इस बात से कोई प्रयोजन निकलता नहीं। समझदार होने पर ही आदमी का प्रयोजन स्पष्ट होता है। सभी **संबंधों** में प्रयोजन निहित रहता ही है। क्या प्रयोजन है? समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व को सफल बनाने के अर्थ में ही प्रयोजन है। सारे **संबंधों** का प्रयोजन इसी से जुड़ा रहता है इसमें जुड़ने से परंपरा बन जाती है। समझदारी की ही परंपरा होगी नासमझी की कोई परंपरा अखंड होगी नहीं। इसलिए अभी तक कोई परंपरा बनी नहीं सर्वशुभ के अर्थ में। वर्तमान शिक्षा में जब व्यक्ति पढ़ कर तैयार होता है स्वयं को सबसे बुद्धिमान मानता है। संसार को मूर्ख मानता है। ऐसे स्नातक हर वर्ष करोड़ों बनते हैं। एक–एक ऐसे स्नातक को कैसे समझदार बनाया जाए? कहां से इतने डॉक्टर लाया जाए जो इनको ठीक कर सके। **(अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 37–38)**

- नैतिकता का मूल तत्व जो तन मन धन रूपी अर्थ को प्रयोजन के अर्थ में नियोजित करना है। जिसे सदुपयोग कहते हैं। सदुपयोग दो अर्थों में होता है– 1. सेवा और उत्पादन में तन, मन, धन का नियोजन। 2.**संबंधों** के साथ प्रयोजन को सफल बनाने के लिए तन मन धन का अर्पण –समर्पण रूप में सदुपयोग। (**अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:** 38–39)
- ...मानव मानवीयता से परिपूर्ण होकर वैभवित होना ही राज्य का मतलब है। व्यवस्था में जीना ही राज्य है, स्वराज्य है। स्वयं प्रेरित होकर व्यवस्था में जीना ही स्वराज्य है। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण आचरण ही इसकी व्याख्या है। स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति में, व्यवस्था में **संबंध** है उसको सार्थक बनाएगा यही मानव की जागृति सहज वैभव है। **संबंध** और मूल्यों को सार्थक बनाने के क्रम में ही हम वर्तमान में विश्वास कर पाते हैं। **संबंधों** को पहचानते नहीं हैं तो वर्तमान में जीते नहीं है तो विगत में जाते हैं विगत वर्तमान होता नहीं। (विगत के साथ जीना बनता नहीं) भविष्य को सोचते हैं, भविष्य भी वर्तमान होता नहीं। इस तरह से आदमी को कहीं ठौर मिलता नहीं। फलस्वरूप भटकता रहता है। भटकना कोई चाहता नहीं है। परंपरा में दिशा और लक्ष्य निर्देश की व्यवस्था है नहीं।... (**अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:** 41)
- मानव के साथ तो **संबंध** मूल्यांकन में उभय तृप्ति होती है। तृप्ति हमारा वर है, अतृप्ति हमारा वर नहीं है। हर व्यक्ति तृप्त होने के आसार में समाधान, समृद्धि, वर्तमान में विश्वास और व्यवस्था में जीना सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना ही है। सत्य का स्वरूप इस ढंग से आया अस्तित्व ही परम सत्य है, निरंतर रहने वाली वस्तु अस्तित्व ही है और अस्तित्व, सह– अस्तित्व स्वरूप है, सह अस्तित्व ही निरंतर प्रभावशाली है। फलस्वरूप विकास व जागृति प्रकट होता है विकास क्रम होता है। विकसित हो जाते हैं जीवंत हो जाते हैं। विकास क्रम में भौतिक रासायनिक वस्तु के रूप में निरंतर कार्यरत है।... (**अध्याय:2, पृष्ठ नंबर:** 42)
- इस संकट से छूटने की आवश्यकता तो है किंतु वह केवल तभी होगा जब आदमी समझदार होगा और यह जब भी होगा इस एक ही विधि से जीना होगा वह है मानवीयता पूर्ण आचरण। मूल्य, मूल्यांकन इसका **संबंध** सह–अस्तित्व सहज विधि से है। इसके लिए हम आपको कोई प्रयोगशाला नहीं बनाना है। ना कोई युद्ध करना है। **संबंध** के लिए प्रयोजन को अखंड समाज व्यवस्था के अर्थ में जानना मानना जरूरी है। उससे पहचानना– निर्वाह करना बन जाता है। जानना– मानना प्रयोजन का ही होता है। बिना प्रयोजन के जाने– माने, पहचानने– निर्वाह करने में भटकाव होता ही है। जैसे धरती के **संबंध** में प्रयोजन को जानने में चूक गए। पर्यावरण के प्रयोजन को जानने में चूक गए जिसके कारण धरती और पर्यावरण की समग्रता को समझ नहीं पाए और मानव जाति ने धरती का भट्टा बैठा दिया। इसको भली प्रकार से समझने की आवश्यकता है कि इस धरती पर मानव परंपरा रहना है उसके लिए कैसे करवट लिया जाए, उसके लिए यह प्रस्ताव है। (**अध्याय:3, पृष्ठ नंबर:** 52)

- ...अस्तित्व में **संबंध** चारों तरफ फैला रहता है उसको जानना– मानना– पहचानना और निर्वाह करना फलस्वरुप उभयतृप्त होना ही न्यायविद् का प्रमाण है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 57)**
- **संबंध** जो है सभी और जुड़ा है हैं इसे हम भ्रमवश में जानते नहीं हैं यही परेशानी का घर है। जिस क्षण से हम **संबंधों** को जानना– पहचानना शुरू किया उसी मुहूर्त से हममें अपने आपसे जीवन सहज मूल्यों का निष्पत्ति होती है। जैसे ही हम से **संबंधों** को पहचानना होता है मूल्य अपने आप से बहने लगते हैं फलस्वरूप निर्वाह होता है उसका मूल्यांकन होने पर उभय तृप्ति होता है, इस तरह न्याय प्रमाणित होता है। **संबंध** को पहचानने की स्थिति, पहचानने की विधि बनती है प्रयोजन के आधार पर। संतान 'मां' को पहचानते हैं पोषण के अर्थ में। संरक्षण स्रोत को पिता कहते हैं। प्रमाण स्रोत को 'गुरु', जिज्ञासा स्रोत को 'शिष्य' कहते हैं। प्रचलित रूप में कहा जा रहा है कि हमें यंत्रवत रहना है, यांत्रिकता में प्रवीण रहना है। क्या मानव एक यंत्र है? इसका उत्तर देने वाला कोई माई– बाप है? मैं कहता हूँ मानव यंत्र नहीं है। सारे के सारे यंत्रों का रचयिता मानव है। जितने भी अभी तक यंत्र रचे गए हैं सभी यंत्रों का जनक मानव है। इसीलिए यंत्र मानव को पा नहीं सकते मानव से कम ही यंत्र बनता है इसीलिए मानव का अध्ययन यंत्र कर नहीं सकता। दूसरा सभी यंत्र जड़ प्रकृति से बनता है। अभी तक जितने भी यंत्र बनाए हैं पदार्थावस्था की वस्तु से ही बना है। प्राणावस्था की वस्तु से एक भी यंत्र नहीं बना पाए हैं। यह याद रखने की बात है। मानव तो बहुत दूर की बात है। अभी एक भी यंत्र प्राणकोषाओं से नहीं बना पाए हैं और डींग हाँकते हैं कि मानव एक यंत्र है। मानव परंपरा के लिए कहाँ तक उचित होगा। अभ्युदय के अर्थ को कैसे पूरा करेगा। अभी तक इतने गहरे यह बात बैठी है कि मानव एक यंत्र है, भोग के लिए वस्तु है। अब तक ऐसा ही सोचा गया है जबकि ऐसा नहीं है। जब कोई अपने बच्चे के साथ जीता है मैं यंत्र धर्मी नहीं हूँ ऐसा लगता ही है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 57–58)**
- ...जाँचना तुलन से शुरू होता है न्याय सम्मत व्यवहार से शुरू होता है। क्या हम **संबंधों** को समझे हैं या **संबंधों** का हम निर्वाह करते हैं, **संबंधों** में निहित मूल्यों का मूल्यांकन कर पाते हैं, उभय तृप्ति की जगह आ पाते हैं या नहीं आ पाते हैं यह जाँचने का मुद्दा है। यदि ये जाँचना शुरू करते हैं तो प्रिय, हित, लाभ में निश्चयता मिलती नहीं। हमको जो प्रिय लगा आपको ठीक नहीं लगेगा। हमको जो हितकारी लगा आपको नहीं लगेगा जितने लाभ से आप संतुष्ट हुए उसने से हम नहीं होंगे। इसी में सभी मानव फँसे हैं। इस तरह प्रिय में, हित में, लाभ में समानता का आधार नहीं हो सकता। इससे छूटने के लिए क्या किया जाए इस तीन तुलन (प्रिय, हित, लाभ) के बदले दूसरा तूलन (न्याय, धर्म, सत्य) रखा हुआ है। न्याय दृष्टि से जब हम तुलन करने लगते हैं उसे कहते हैं, चिंतन। न्याय हमको संबंधों को व्यवस्था के अर्थ में पहचानने के बाद ही समझ में आता है। **संबंध** पहचानने में आ गया फलस्वरुप मूल्य निर्वाह होने लगा, उसका फलवती स्वरूप है मूल्यांकन हुआ और उभयतृप्ति होने लगी इसका नाम है न्याय। न्याय वही है जो दोनों पक्षों को संतुलित रूप से संतुष्ट कर सके। यदि दोनों पक्ष संतुष्ट नहीं है तो न्याय नहीं है। इस **संबंध** में हमसे कोई पूछा कोई अपराध या गलती करता है उसका क्या किया जाए? अपराध/ गलती कोई इसलिए करता है क्योंकि उसको हम समझदार बनाते नहीं है। आप अपराधी को लेकर क्यों चलते हो, सही आदमी को

लेकर क्यों नहीं चलते हो। बहुत से आदमी ऐसे हैं जो कोई अपराध नहीं करते हैं उनके साथ हमारा कोई समस्या नहीं है। परस्पर हम मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते ही हैं। इसको कैसे भुलाया जाए। एक तो यह प्रमाण आपके सामने है आपको इसकी जरूरत है कि नहीं मैं समझता हूं सभी लोग इसी की बाट देखते बैठे हैं। मुझमें आप में इतना ही अंतर है मैं दर्दवर्ष एक कदम आगे बढ़ गया। मुझको यह चीज हासिल हो गई इसको मैं सत्यापित कर पाता हूँ। समझने के बाद आप भी यही सत्यापित करेंगे। इसमें इतना सुख है, इतना तृप्ति है। इस प्रकार सर्व मानव सत्यापित करने के योग्य हो जाएंगे समझदारी के बाद। समझदारी कहाँ मिलेगा? शिक्षण संस्थाओं में अध्यवसायी विधि से। शिक्षण संस्था क्या है? सभी अभिभावकों की सम्मिलित अभिव्यक्ति है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 68–69)**

- यदि हमारी संप्रेषणा में अगले व्यक्ति को तात्विकता छू गई तो हमारी संप्रेषणा सार्थक है। यदि वही तत्व व्यवहार की सार्थकता को इंगित कराता है (व्यवहार में सार्थकता है, मानव का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व इन चारों को इंगित करा देना) और बोध कराता है तो व्यवहार ज्ञान अनुभव होता है। इसमें तात्विक ज्ञान हो गया। तात्विक ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए, व्यवहार ज्ञान के लिए भी तर्क चाहिए। पहली उपलब्धि यही है अपना मूल्यांकन, परिवारजनों का मूल्यांकन किस आधार पर होगा। मूल्यों के आधार पर, **संबंधों** के आधार पर, उभयतृप्ति के आधार पर। व्यवहार में हम न्यायिक हो गए यही प्रमाणित कर सकते हैं। तब आदमी मानव हो गया। पहले मानव हुआ पर समझदारी के आधार पर स्वायत्त हो गया और छः गुण आ गए:–

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा में संतुलन
4. व्यक्तित्व में संतुलन
5. व्यवहार में सामाजिक
6. व्यवसाय में स्वावलंबी.

ये छह अर्हताएं जब मेरे समझ में आई तब मैं स्वयं को स्वायत्त अनुभव किया हूँ। वैसे ही हम परिवार में अपनी समझदारी, समृद्धि को प्रमाणित करने में समर्थ रहे। इसी सत्यतावश आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। हर व्यक्ति सज्ज्नन बनना चाहता ही होगा, सज्ज्नता के लिए न्यूनतम अर्हता न्याय है। न्याय को जैसा मैं देखता हूँ वह **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन और उभयतृप्ति ही है। इसके बाद हमारे समझ में बात आई है कि हर व्यक्ति जन्म से ही न्याय का याचक है। सही कार्य व्यवहार करना चाहता ही है। सत्य वक्ता होता ही है, इस आधार पर शिक्षा में क्या होना चाहिए? हर मानव संतान को सत्य बोध होना चाहिए, सही कार्य–व्यवहार करने के लिए अभ्यास होना चाहिए, विधि होनी चाहिए, न्याय प्रदायी क्षमता स्थापित होनी चाहिए। तीनों चीजें ही शिक्षा– संस्था में हो सकती हैं। और तब मानव परंपरा परंपरा अपने आप बन जाती है। इससे पहले मानव परंपरा बनेगी नहीं। मानव परंपरा की शुरुआत न्याय से

ही करना पड़ेगा। न्याय के लिए मुख्य मुद्दा है नैसर्गिक **संबंध** जो शाश्वत है एवं मानव **संबंध** निरंतर है। जब मानव कोई गलती कर लेता है तब मार्गदर्शन के लिए कहाँ जाता है? हमने देखा है परिवार में कोई व्यक्ति जो न्याय को स्थापित किया तो वह मार्गदर्शन देगा। परिवार में न हो तो गांव में कोई होगा जो मार्गदर्शन देगा। गांव में भी ना हो तो देश धरती में कोशिश करेगा यह सहज प्रवृत्ति है। यह स्वाभाविक है कि हर मानव में कहीं न कहीं सुधार की प्रवृत्ति है। संसार में परिवर्तन चाह रहे हैं ऐसा तो गवाही हो चुकी है। क्या परिवर्तन चाहिए यह पकड़ में नहीं आता रहा, उसके लिए यह प्रस्ताव है। शिक्षा– संस्कार से ही लोक व्यापारिकरण होगा। शिक्षा में भी मानवीय शिक्षा को प्रावधानित किया आना चाहिए। हर व्यक्ति को न्यायपूर्वक जीकर प्रमाणित होने के लिए हमको समझदारी को देना ही पड़ेगा। इसके लिए शिक्षा में विज्ञान के साथ चैतन्य का भी अध्ययन कराना होगा। चैतन्य को हम समझेंगे नहीं तो अस्तित्व हमको समझ में आ नहीं सकता और अस्तित्व नहीं समझेंगे तो व्यवस्था कैसे समझ में आएगी? अस्तित्व को समझने वाला जीवन (चैतन्य) यही है। इसीलिए चैतन्य वस्तु का भी अध्ययन शिक्षा में समावेश होना जरूरी है। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 70–72)**

- हर मानव अपनी सार्थकता और सफलता को अपनी चाहत में बनाए ही रखता है। हमारी समझदारी है, हमारी नेक चाहत का स्रोत। इस स्रोत को हम कभी भी भुलावा नहीं दे सकते। शुभ हर व्यक्ति को स्वीकार है हर व्यक्ति की चाहत है और हर शुभ घटित होने के लिए इंतजार हम सब कर ही रहे हैं। इंतजार करते समय **संबंध** का मुद्दा आता है। **संबंधों** की पहचान उसमें निहित प्रयोजन (मूल्य) की पहचान ही है। यही अध्ययन है। प्रयोजन पहचानने के बाद मानव स्वभाविक रुप में निष्ठान्वित होता है और फिर पारंगत होता है। पारंगत होने के बाद फलित होता ही है। यही विधि है सफलता की जो काफी सरल है। अभ्युदय सभी **संबंधों** के साथ जुड़ा ही रहता है। **संबंधों** का प्रयोजन अभ्युदय है अर्थात सर्वतोमुखी समाधान और सुख के अर्थ में है। समाधान के अर्थ में हम प्रेम करते हैं, समाधान के अर्थ में हम कृतज्ञ होते हैं, मैत्री करते हैं, विश्वास करते हैं, मानव व्यवहार में प्रशस्त रहते हैं और सुख का अनुभव करते हैं। मूल्यों का स्वरूप बनता है ममता, वात्सल्य, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, गौरवता, प्रेम, श्रद्धा, सम्मान। हमारे अभ्युदय के लिए जहाँ से भी सहायता मिली हो, जिससे भी मिली हो, इसकी स्वीकृति का नाम है "कृतज्ञता"। कृतज्ञता के साथ अन्य मूल्य अपने आप सार्थक होने लगता है। कृतज्ञता के पश्चात स्नेह, प्रेम, विश्वास सार्थक होता है। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता जिससे कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में सहायता न मिली हो। सबकी सहायता के साथ आदमी बड़ा होता है, समर्थ बनता है और प्रमाणित हो जाता है। इस क्रम में जितने भी **संबंध** हैं (सात **संबंध**) उनमें मूल्य ही मूल्यांकित होने पर **संबंधों** की निरंतरता होती है। **संबंधों** में मूल्य मूल्यांकित न होने पर **संबंधों** की निरंतरता होती नहीं है। सामान्य क्रम में भी जिनको हम अपना **संबंधी** मानते हैं उनके साथ अच्छे ढंग से प्रस्तुत होते ही हैं। परंपरागत ढंग से हम **संबंधों** को बल, धन, बुद्धि, आयु के आधार पर पहचानते हैं। जबकि **संबंध** पहले अभ्युदय के अर्थ में हैं, दूसरे पोषण के अर्थ में है, तीसरे संरक्षण के अर्थ में है, चौथे उपयोगिता पूरकता के अर्थ में, पांचवे सदुपयोगिता के अर्थ में, छठवें प्रयोजन के अर्थ में। **संबंधों** के लिए

सर्वोपरि वरीयता प्रमाणिकता के अर्थ में है। प्रमाण के आधार पर हर कोई संतुष्ट होता है। मूल्य जीवन सहज रूप में उद्गमीत होते हैं। जैसे: हम और आप जब मिलते हैं तो स्वाभाविक रूप से मूल्य बहने से हमारे बीच विश्वास मूल्य शुरू हो जाता है। इस विधि से हम **संबंधों** में मूल्यों को पहचानने, मूल्यांकन करने और उभयतृप्ति पाने में सक्षम हो जाते हैं। इससे बड़ा लाभ क्या हो गया? अभी तक भय और प्रलोभन के आधार पर **संबंधों** को पहचानते रहे; उसके स्थान पर मूल्य और मूल्यांकन समाधान समृद्धि की स्थिति में आ जाते हैं। भय और प्रलोभन कोई मूल्य ही नहीं है तो मूल्यांकित क्या होगा? भय के साथ प्रलोभन, प्रलोभन के साथ भय, थोड़ी देर के लिए चुप होने वाली बात है। रोग तो वहीं का वहीं रहता है। न्यायालयों में भी न्याय की बात पूरी हुई नहीं क्योंकि भय और प्रलोभन न्याय का आधार हो ही नहीं सकता। शताब्दियों से भय और प्रलोभन की आधार पर ही एक दूसरे को राजी करते रहे हैं। पर अभी तक कोई व्यवस्था दे ही नहीं पाए। हम इस बात पर सहमत हो पाते हैं कि भय और प्रलोभन कोई मूल्य नहीं है और न ही **संबंधों** में मूल्यांकित हो पाते हैं। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 75–76)**

- मानव अभी तक मूल्यों के पास गया ही नहीं। मूल्यों के पास गया होता तो मूल्य अभिव्यक्त होता, मूल्य प्रमाणित होता, मूल्यांकित होता और स्वाभाविक रूप में न्याय होता। न्यायालयों में फैसला होता है न्याय नहीं। इन फैसलों से एक पक्ष भयवश एक पक्ष प्रलोभनवश सहमत होता है। उभयतृप्ति इसमें कभी हुआ नहीं, हो ही नहीं सकता। न्याय को पाने में हम सर्वथा असमर्थ रहे हैं। उसके बावजूद भी विकास का दावा करते हैं। विकास का क्या अर्थ होता है आप ही सोच लीजिए। भय और प्रलोभन से हर मानव छूटना चाहता है ये नियति सहज है। इससे मानव का भी कल्याण है। नैसर्गिकता का भी कल्याण है। इस तरह प्रयोजन के आधार पर **संबंध** है। प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व है इसके लिए प्रक्रिया है व्यवस्था में जीना। व्यवस्था में जीने का मतलब है कि पाँचों आयामों में भागीदारी करना। पाँच आयाम है: 1.शिक्षा संस्कार, 2. न्याय– सुरक्षा, 3. स्वास्थ्य– संयम, 4. उत्पादन– कार्य, 5. विनिमय– कोष। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 76–77)**
- स्वत्व क्या है? स्व स्थिति रूप में और त्वगति रूप में स्पष्ट है 'स्वत्व' मानवीयता पूर्ण आचरण। मानवीयता में मूल्य, चरित्र और नैतिकता है। मूल्य का प्रमाण है **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन उभयतृप्ति। जो परिवार में होना ही है। उभयतृप्ति से कम में कोई परिवार है नहीं उससे ज्यादा की जरूरत नहीं है यही मानवत्व है। यह घटित होने के लिए स्वयं स्फूर्त विधि से आदमी मूल्यों में जिएगा। व्यवस्था में जीने से चरित्र की बात आएगी।**(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 79)**
- यह जीवन प्रकाशन है। न्याय कहाँ से समझ में आता है **संबंध** के आधार पर, धर्म कहाँ से आता है व्यवस्था से, सत्य कहाँ से आता है अस्तित्व से। सह– अस्तित्व नित्य प्रभावी है, सह–अस्तित्व के ढंग से। मानव को छोड़कर शेष तीनों अवस्थाओं के संपूर्ण वैभव व्यवस्था में ही हैं। **(अध्याय:3, पृष्ठ नंबर: 85)**
- दूसरा– मूल्य बहते हैं **संबंधों** की पहचान से। **संबंधों** की पहचान, मूल्यांकन, उभयतृप्ति मिलने पर मूल्यों का निर्वाह हुआ ऐसा समझा हूँ। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 89)**

- ...आस्वादन में जब मूल्यों का सुख होने लगता है उन मूल्यों में से मानव के साथ प्रेम, विश्वास, स्नेह, कृतज्ञता, वात्सल्य.... ये सब नाम दिया। सार्थकता के साथ **संबंध** को हम जब पहचानते हैं तो ऐसे मूल्य अपने आप जीवन में से निकलने लगते हैं। इसका उदाहरण जब माँ अपने बच्चे को पहचान लेती है तब ममता अपने आप उमड़ने लगती है। इसके लिए कोई पंचवर्षीय योजना की जरूरत नहीं पड़ती। मूल्य खोजने या इकट्ठा करने की जरूरत नहीं है। मूल्य जीवन में भरे हैं वह **संबंधों** को पहचानने से नियोजित होंगे। **संबंधों** की पहचान परिवार के अर्थ में है, समाज के अर्थ में है, व्यवस्था के अर्थ में है और सह–अस्तित्व के अर्थ में है यह चारों प्रकार से **संबंध** का खूँटा बना ही हुआ है। हमको पारंगत होने की जरूरत है। जितने हम पारंगत होते हैं उतने ही विशाल रूप में हम अपने को प्रमाण प्रस्तुत करने में, सार्थकता प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार मूल्यों का आस्वादन करने लगते हैं। जीवन अपने निष्पन्न मूल्यों का मूल्यांकन करता ही है। वस्तु मूल्य सब जगह फैला है जबकि जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य हमारे में (जीवन में) ही है और जीवन अपने से इनका मूल्यांकन करता है कितना सहज कार्य है कितना महिमा पूर्ण है। इसके लिए कहीं बाहर से संयंत्र लगाने की जरूरत नहीं है। स्वयं को, स्वयं से, स्वयं के लिए परीक्षण करने की बात है। इसकी सबको जरूरत है। इसकी संभावना को सर्वसुलभ बनाने में विधि की बात आती है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय के मुद्दे पर ही शिक्षा संस्कार कार्य संपादित होता है। जब या विधिवत संपादित होता है जीवन जागृत हो जाता है फलस्वरुप संबंधों को पहचानने में समर्थ हो जाता है। संबंधों को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानता है आदमी सुखी हो जाता है। इस विधि से हम आस्वादन तक पहुँचे। फिर आता है तुलन। प्रिय, हित, लाभ विधि से तुलन जीव जानवर करते हैं मानव की तुलन विधि है न्याय, धर्म, सत्य। ये ध्रुव बिंदु है इसे पकड़ने की, स्वीकारने की आवश्यकता है। जैसे ही से हम स्वीकारते हैं तो हमारा प्रयत्न इस दिशा में होता है। अभी तक शिक्षा, संस्कार, जो भी मानव ने किया संवेदनाओं के आधार पर किया और पूरा पड़ा नहीं इसीलिए परंपरा बनी नहीं। इसीलिए तुलन में से प्रिय, हित, लाभ को न्याय, धर्म, सत्य में विलय करने की आवश्यकता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 98–99)**
- प्रश्न: आप दिल्ली में भारत के चीफ जस्टिस वेंकट चलैय्या जी से मिले थे और सार्वभौम न्याय के बारे में उनसे पूछा था जिसका उत्तर उनके पास नहीं था। भारत में न्याय अलग, पाकिस्तान में न्याय अलग। भारत में ही हिंदू के लिए अलग न्याय और मुस्लिम के लिए अलग न्याय इस तरह न्याय के बारे में बहुत भ्रम है। आपने कहा न्याय परिवार में प्रमाणित होता है जबकि हम सोचते हैं न्याय अदालत में होता है स्पष्ट करें।

  उत्तर: सूत्र रूप में कहा गया है "**संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन उभयतृप्ति" यही न्याय है। **संबंध** का मूल्यांकन होना, उभयतृप्ति होना बहुत जरूरी है। मनुष्य के साथ जड़ चैतन्य का **संबंध** रहता ही है। चाहे आप नकारो चाहे स्वीकारो। जैसे हवा के साथ **संबंध**। नैसर्गिकता के साथ **संबंध** न रहे, मानव के साथ **संबंध** न रहे ऐसा कुछ आप बना नहीं सकते। यह सब मानव परिवार में ही मिलता है। जबकि न्यायालय में फैसला होता है, न्याय नहीं। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 105)**

- ...व्यवहारात्मक जनवाद की बात है। मनुष्य सुखी होना चाहता है और समाधान = सुख, समस्या = दुख। समाधान चाहिए ही चाहिए, समाधान कैसा होगा? व्यवहार से होगा। कैसे होगा? **संबंध**, मूल्य मूल्यांकन और उभयतृप्ति से समाधानित होंगे। यदि हम **संबंधों** को पहचानते नहीं हैं तब भी समस्या से ग्रसित रहते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते नहीं **संबंधों** के अनुरूप तब भी हम समस्या से ग्रसित रहते हैं। ये (**संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति) चारों होने पर समाधान होता है। इस ढंग से यह चारों एक दूसरे से जुड़ने पर चारों समस्याओं के बदले एक समाधान होता है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 113)**
- ...व्यवहार हम दो स्थितियों में ही करते हैं एक नैसर्गिक **संबंध** एवं एक मानव **संबंध**। नैसर्गिक **संबंधों** में हम कितने भी व्यवहार करेंगे, नियम, नियंत्रण, संतुलन के अर्थ में करेंगे उससे हम समाधान पाते हैं नहीं तो समस्या से ग्रसित होते ही हैं, जैसा अभी ग्रसित हो चुके हैं। हम बिना सूझ–बूझ के कुछ भी प्रौद्योगिक कर्म किए हैं, धरती का पेट फाड़ा फलस्वरुप कष्टग्रस्त हैं ही। इन समस्याओं के कारण मानव इस धरती पर रहेगा, नहीं रहेगा यह प्रश्न चिन्ह बन चुका है? मेरे देखने के अनुसार हर मानव, हर स्थिति, हर गति में समाधान हो सकता है यही व्यवहारात्मक जनवाद में प्रतिपादन की बात है। इसका सार बिंदु यही है संबंध, मूल्य, मूल्यांकन उभयतृप्ति। इसी के चलते सर्वतोमुखी समाधान हमें मिलता है। आर्थिक समाधान मिलता है, आवर्तनशील विधि से। सांस्कृतिक विधि मिलता है मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान से। मनुष्य ज्ञानवस्था की इकाई है वह संज्ञानशीलता से ही अपने आप को प्रमाणित कर पाता है। संबंध होना वर्तमान में विश्वास होना। व्यवस्था में जीना और सह–अस्तित्व को प्रमाणित करना। इस ढंग से व्यवहारात्मक जनवाद सर्वतोमुखी समाधान के अर्थ में प्रतिपादित है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 113– 114)**
- ...**संबंधों** में मूल्यांकन करना और फलस्वरूप उभयतृप्ति होना ही मूल्य है। **(अध्याय:4, पृष्ठ नंबर: 118)**

****

संदर्भ: विकल्प एवं अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- 19. मानवीय मूल्य = धीरता, वीरता, उदारता, दया कृपा करुणा एवं मानव लक्ष्य – समाधान समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास चारों अवस्थाओं के साथ) वर्तमान होना प्रस्तावित है।

  मानव संस्कृति, सभ्यता विधि, व्यवस्था सहज प्रमाण वर्तमान होना प्रस्तावित है यही सहअस्तित्व है।

  स्थापित मूल्य – परस्पर **संबंधों** की पहचान, **संबंधों** में मूल्यों का निर्वाह होना ही संस्कृति नित्य उत्सव सहज वैभव अखण्ड समाज सूत्र व्याख्या सहज प्रमाण वर्तमान होना प्रस्तावित है।

  शिष्ट मूल्यों के साथ वस्तुओं का आदान, प्रदान, अर्पण, समर्पण क्रिया कलाप रुप में नित्य उत्सव होना ही मानव चेतना सहज वैभव है। यह भी प्रस्तावित है।

  मानव चेतना ही व्यवहार में मानवत्व है। आचरण में नियम है। (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 7)

- मानवीयतापूर्ण आचरण–

  ○ स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष दयापूर्ण कार्य व्यवहार

  ○ **संबंध** मूल्य मूल्यांकन उभय तृप्ति

  ○ तन मन धन रुपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 8)

•

जीवन

जागृत जीवन की दस क्रियायें

प्रत्यावर्तन परावर्तन

	जीवन बल	क्रिया	क्रिया	जीवन शक्ति
1.	आत्मा	अनुभव	प्रमाणिकता	प्रमाण
2.	बुद्धि	बोध	संकल्प	ऋतम्भरा
3.	चित्त	चिन्तन	चित्रण	इच्छा
4.	वृत्ति	तुलन	विश्लेषण	विचार
5.	मन	आस्वादन (मूल्यों का)	चयन (संबंधों की पहचान)	आशा

↓

सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी ← **समाधान, समृद्धि संपन्न परिवार फलतः** → **अखण्ड समाज में भागीदारी**

(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 19)

- (22) **मानव संबंध, नैसर्गिक संबंधों का बोध कराने का कार्यक्रम।**

प्रधानत: मानव संबंध	– सात
नैसर्गिक संबंध	– तीन
मानव संबंध	**नैसर्गिक संबंध**
1. माता–पिता/ पुत्र–पुत्री	1. जीवावस्था के साथ
2. भाई–बहन	2. प्राणावस्था के साथ
3. गुरु–शिष्य	3. पदार्थावस्था के साथ
4. साथी–सहयोगी	
5. मित्र–मित्र	
6. पति–पत्नी	
7. व्यवस्था संबंध	

(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 21)

- (23) **संबंधों में निहित आशय मूल्यों का निर्वाह**

सात संबंध	**क्रिया**
माता–पिता	पोषण–संरक्षण
भाई–बहन	परस्पर अभ्युदय संयोग (सहयोग)
मित्र–मित्र	परस्पर पूरक
गुरु–शिष्य	प्रामाणिक–जिज्ञासु
साथी–सहयोगी	दायित्व–कर्तव्य
पुत्र–पुत्री	अभ्युदय, उपयोगिता, पूरकता
पति–पत्नी	यतीत्व, सतीत्व
व्यवस्था	भागीदारी

(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 21–22)

(24) **नैसर्गिक संबंधों में नियम, नियंत्रण, संतुलन का बोध (अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 22)**

(25) **मानव संबंधों में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य सहज बोध सहित –**

जीवन मूल्य	–	चार
मानव मूल्य	–	छह
स्थापित मूल्य	–	नौ
शिष्ट मूल्य	–	नौ
वस्तु (उत्पादित) मूल्य	–	दो

का पूर्ण अध्ययन एवं बोध। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 22)**

- **मानवीय चेतना संपन्न मानव संबंध में स्थापित व शिष्ट मूल्य निम्न है:–**

स्थापित मूल्य	**शिष्ट मूल्य**
(1) कृत्तज्ञता – प्राप्त सहायता उपकार के प्रति स्वीकृति प्रसन्नता व निरंतरता की स्वीकृति	(1) सौम्यता – स्वयं स्फूर्त प्रणाली, पद्धति से स्वयं का नियंत्रण
(2) गौरव – विकसित (जागृत) को पहचान एवं उनके अनुरूप रहित होने में उत्साह और निरंतरता	(2) सरलता – ग्रंथि (तनाव) अंगहार एवं उसका प्रकाशन
(3) श्रद्धा – प्रामाणिकता, श्रेष्ठता की ओर प्रवृत्ति एवं संकल्प सहित गति	(3) पूज्यता– गुणात्मक परिवर्तन के लिए सक्रियता
(4) प्रेम – पूर्णता सहज प्रमाण; दया कृपा करूणा की संयुक्त अभिव्यक्ति। पूर्णता में नित्य रति, पूर्णता की सहज निरंतरता	(4) अनन्यता – जागृति पूर्णता के लिए योग्य पहचान, प्रमाण सहज निरंतरता
(5) विश्वास – संबंध निर्वाह निरंतरता सहित मूल्यों के निर्वाह की निरंतरता	(5) सौजन्यता–सहकारिता, सहयोगिता, पूरकता, उपयोगिता
(6) वात्सल्य – अभ्युदय सर्वतोमुखी समाधान के अर्थ में पोषण संरक्षण	(6) सहजता – यथास्थिति सहज स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, उत्पादन में स्वावलंबन प्रमाण निरंतरता
(7) ममता – स्वयं में, से, प्रतिरूपता सहज स्वीकृति, उत्सव निरंतरता	(7) उदारता – प्रतिफलापेक्षा विहीन कर्तव्य दायित्व वहन, तन मन धन अर्पण
(8) सम्मान – व्यक्तित्व एवंप्रतिभा में श्रेष्ठता सहज	(8) सौहाद्रता – स्पष्टता से मूल्यांकन, क्रियाकलाप में

प्रमाण का पहचान, स्वीकृति – प्रमाणित होने की प्रवृत्ति	स्पष्टता, सार्थकता
(9) स्नेह – संतुष्टि प्रसन्नता, उत्सव में, से, के लिए स्वयंस्फूर्त मिलन सान्निध्य की निरंतरता	(9) निष्ठा – मानवीयता पूर्ण विचार व्यवहार में निरंतरता, मानवीयता सहित व्यवस्था सहज वर्तमान

सभी संबंधों का निर्वाह ही व्यवस्था है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा सहज प्रकाशन = भाषा भाव मुद्रा अंगहार प्रक्रिया सहित संप्रेषणा = सटीक भाषा (अर्थ संगत) = चित्र लेख रूप में = स्वीकृत संप्रेषणा = अभिव्यक्ति = संबंधों का निर्वाह सहज प्रमाण। किशोरावस्था तक पहचान संबोधन और दस वर्ष के पश्चात् समझ सहित निर्वाह

परस्परता में अपेक्षा – आवश्यकता। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 22–23)**

- (28) संबंध निर्वाह मूल्य

1. **माता–पिता के साथ संतान का संबंध**

   विश्वास निर्वाह और उसकी निरंतरता; गौरव, कृतज्ञता, प्रेम पूर्वक,

   सरलता, सौम्यता , अनन्यता भाव विधि सहित वस्तु सेवा

   समर्पण समेत तृप्ति – समाधान प्रमाण वर्तमान होना।

2. **पुत्र–पुत्री (संतान का) के साथ माता–पिता अभिभावक – विश्वास निर्वाह की निरंतरता**

   ममता, वात्सल्य, प्रेम, उदारता, सहजता, अनन्यता भाव

   वस्तु सेवा समर्पण के रूप में वर्तमान होना।

3. **भाई–बहन संबंध में विश्वास निर्वाह की निरंतरता**

   सम्मान, गौरव, कृतज्ञता, प्रेम, सौहाद्रता, सरलता, सौजन्यता, अनन्यता भाव पूर्वक वस्तु सेवा समर्पण के रूप में है।

4. **गुरु शिष्य के साथ विश्वास निर्वाह की निरंतरता**

प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनन्यता, सहजता, उदारता भाव पूर्वक वस्तु सेवा समर्पण के रूप में वर्तमान

5. **शिष्य गुरु के साथ विश्वास निर्वाह की निरंतरता**

गौरव, कृतज्ञता, सम्मान, प्रेम, सरलता, सौजन्यता, सहजता, अनन्यता भाव पूर्वक जिज्ञासा सहित वस्तु और सेवा का अर्पण–समर्पण रूप में है।

6. पति–पत्नी के परस्परता में विश्वास निर्वाह की निरंतरता

स्नेह, गौरव, सम्मान, प्रेम, निष्ठा, सरलता, सौहाद्रता, अनन्यता भाव पूर्वक वस्तु सेवा समर्पण के रूप में।

7. साथी सहयोगी के साथ विश्वास निर्वाह की निरंतरता

स्नेह, ममता, दया, सहज निष्ठा, उदारता, दायित्व का कर्तव्य सहित वस्तु व सेवा प्रदान करने के रूप में।

8. सहयोगी साथी के साथ विश्वास निर्वाह की निरंतरता

गौरव, सम्मान, कृत्तज्ञता, सहजता, सरलता, सौहाद्रता, सौजन्यता भाव सहित सेवा समर्पण के रूप में है।

9. मित्र–मित्र के साथ विश्वास निर्वाह की निरंतरता

स्नेह, सम्मान, प्रेमपूर्वक निष्ठा, सौहाद्रता, अनन्यता भाव सहित वस्तु व सेवा समर्पण अर्पण के रूप में।

10. परिवार व्यवस्था में विश्वास निर्वाह की निरंतरता –

मानवीयता पूर्ण आचरण सहित संबंधों का निर्वाह समेत किया गया व्यवहार कार्य – परिवार में, से, के लिए पोषण, संरक्षण समाज गति के लिए आवश्यकता से अधिक उत्पादन संपन्नता उपयोग–सदुपयोग प्रयोजन पूर्वक व्यवस्था प्रमाण वर्तमान – वैभव है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 24–25)**

- 39–2 (4) अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन पूर्वक सह अस्तित्ववादी व्यवस्था विधि से

मोहल्ला, ग्राम परिवार सभा

दस परिवार समूह सभा में से प्रत्येक सभा सदस्यों का संयुक्त सत्यापन

प्रत्येक समिति सदस्यों का संयुक्त सत्यापन और ग्राम मोहल्ला समिति स्वयं आवश्यकता अनुसार परीक्षण निरीक्षण पूर्वक –

सौ परिवारों में – समझदारी सम्पन्नता सहज यथास्थिति समझदारी ज्ञान सहज रूप में, ईमानदारी सहज यथास्थिति को विवेक व विज्ञान सहज रूप में, जिम्मेदारी सहज यथास्थिति में मानव **संबंधों** का पहचान

नैसर्गिक **संबंध** का पहचान, सहज रूप में भागीदारी सहज यथा स्थिति को मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी, उपयोगिता, पूरकता सहज रूप में **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 31)**

- 19. उभय तृप्ति :–कम से कम दो या दो से अधिक संबंधों में मूल्यों का निर्वाह मूल्यांकन उभयतृप्ति। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 38)**
- 55.न्याय :–**संबंध**–मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति व निरन्तरता। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 41)**
- 69.भय :– जीव चेतना वश **संबंधों** में विश्वास नहीं हो पाना और प्रमाणित नहीं हो पाना। अपेक्षा बना रहना। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 42)**
- 96.व्यवहाराभ्यास :–**संबंधों** के साथ समाधान, समृद्धि पूर्वक मूल्यों चरित्र नैतिकता सहित जीने का अभ्यास। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 45)**
- 99.व्यवहारवाद :– **संबंध**, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति, स्वधन स्वनारी–स्वपुरूष दयापूर्ण कार्य व्यवहार तन–मन–धन रुपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा संबंधी तर्क प्रयोजन सहित क्रियान्वयन के लिए आवश्यक अध्ययन और वार्तालाप। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 45)**
- 101. **संबंध** :–
  (i) शरीर संबंध
  (ii) मानव संबंध
  (iii) शिक्षा संबंध
  (iv) व्यवस्था संबंध
  (v) उत्पादन संबंध
  (vi) विनिमय संबंध
  (vii) नैसर्गिक संबंध

(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 46)

संदर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- 5.31 परस्पर पहचान सम्बन्ध व मूल्य का निर्वाह, जागृति का द्योतक है । (**अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 34**)
- 6.29 जागृत परम्परा में हर नर–नारी स्वयं में समग्र अस्तित्व में, परस्पर मानव **संबंधों** में और मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ व्यवस्था सूत्र के आधार पर विश्वास ही स्वयं में विश्वास है। (**अध्याय:6, पृष्ठ नंबर: 43**)
- 13.38 मानवत्व ही परस्परता में **संबंध** व सम्मान का आधार है। (**अध्याय: 13, पृष्ठ नंबर:79**)
- 13.83 जानना मानना सम्बन्ध में मूल्य निर्वाह

  मानना जानना मूल्यांकन

  पहचानना............उभय तृप्ति सन्तुलन

  निर्वाह जीवन्त......नियंत्रण (**अध्याय: 13, पृष्ठ नंबर: 84**)
- 14.70 **संबंधों** को जानना, पहचानना, निर्वाह करना मानवत्व है। (**अध्याय:14, पृष्ठ नंबर:94**)
- 14.71 ज्ञान–विज्ञान–विवेकपूर्वक **सम्बन्धों** में, से, के लिये जानने–मानने पहचानने निर्वाह करने के रूप में संकल्पित होना ही अनुबन्ध है। यह मानवत्व है। (**अध्याय:14, पृष्ठ नंबर:94**)
- 14.72 **सम्बन्ध** नित्य वर्तमान, वर्तमान अस्तित्व, अस्तित्व सह–अस्तित्व, सह अस्तित्व वैभव, वैभव यथा स्थिति गति, स्थिति गति समझदारी वस्तु व प्रयोजन यही सम्बन्ध ज्ञान–विज्ञान–विवेक सम्पन्नता है। यह मानवत्व है। (**अध्याय:14, पृष्ठ नंबर:95**)

संदर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- स्वयं को कैसे जाँचे?

प्रश्न: अध्ययन में स्वयं को जाँचने की बात रहती है। स्वयं को हम कैसे जाँचे?

उत्तर: यह तीन बिंदुओं में होता है।

(1) क्या यह प्रस्ताव मुझे से जुड़ा है? या नहीं? क्या इसको मैं समझा हूँ या नहीं?

(2) क्या इस प्रस्ताव को प्रमाणित करने के लिए मैं सहमत हूँ या नहीं?

(3) क्या इस प्रस्ताव को मैं प्रमाणित कर पा रहा हूँ या नहीं? प्रस्ताव के अनुसार आचरण कर रहा हूँ कि नहीं? जैसे सहअस्तित्व का प्रस्ताव। क्या मुझे सहअस्तित्व समझ में आया? मैं सह अस्तित्व से कैसे जुड़ा हूँ? यह अपने को जाँचने का पहला मुद्दा है। दूसरा क्या मैं सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए सहमत हूँ? तीसरा मैं सहअस्तित्व के प्रस्ताव को कहाँ तक प्रमाणित कर पा रहा हूँ?

दूसरा उदाहरण: संतान के साथ **संबंध**। क्या मुझे संतान के साथ **संबंध** समझ में आया? मैं अपनी संतान के साथ कैसे संबंधित हूं? दूसरा क्या मैं अपनी संतान के साथ **संबंध** को प्रमाणित करने के लिए सहमत हूँ? तीसरा क्या मैं अपनी संतान के साथ **संबंध** प्रमाणित कर पा रहा हूँ? स्वयं को जाँचने से ही अध्ययन सफल होता है। मध्यस्थ दर्शन से स्वयं को जाँचने का एक ठोस आधार मिल गया है। (बंगलोर, जून 2008) **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:18-19)**

- परस्पर पहचान होना प्रकाशन का मतलब है।

हर वस्तु के सभी और उसका प्रतिबिंब रहता है। क्योंकि हर वस्तु सीमित होता है। सीमित होने के आधार पर ही "एक" के रूप में गण्य होता है। इस ढंग से हरेक का प्रतिबिंब उसके सभी और होता है। इसका प्रमाण एक दूसरे को पहचानना ही है। उसके बाद गणित करना भी प्रमाण है। जैसे हमारे सामने यह धान का ढेर है। धान का ढेर हमारे ऊपर प्रतिबिंब रहता ही है। एक एक धान को भी मैं गिन सकता हूँ। उसके बाद किसी नाप से इसको नाप कर गणना भी कर सकता हूँ। किसी तराजू में तौल कर भी गणना कर सकता हूँ। यदि या प्रतिबिंबित नहीं होता तो मैं गणना कैसे करता? परस्पर पहचान होना ही गणना का आधार है। परस्पर पहचान होना ही **संबंध** को पहचानने का आधार है। उसके साथ फिर कार्य व्यवहार करने का आधार भी प्रतिबिंबन ही है। प्रतिबिंब न हो, तो हम अपने कार्य व्यवहार का निश्चय कर ही नहीं सकते। जैसे अभी यह धूलि ऊपर से गिरा उसको मैं हाथ से हटा दिया। यदि धूलि को मैं पहचानता नहीं हूँ तो मैं ऐसा नहीं कर सकता था। यह प्राकृतिक नियम है।

इस तरह परस्पर पहचान होना प्रकाशन का मतलब है।

हर वस्तु प्रकाशमान है प्रतिबिम्बन के रूप में। हरेक एक सभी ओर से दिखता है, उनका होना समझ में आता है। "होना" समझ में आना ही बिंब के साथ **संबंध** का पहचान और उसके साथ कार्य व्यवहार का निश्चयन है। इस तरह एक दूसरे को पहचानने की व्यवस्था प्राकृतिक रूप में बना ही है।....**(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:26-27)**

- प्रश्न: जब मैं बैंगलोर चला जाता हूँ, तो इस प्रतिबिम्बन प्रक्रिया का क्या होता है?

जब आप बैंगलोर चले जाते हैं, तो यह सब मेरी स्मृति में रहता ही है। आपका प्रतिबिम्बन मेरी स्मृति में रहता है, और मेरा प्रतिबिम्बन आपकी स्मृति में रहता है। उस स्मृति को हम समय–समय पर उपयोग करते हैं। अभी जैसे कई लोगों के साथ अपनी पहचान की स्मृतियों को आपको मैंने बताया। एक डाकू से लेकर, एक शंकराचार्य तक की स्मृतियों को मैंने आपको बताया है। बंगलोर जाने के बाद जब आपके साथ मेरी फ़ोन पर बात होती है, तो पीछे वाली सारी स्मृतियाँ आ जाती हैं। उसके तारतम्य में मैं आपकी बात सुनता हूँ। जो मैं सुनता हूँ, वह पुनः स्मृति में जाता है। आप बताईये इसमें छूटा हुआ कुछ कहाँ है? **सम्बन्ध** में काटने की जगह ही नहीं है। इसको काटने वाली कोई वस्तु ही नहीं है अस्तित्व में। यही **सम्बन्ध** का मतलब है। **सम्बन्ध** में दूरी कोई बाधा नहीं है। पास में आने से बहुत कुछ सफल हो गए, ऐसा भी नहीं है। पास में भी **सम्बन्ध** का निर्वाह है, दूर में भी **सम्बन्ध** का निर्वाह है। "दूर" का कोई मतलब ही नहीं है। जड़ वस्तु पर प्रतिबिम्बन ससम्मुखता के साथ ही रहता है। अपारदर्शक वस्तु बीच में होने पर प्रतिबिम्बन अपारदर्शक वस्तु पर हो जाता है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:29)**

- प्रश्नः पानी को अभी हम जीव चेतना में पहचानते हैं,क्या इसका मतलब है क्या हमको पानी का साक्षात्कार हुआ है?

उत्तरः नहीं। जीव चेतना में पानी को मानव उसे अपने लिए उपयोग के अर्थ में ही पहचानता है। जीव चेतना में मानव पानी के साथ अपने **सम्बन्ध**, पानी के स्वभाव और धर्म को नहीं पहचानता। यही कारण है मानव जीव चेतना में जीते हुए पानी के साथ अपने कर्तव्य को नहीं निभा पाता। समझदारी के बाद मानव को पानी के साथ अपने कर्तव्य का बोध होता है। पानी को संरक्षित करने का दायित्व निर्वाह समझदारी के बाद ही होता है।
(जनवरी 2007, अमरकंटक) **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 52–53)**

- प्रश्न: व्यवहार की सीमा क्या है?

उत्तर: व्यवहार की सीमा है **संबंध**। **संबंधों** में न्याय प्रमाणित होना। **संबंध** का प्रयोजन के आधार पर पहचान हो जाना, उसकी ईमानदारी के साथ निर्वाह होना, परस्पर मूल्यों की अनुभूति होना, परस्परता में उनका मूल्यांकन होना फलन में उभय तृप्ति होना। व्यवहार में उभयतृप्ति ही मापदंड है। नियति विधि वैभव = न्याय।
संबंध नियति विधि से होते हैं। **संबंध** को आदमी पैदा नहीं करता। आदमी केवल **संबंधों** को पहचान सकता है। न्याय में "**संबंधों** की पहचान" के बारे में कहा है। "**संबंधों** का निर्माण" नहीं कहा है। "**संबंधों** को प्रयोजन के रूप में पहचाना वहां से न्याय का शुरुआत होता है। प्रयोजन = सह–अस्तित्व में प्रमाण। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 63)**

- जीने दो, जियो

मानव को चारों अवस्थाओं के साथ संतुलित रहने के लिए आवश्यक नियम है – "जीने दो, जियो"।
इसी क्रम में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित होता है।
ज्ञान–अवस्था (मानव) के साथ सम्बन्ध में "जीने देने" का मतलब है – न्याय। न्याय पूर्वक ही मानव **संबंधों** में संतुलन प्रमाणित होता है। न्याय का मतलब है – मानव **संबंधों** में प्रयोजनों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, और उभय–तृप्ति। इस तरह जीने देने पर ही मानव अपने जीने का प्रमाण प्रस्तुत कर पाता है।

जीव–अवस्था के साथ **सम्बन्ध** में "जीने देने" का मतलब है – जीवों के "जीने की चाहना" धर्म के प्रमाणित होने में पूरक होना, उसमें हस्तक्षेप नहीं करना।

वनस्पति–संसार, रसायन–संसार, और भौतिक संसार के साथ सम्बन्ध में "जीने देने" का मतलब है – उनको "रहने देना"। उनकी प्राकृतिक व्यवस्था में पूरक होना।

इसके विपरीत भौतिकवाद का प्रतिपादन है – "अति बलवान को ही जीने का अधिकार है।" (survival of the fittest) मतलब – सबको खा पी कर हज़म करो! मध्यस्थ–दर्शन के "जीने दो, जियो" और भौतिकवाद के इस प्रतिपादन में कितना दूरी है? – आप ही तय करो! आप मेरे कहने पर कुछ करो – ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। मैं केवल अपराध–मुक्त जीने का रास्ता बताता हूँ। आपको अपराध में ही जीना है तो उसका तो पूरा दूकान ही खुला है! धरती बीमार होने से यह बात तो उजागर हो गयी है कि धरती के साथ मानव द्वारा ज्यादती हुई है। यह तो अब सामान्य आदमी को भी पता चल गया है।

(अप्रैल २००८, अमरकंटक) (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 141**)

- पहचान और निर्वाह

हर वस्तु अनंत कोण संपन्न है। हर वस्तु हर कोण से दिखता है। हर वस्तु किसी न किसी कोण से दूसरे वस्तु से जुड़ा ही रहता है। इस तरह हर वस्तु दूसरे पर प्रतिबिंबित है। हर वस्तु नियति क्रम में अपनी अवस्थिति के अनुसार दूसरे वस्तु के साथ अपने **सम्बन्ध** को पहचानता है और निर्वाह करता है।

मनुष्य जो **सम्बन्ध** समझ में आ गया – उसको वह पहचानता है, और निर्वाह करता है। **सम्बन्ध** जो समझ में नहीं आया, उसको न वह पहचानता है – न निर्वाह करता है। मानव को चारों अवस्थाओं के साथ अपने **सम्बन्ध** को पहचानने की ज़रूरत है, तभी वह भ्रम और अपराध से मुक्त हो पाता है। मानव जब भ्रम और अपराध से मुक्त होता है तभी धरती अपने आप को स्वस्थ कर सकती है। अपराध करते रहेंगे तो धरती पर आदमी जात तो नहीं रहेगा।

– अप्रैल २००८, अमरकंटक (**अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 150**)

- मूल्य, चरित्र, नैतिकता को कैसे समझा जाए?

मूल्य का प्रमाण **संबंधों** में होता है। मनुष्य में कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता के रहते **संबंधों** को पहचानने की क्षमता, **संबंधों** को पहचानने की व्यवस्था रखी है। इस व्यवस्था के आधार पर ही हम **संबंधों** को पहचानते हैं। इसी क्रम में मानव के सम्बन्ध को पत्थर से, लोहे से, वनस्पतियों से, और जीवों से पहचानते हैं। मानव के साथ **संबंधों** के अलग–अलग नाम हो गए। मानवों का **सम्बन्ध** एक ही स्वरूप में नहीं है। अनेक स्वरूप में है – जैसे, माता–पिता के रूप में, भाई–बहन के रूप में, गुरु–शिष्य के रूप में, पुत्र–पुत्री के रूप में। **संबंधों** के नाम तो हम पा गए हैं। इन **संबंधों** के नाम के अनुसार प्रयोजनों को नहीं पहचाने। जैसे – माता–पिता के साथ **सम्बन्ध** का प्रयोजन है: पुष्टि –संरक्षण सहित व्यवस्था का प्रमाण। शरीर में शरीर पुष्टि, और जीवन में ज्ञान पुष्टि, विवेक पुष्टि। दोनों तरह से पुष्टि मिले, उसके बाद व्यवस्था में जीना। व्यवस्था में जीना तब हुआ – जब **संबंधों** को पहचाना, और मूल्यों का निर्वाह किया।

मूल्य क्या है? साम्य मूल्य है – विश्वास। **संबंधों** की निरंतरता हम बना कर रखते हैं – तो विश्वास का हम निर्वाह किए। **संबंधों** को हम निरंतरता नहीं दे पाते हैं – तो विश्वास का हम निर्वाह नहीं कर पाये। अब इसका आप अपने–अपने में शोध कर सकते हैं। जिसको हमने मित्र रूप में पहचाना, क्या वह सदा–सदा मित्र रूप में रहा? जो हम माता–पिता को पहचाना – क्या सदा–सदा उसकी निरंतरता रही? भाई को जो पहचाना – क्या सदा हम भाई के साथ भाई के रूप में

जी पाये? इसको निरीक्षण कर सकते हैं, परीक्षण कर सकते हैं, शोध कर सकते हैं। मध्यस्थ –दर्शन पर आधारित शिक्षा की पहली देन यही है।

संबंधों की पहचान
मूल्यों का निर्वाह
मूल्यांकन
उभय तृप्ति
इससे किसको आपत्ति है – बताइये ? ७०० करोड़ आदमी के सामने इस बात का आपत्ति होना बहुत मुश्किल है।
(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 162–163)

- मानवीयता पूर्ण आचरण ही क्यों? ऐसे ही क्यों जीना है? – परिवार में जीना ही है। ये सब **सम्बन्ध** का निर्वाह करना ही है। क्योंकि इनको छोड़ कर सुखी होने का कोई प्रमाण नहीं है। परिवार के बाद, अखंड–समाज में जीना ही है। इसी क्रम में व्यवस्था में जीना ही है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 164)**

- प्रश्न: आप कहते हैं – "समझ के करो!" हम जब इस प्रस्ताव को "समझने" के क्रम में हैं, उस दौरान अपने "करने" का क्या किया जाए?

उत्तर: अनुभव के लिए समझना है। अनुभव के बाद "समझ के करना" ही होता है। "समझने" की अन्तिम–बात अनुभव में है। अनुभव से कम दाम में किसी भी मुद्दे में संतुष्टि नहीं होता – न किसी **सम्बन्ध** में, न मूल्यों में, न लेन–देन में। तब तक "करने" के लिए बताया है – अनुकरण। अपने जीने के डिजाईन में अनुकरण विधि से आप परिवर्तन कर सकते हैं। जैसे मैं समाधान–समृद्धि पूर्वक जीता हूँ। आप उसको अनुकरण कर सकते हैं। यदि ऐसा कर पाते हैं, तो अपने लिए काफी सहूलियत हो गयी। हर दिन अपने वातावरण में कमियों के प्रति शर्मिंदा होने के स्थान पर आगे अनुभव के लिए हम प्रयत्न कर सकते हैं। ऐसा अनुकरण अध्ययन के लिए सहायक है।
(सितम्बर २००९, अमरकंटक) **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 200–201)**

- मूल्य का तात्पर्य है – **संबंधों** को "प्रयोजनों" के अर्थ में पहचानना। प्रयोजनों के आधार पर **संबंधों** को पहचानने से प्रयोजन अपेक्षा में "**सम्बन्ध** निर्वाह निरंतरता" निहित रहता ही है। **सम्बन्ध** निर्वाह निरंतरता स्वयं "विश्वास" का द्योतक होता है। इस तरह विश्वास सभी **संबंधों** में साम्य रूप में प्रकट होता है। जैसे – माता–पिता और संतान के सम्बन्ध में प्रयोजन "पोषण और संरक्षण" है। इस प्रयोजन के अर्थ में जब **सम्बन्ध**–निर्वाह की निरंतरता बनती है, तो विश्वास–सहित ममता, वात्सल्य, और कृतज्ञता मूल्य प्रमाणित होते हैं। इस प्रकार सभी **संबंधों** को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानने पर उन **संबंधों** की निर्वाह–निरंतरता होना, मूल्यांकन होना, और उभय–तृप्त होना स्वाभाविक हो जाता है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 209)**

- मानव समझदारी पूर्वक ही हर **संबंध** को प्रयोजनों के अर्थ में पहचान पाता है फलस्वरूप मूल्यों का निर्वाह होता है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 215)**
- मध्यस्थ क्रियाकलाप को मनुष्य–परम्परा के सन्दर्भ में देखें तो – मानव परम्परा में शैशव, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़, और वृद्ध अवस्थाओं के रूप में परिलक्षित है। मानव–परम्परा में "व्यवहार" इसी के साथ सुस्पष्ट होता है। हर मानव–संतान जन्म से ही न्याय का याचक होता है, सत्य वक्ता होता है, और सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक होता है। मानव–संतान का अपने अभिभावकों के साथ "व्यवहार" होता ही है। मानव–संतान स्वाभाविक रूप में अपने अभिभावकों का अनुसरण–अनुकरण करता ही है। इस व्यवहार का "प्रयोजन" है – अभिभावकों द्वारा संतान में न्याय–प्रदायी क्षमता स्थापित हो, सत्य का बोध हो, और सही कार्य–व्यवहार करना सिखाया जाए। ऐसा करना अभिभावकों का "दायित्व" है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए अभिभावकों का पहले से उसके "योग्य" बने रहना आवश्यक है। इस प्रकार – हर मानव–सम्बन्ध में, दायित्वों को निर्वाह करने के लिए उसके लिए आवश्यक ज्ञान, विवेक, विज्ञान से संपन्न रहना आवश्यक है। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर: 231)**

- संबंधों की पहचान

सह–अस्तित्व में जीते समय **संबंधों** को पहचानने की बात होती है। मानव का मानव के साथ **सम्बन्ध**, और मानव का मानवेत्तर प्रकृति के साथ **सम्बन्ध** – इन दो तरह से **संबंधों** को पहचाना। मानवेत्तर प्रकृति के साथ **सम्बन्ध** को "उपयोगिता" और "कला" (सुन्दरता) मूल्य के आधार पर पहचानते हैं। मानव–मानव **सम्बन्ध** को जीवन–मूल्य (सुख, शान्ति, संतोष, आनंद) के आधार पर, मानव–मूल्य (धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा) के आधार पर, स्थापित मूल्य (कृतज्ञता, गौरव, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य) के आधार पर पहचानते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हम सात मानव–**संबंधों** से पहचानते हैं। सातों **संबंधों** को इस प्रकार पहचान कर हम "समाज की रचना" को पहचानते हैं। इस पहचान के लिए यदि हम सटीक स्वरूप में अध्ययन करते हैं तो हम भागीदारी कर सकते हैं।

संबंधों को पहचानने का प्रयोजन है सह अस्तित्व में जीना। सह अस्तित्व में जीने का अर्थ है “जीने देना, जीना”। यह आवश्यक है या नहीं आप सोचिए। हर व्यक्ति इस पर सोच सकता है, शोध कर सकता है। “जीने देना, जीना” विधि से हम अपराध मुक्त हो सकते हैं इस बात को मैंने अनुभव किया। यदि “जीने देना, जीना” में हस्तक्षेप करते हैं तो हिंसा के अलावा और कुछ होता नहीं है। “**संबंध**” का परिभाषा दिया पूर्णता के अर्थ में प्रतिज्ञा। पूर्णता के अर्थ में निर्वाह करने का नाम है **संबंध!** पूर्णता क्या है “क्रिया पूर्णता” और “आचरण पूर्णता”। इन दो पूर्णताओं की बात कही।
इसके पहले गठन पूर्णता पहले से जीवन में है ही। गठन पूर्णता के आधार पर ही जीवन “अमर” है। जीवन परमाणु में से कोई प्रस्ताव– विस्थापन होता नहीं है। परमाणु गठन पूर्ण होने पर “जीवन पद” में संक्रमित होता है।

क्रिया पूर्णता होने पर मानव का सहअस्तित्व में जीना बनता है। जीने देकर जीना बनता है। इस तरह मानवेत्तर प्रकृति के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक जीना बनता है। मानव के साथ न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना बनता है। इन छह आयामों में जीने से हम “सामाजिक” हो पाते हैं। इससे कममें कोई सामाजिक होता ही नहीं है।

इस प्रकार हम सहअस्तित्व नित्य प्रभावी और सहअस्तित्व नित्य वर्तमान” के बारे में स्पष्ट होते हैं। इस स्पष्टता के अभाव में व्यक्तिवाद , समुदायवाद ही रहेगा। व्यक्तिवाद और समुदायवाद भोग के लिए, संघर्ष के लिए और युद्ध के लिए ही है। इससे ज्यादा इनसे कुछ होता नहीं है। संघर्ष के साथ शोषण निश्चित है। आज जैसे एक देश दूसरे देश का शोषण करने का सोचता है एक परिवार दूसरे परिवार का शोषण करने का सोचता है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करने का सोचता है वह सब इस समझ से हर व्यक्ति में समाप्त हो जाता है। इस समझ के साथ “समाधान, समृद्धि” पूर्व जीना बन जाता है। समझदारी से समाधान मिलता है। श्रम से समृद्धि मिलता है। समाधान समृद्धि पूर्वक जीने के क्रम में हम व्यवस्था में जी पाते हैं। सहअस्तित्व में ही हम “अखंडता” और “सार्वभौमता” को अनुभव करते हैं।

अखंडता को अनुभव करने का मतलब है “सर्वमानव एक ही जाति है, सर्वमानव एक ही धर्मी है” इसको अनुभव करना। जीवन में धर्म का व्यवस्था है। शरीर में रचना का व्यवस्था है। जीवन के आधार पर “धर्म” की पहचान है। सर्व मानव का एक ही धर्म है। मानव धर्म सुख है। सुख की चाहत से मानव को अलग नहीं किया जा सकता। जीवन में जागृति पूर्वक सुख होता है। शरीर रचना के आधार पर “जाति” की पहचान है। सर्वमानव एक ही जाति है। सभी मानवों में चाहे वे गोरे हों, काले हों, भूरे हों सभी में शरीर रचना की वस्तुएं एक ही हैं। खून की प्रजातियाँ एक ही हैं। हड्डियों की रचना एक ही है। मांस पेशियों की रचना एक सी हैं। रसों की व्यवस्था एक सी है। सब आधारों पर हम मानव को “एक जाति” के रूप में पहचान सकते हैं।

मानव के आहार, विहार और व्यवहार को सुसंगत स्वरूप को इस तरह पहचाना जा सकता है फिर जिया जा सकता है। इससे पहले आदर्शवाद और भौतिकवाद द्वारा मानव का अध्ययन नहीं हो पाया था। मानव का अध्ययन ना हो पाने के कारण मानव मनमानी विधि से जीता रहा। मनमानी विधि से जीते हुए अपने संरक्षण के लिए समुदाय रचना आवश्यक हो गई । इस ढंग से हम फंस गए। सभी अपराधों को “विधि” मान लिए। अंततोगत्वा धरती बीमार होने पर पुनर्विचार के लिए बाध्य हो गए हैं।

“सार्वभौमता” से आशय है चारों अवस्थाओं में संतुलन।

पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था में यदि निरंतर संतुलन बना रहता है तो वह “सार्वभौमता” है। यदि इनमें संतुलन बना नहीं रहता तो वह व्यवस्था नहीं है। यह आपको स्वीकार होता है या नहीं मैं नहीं कह सकता। यह समझ में आता है तो यह मानव को स्वीकार होता है संतुलन के लिए मानव को नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक ही जीना पड़ेगा। मानवेत्तर प्रकृति का “त्व सहित व्यवस्था” का स्वरूप जो बना हुआ है, वह मानव ने नहीं बनाया है, वह सह अस्तित्व स्वयं प्रगटनशील होने की विधि से बना हुआ है। मानव के नियम, नियंत्रण, संतुलन, विधि से जीने से मानवेत्तर प्रकृति संतुलित रहता है। मानव के न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीने से मानव प्रकृति संतुलित रहता है । ऐसी सार्वभौमता की आवश्यकता है या नहीं इसको हमें देखना होगा। इसके बाद हम इस प्रस्ताव के अध्ययन/ शोध पूर्वक हम उपकार करने की स्थिति में आ जाते हैं।

मानव के सहअस्तित्व में जीने के लिए “मानसिकता” में परिवर्तन एकमात्र आशा है। सह अस्तित्व में जीना केवल “कार्य” में परिवर्तन पूर्वक नहीं है। कोई यंत्र सह अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करेगा। सहअस्तित्व को मानव ही जागृति पूर्वक प्रमाणित कर सकता है।

सहअस्तित्व में जीना नितांत आवश्यक है। सहअस्तित्व में जीने के लिए पूरा समझना आवश्यक है। पूरा समझने की वस्तु सह अस्तित्व ही है। सहअस्तित्व में ही जीवन है। सहअस्तित्व में ही मानवीयता पूर्ण आचरण है। सहअस्तित्व में ही विवेक है। सह अस्तित्व में ही विज्ञान है। सहअस्तित्व को छोड़कर हम कुछ भी सोच नहीं सकते।

यह सब मुझसे सुनने के बाद आपको जो कोई भी शंका हो, उसको आप मुझसे पूछ सकते हैं। **(अध्याय:, पृष्ठ नंबर:** 250–254)

संदर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- परिवार

"निश्चित संख्या में जागृत मानव जो परस्पर **सम्बन्धों** को पहचानते व मूल्यों का निर्वाह करते हैं, और परिवार गत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं, ऐसे कम से कम दस व्यक्तियों के समूह की परिवार संज्ञा है."

– श्री ए नागराज जी

http://madhyasth-darshan.blogspot.com/2016/04/blog-post_16.html

- **जीव–चेतना में "न्याय" केवल चाहत के रूप में है.**

जीव–चेतना में जीते हुए मनुष्य में न्याय "चाहत" के रूप में होता है, न्याय प्रमाणित होना नहीं बन पाता। जीवन में जो १० क्रियाएं हैं – उनमें से ४.५ क्रियाएं ही जीव–चेतना में प्रमाणित हो पाती हैं। बाकी ५.५ क्रियाओं के प्रमाणित होने की अपेक्षा बनी रहती है। ऐसे में मानव स्वयं के साथ न्याय चाहता है, पर दूसरों के साथ अन्याय करता रहता है। "स्वयं के साथ न्याय" का मतलब ऐसा निकलता है – मेरा सुविधा–संग्रह बना रहे, दूसरों का चाहे जो भी हो। यही सोच आगे समुदाय के स्तर पर है, यही देश के स्तर पर है। "मेरे समुदाय के साथ न्याय", "मेरे देश के साथ न्याय"... इसका मतलब यही निकलता है, मेरे समुदाय का सुविधा–संग्रह बना रहे, बाकी सब चाहे मिट जाएँ। मेरे देश का सुविधा–संग्रह बना रहे, बाकी सब चाहे मरें। ऐसे क्या न्याय होगा?

जीव–चेतना में "प्रसन्नता" को न्याय माना, "दर्द" को अन्याय माना। प्रसन्नता (pleasure) और दर्द (pain) को संवेदनाओं के अर्थ में पहचाना। जैसे – एक परिवार के सदस्य की हत्या हो गयी। उस परिवार के सभी सदस्य दर्द से भर गए। अब क्या करें? उस हत्यारे की हत्या करने से, उसे पीड़ा पहुंचाने से, दर्द से भरे परिवार को प्रसन्नता मिलती है – ऐसा सोचा गया। इसको "न्याय" माना। "हमको दर्द नहीं होना चाहिए!" – इसको मौलिक–अधिकार माना। इसको jurisprudence कहा। इस धरती के सभी देशों की न्याय–संहिताओं की सोच इस पर बैठा है। "दर्द हुआ", उसके बदले में "प्रसन्न" करने के लिए राज्य–व्यवस्था बना दी। किस दर्द के बदले में क्या दंड देना है – इसको संविधान कह दिया। इस तरीके से न्याय तक हम क्या पहुँच सकते हैं? क्या एक गलती को दूसरी गलती से रोका जा सकता है? क्या एक अपराध को दूसरे अपराध से रोका जा सकता है?

जीव–चेतना में जीते हुए – न्याय की अपेक्षा जीवन में होती है, लेकिन न्याय को प्रमाणित करने की योग्यता नहीं रहती। न्याय मानव–चेतना में ही प्रमाणित होता है। न्याय का मतलब है – संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, और उभय–तृप्ति। **सम्बन्ध** जीवन और जीवन के बीच होता है। जीवन को समझे बिना न्याय कैसे होगा?

जीवचेतना में जीते हुए **संबंधों** के नाम तो हम पा गए हैं, पर **संबंधों** के प्रयोजन पहचान नहीं पाये हैं। इससे क्या होता है – जब तक "स्वयं के लिए न्याय" होता रहता है – तब तक हम **सम्बन्ध** को निभाते रहते हैं, जब "स्वयं के लिए न्याय" नहीं होता – या अपनी संवेदनाओं के अनुकूल बात नहीं होती, तो **सम्बन्ध** को जूता मार देते हैं। जबकि जीवन

और जीवन का **सम्बन्ध** निरंतर बना ही हुआ है। **संबंधों** में न्याय प्रमाणित होने के लिए **संबंधों** की सटीक पहचान होना आवश्यक है। उसके लिए जीवन को समझना आवश्यक है। देखिये – शरीर के किसी अंग–प्रत्यंग (जैसे हाथ, पैर, दिमाग, हृदय, गुर्दा) में न्याय की प्यास नहीं है। न्याय की प्यास जीवन में ही है। शरीर को हम जीवन माने रहते हैं – जीव–चेतना में। ऐसे में क्या जीव–चेतना में न्याय मिल सकता है?

मानव–चेतना पूर्वक न्याय के प्रमाणित होने की प्रथम–स्थली है – परिवार। इस तरह व्यवस्था का जो स्वरूप निकलता है, वह है – परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था। इस तरह संविधान का जो स्वरूप निकलता है – वह है, मानवीय आचरण स्वरुपी संविधान। क्या होना चाहिए – आप सोच लो!

दिसम्बर २००८, अमरकंटक

(अध्याय: 1–1.2, पृष्ठ नंबर: 80–81)

- **सम्बन्ध, न्याय, और सामाजिकता**

सम्बन्ध क्यों हैं? व्यवस्था में जीने के लिए सम्बन्ध हैं। और कोई प्रयोजन नहीं है संबंधों का! संबंधों में ही व्यवस्था में होने–रहने की गवाही मिलती है। संबंधों को छोड़ कर मनुष्य के व्यवस्था में होने–रहने की कोई गवाही नहीं मिलती।

सम्बन्ध पूर्णता (क्रियापूर्णता, आचरण पूर्णता) के अर्थ में अनुबंध हैं। अनुबंध का मतलब प्रतिज्ञा है। पूर्णता के अर्थ में ही सारे सम्बन्ध हैं। चाहे वह माँ–बच्चे का सम्बन्ध हो, या बंधू–बांधव का सम्बन्ध हो। सह–अस्तित्व की समझ मूल में रहने पर ही संबंधों में तृप्ति की निरंतरता बन पाती है। अभी जो है, थोड़े समय तक सम्बन्ध निभा, फ़िर टूट गया – यह परेशानी सह–अस्तित्व की समझ के बाद दूर हो जाती है। सामाजिकता में परेशानी भी यही है। पहले दिन हम दूसरे के साथ जो सम्बन्ध को पहचाना, वैसे वह निभ नहीं पाना। सह–अस्तित्व में समझ पूर्वक सम्बन्ध को सटीक पहचानने की योग्यता आती है। इस तरह समझदारी पूर्वक संबंधों को सटीक पहचानने पर सम्बन्ध निभ पाते हैं, उनमें तृप्ति की निरंतरता बनती है। इस तरह अखंड–समाज और सार्वभौम–व्यवस्था की सूत्र–व्याख्या हो जाती है।

न्याय है – (प्रयोजन के अर्थ में) संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, और उभय–तृप्ति। संबंधों में न्याय पूर्वक जीना ही मानव के व्यवस्था में जीने का पहला सीढ़ी/चरण है।

जीवन विद्या राष्ट्रीय सम्मलेन २००६, कानपुर में बाबा श्री नागराज शर्मा के उदबोधन पर आधारित

(अध्याय:2.3, पृष्ठ नंबर: 197–198)

- **संबंधों की पहचान**

संबंधों की पहचान होने पर ही संबंधों में न्याय पूर्वक जीने की स्थिति बनती है। संबंधों में ही जीना होता है। संबंधों को छोड़ कर जीने की कोई स्थली ही नहीं है।

न्याय के लिए "संबंधों की पहचान" आवश्यक है। संबंधों की "पहचान" कहा है, संबंधों का "निर्माण" नहीं कहा है। हम संबंधों में हैं ही – हमें उन संबंधों को पहचानने की आवश्यकता है।

संबंधों की पहचान होने पर मूल्यों का निर्वाह होता ही है। संबंधों के संबोधन या नाम तो हम पा गए हैं – लेकिन उनके प्रयोजनों को नहीं पहचाने हैं। प्रयोजनों की पहचान के लिए ही अध्ययन है।

हम जहाँ हैं – अपनी उपयोगिता, सदुपयोगिता, और प्रयोजनशीलता को पहचान ही सकते हैं। कम से कम अपने परिवार में अपनी उपयोगिता को पहचानने का अधिकार हरेक के पास रखा है। समाज और व्यवस्था परिवार के ही आगे की कड़ियाँ हैं।
(दिसम्बर २००८, अमरकंटक) (अध्याय:2.3, पृष्ठ नंबर: 198–199)

- **परिवार में ही व्यवस्था की शुरुआत है.**

समाधान ही सुख है।

यंत्र के पास समाधान नहीं है। यंत्र कर्म रूप में साधन है।
किताब में समाधान नहीं है। किताब सूचना है।
समाधान किसके पास होता है?
जागृत–मनुष्य के पास।

यह अपने में समझ में आने से अपने में उत्साह भी जागना चाहिए। हम समझ सकते हैं, और समझा भी सकते हैं। हम जी सकते हैं, जीने दे सकते हैं। हम अपने समझे होने का प्रमाण समझा पाने में प्रस्तुत कर सकते हैं। हम अपने जीने का प्रमाण जीने दे सकने के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

परिवार में ही जीने दे कर जीने की शुरुआत है। परिवार में ही व्यवस्था की शुरुआत है। परिवार में ही पूर्णता भी है। हमारी निष्ठा की पहचान – ज्ञान का पहचान, विवेक का पहचान, विज्ञान का पहचान – सर्वप्रथम परिवार में ही है। इससे बहुत बड़ा प्रभाव हुआ। **संबंधों** में जीना हमारी प्राथमिक आवश्यकता बन जाती है।

संबंधों में जीने के लिए "विश्वास" ही एक मात्र आधार है। **संबंधों** में निर्वाह निरंतरता को बनाए रखना ही "निष्ठा" है। **संबंधों** के निर्वाह में मूल्यों का प्रकटन है – जैसे वात्सल्य, ममता, कृतज्ञता, गौरव, सम्मान, प्रेम, स्नेह, श्रद्धा, और विश्वास। इस प्रकार ९ मूल्य सभी **संबंधों** में प्रकट होने लग गए।

संबंधों में मूल्यों का प्रकटन ज्ञान की सर्वप्रथम उपलब्धि है।

इस तरह हर जगह मैं मूल्यों को निष्ठा पूर्वक निर्वाह करने के योग्य हो जाता हूँ। **संबंधों** को जब पहचानते हैं – तो **संबंधों** के साथ धोखाधड़ी नहीं होता। **संबंधों** को हम ठीक पहचानते नहीं हैं – तभी **संबंधों** में धोखाधड़ी होती है। मनुष्य जहाँ **सम्बन्ध** को सटीक नहीं पहचानता – वहीं सारा कुकर्म है। कितना सारा पोल खुल गया! यहाँ से पोल खुल जाता है। हर जगह **संबंधों** की पहचान के साथ जीना है, या धोखाधड़ी करते हुए ही जीना है? – आप तय करो! न्याय पूर्वक जीने का रास्ता बनाना है या नहीं? एक लोहार जैसा चोट हमारे सिर पर आता है।

लेकिन सहमत होने भर से हम विद्वान हो गए – ऐसा कुछ नहीं है। सहमति के साथ निष्ठा जोड़ने पर – अध्ययन में लगने पर – विद्वान होना, समझदार होना बन जाता है। अध्ययन के द्वार तक आप पहुँच चुके हैं – अब उसके पार आपको पहुंचना है। अध्ययन के लिए जो प्रबंध हैं – वे आप के पास सूचना के रूप में हैं। परिभाषा विधि से शब्द द्वारा वस्तु की कल्पना होती है। अस्तित्व में वस्तु के स्वरूप में पहचान हुई – तो हम समझदार हुए। (साक्षात्कार, अवधारणा–बोध)।

जब अध्ययन कर लिया (अनुभव संपन्नता), तो अध्ययन करा सकने की स्थिति आती है। अध्ययन कराने का मतलब है – हम ज्ञान को जब अपने में प्रमाणित करते रहते हैं, तो दूसरे में उसकी आवश्यकता बन जाती है। जैसे – मैं विश्वास का निर्वाह करता हूँ, तो मेरी संतानों में विश्वास के निर्वाह करने की आवश्यकता बन जाती है। इस ढंग से सार्थक विधि को हम पकड़ लिए। असामान्य विधि से व्यवस्था को पहचानने की कोई विधि नहीं है। सामान्य विधि से ही व्यवस्था में जीने से परस्परता में विश्वास होना स्वाभाविक हो जाता है।

(जनवरी २००७, अमरकंटक) **(अध्याय:2.3, पृष्ठ नंबर: 200–202)**

- प्रश्न: क्या मूल्यों (अठ्ठारह संबंध मूल्य) का साक्षात्कार और बोध होता है?

उत्तर: (अठ्ठारह संबंध) मूल्य गुणों में गण्य है। जागृति क्रम और जागृति के साक्षात्कार में मूल्यों की समझ बीज रूप में रहती है। अनुभव में सब कुछ भी बीज रूप में ही रहता है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन क्रम में वह विस्तृत होता है। संक्षिप्त होकर अनुभव होता है। विस्तृत होकर प्रमाण होता है। अनुभव के बाद मानव की कल्पनाशीलता अनुभवमूलक हो जाती है हो जाता है। अनुभव की रोशनी में हर बात को स्पष्ट करने का अधिकार बन जाता है। बीज रूप में “होना” समझ में आ जाता है। “रहना” उस समझ की व्याख्या है। **(अध्याय:3.1, पृष्ठ नंबर: 290–291)**

- न्याय की चाहत और न्याय का प्रमाण

अभी की स्थिति में "न्याय" चाहिए, पर प्रिय–हित–लाभ से छूटे नहीं हैं। प्रिय–हित–लाभ शरीर संवेदनाओं से जुड़ी तुलन दृष्टियाँ हैं। इसलिए हम "न्याय" को भी संवेदनाओं के साथ जोड़ने लग जाते हैं। प्रिय–हित–लाभ दृष्टियों के साथ भय, प्रलोभन, और सम्मोहन जुड़ा ही रहता है। प्रिय–हित–लाभ दृष्टियों के साथ न्याय कुछ होता नहीं है। हम राजी–गाजी से किए गए arrangement (विन्यास) को न्याय मान लेते हैं – पर कुछ समय बाद वह fail होता ही है।

न्याय समझौता नहीं है।

"न्याय" शब्द द्वारा न्याय वास्तविकता की शाश्वतीयता इंगित है। इंगित होने के बाद उसका कल्पना, उसके लिए विचार, और उसका चित्त में साक्षात्कार – यह क्रम है। यह तीनो होने पर बोध और अनुभव होता ही है। उसके बाद न्याय प्रमाणित करने की योग्यता आती है।

संवेदनाओं को राजी रखने या उनका दमन करने के स्थान पर **संबंधों** पर ध्यान देने पर न्याय की स्थिति बनती है। सम्बन्ध अस्तित्व में वास्तविकता है। **संबंधों** के नाम लेना तो हमारे अभ्यास में आ चुका है। जैसे – माता, पिता, भाई, बहन, गुरु आदि। **संबंधों** के प्रयोजनों को पहचानने की बात अभी शेष है। **संबंधों** का प्रयोजन है – व्यवस्था में जीना।

जिस क्षण से माता–पिता ने अपनी संतान से सम्बन्ध को पहचाना, ममता और वात्सल्य उनमें अपने आप से उमड़ता है। उसके लिए कोई अलग से training लेने की ज़रूरत नहीं है। ममता, वात्सल्य मूल्य जीवन में स्थापित/निहित हैं, तभी तो **संबंधों** की पहचान होने पर वे उभरते हैं।

अस्तित्व में व्यवस्था का स्वरूप समझ में आने पर **संबंधों** की पहचान होना और निर्वाह होना स्वाभाविक हो जाता है। समाधान–समृद्धि पूर्वक हम अस्तित्व की व्यवस्था में जी सकते हैं, भागीदारी कर सकते हैं, और उपकार कर सकते हैं।

जनवरी २००७, अमरकंटक (अध्याय:3.2, पृष्ठ नंबर: 337–338)